अध्याय 1

वेग गतियों का योग

हमारी गति

प्रतियोगिता में एक अच्छा दौड़ाक 1.5 किमी की दूरी लगभग 3 मिनिट 50 सेकण्ड में तय करता है (1958 का विश्व-कीर्तिमान 3 मिनिट 36.8 सेकण्ड है)। इसके साथ पैदल-यात्री की साधारण क्षिप्रता (1.5 मिनिट प्रति सेकण्ड) की तुलना करने के लिए यदि एक छोटा-सा कलन करें, तो ज्ञात होगा कि वह एक सेकेण्ड में 7 मिनिट दौड़ता है। वैसे इन गतियों की तुलना पूर्ण नहीं कही जा सकती : पैदल-यात्री एक घण्टे में 5 किमी की दर से घण्टों चलता रह सकता है, पर प्रतियोगिता में भाग लेने वाला दौड़ाक अपना अधिकतम वेग एक छोटे कालान्तर में ही कायम रख सकता है। पैदल-सेना कीर्तिमान खिलाड़ी से तिगुनी धीमी - एक सेकेण्ड में 2 मिनिट या लगभग 7 किमी प्रति घण्टे - चलती है। सेना अपनी क्षिप्रता में बड़े उतार-चढ़ाव ला सकती है, पर दौड़-प्रतियोगिता में भाग लेने वाले ऐसा नहीं कर सकते।

धीमी चाल के लिए मुहावरों की तरह प्रयुक्त होने वाले घोंघे और कछुवे जैसे जन्तुओं की गति के साथ आदमी की साधारण चाल की तुलना मनोरंजक हो सकती है। "घोंघे की चाल" मुहावरे से जो घोंघे की ख्याति प्राप्त हुई है, शत-प्रतिशत न्यासंगत है। वह एक सेकेण्ड में 1.5 mm एक घण्टे में 5.4 m रेंगता है। यह मनुष्य की चाल से ठीक एक हजार गुना कम है। दूसरा क्लासिकल सुस्त जीव कछुआ घोंघे से थोड़ा ही तेज चलता है : उसकी साधारण गति है 70 m प्रति घण्टे।

घोंघे और कछुवे की तुलना में आदमी काफी फुर्त्तीला नजर आता है, पर यदि उसकी तुलना परिवेश की अन्य प्राकृतिक गतियों से की जाये, तो वह बिल्कुल दूसरे प्रकाश में नजर आएगा। यह सच है कि वह अधिकतर मैदानी नदियों की धारा को दौड़ में हरा सकता है और मंद समीर से कुछ ही पीछे रहता है, पर एक सेकेण्ड में 5 m उड़ने वाली मक्खी के साथ आदमी सिर्फ स्कीइंग पर ही प्रतियोगिता कर सकता है। खरहे या शिकारी कुत्ते को आदमी सरपट दौड़ते घोड़े पर भी नहीं हरा सकता। गरूड़ के साथ आदमी सिर्फ हवाई जहाज पर ही प्रतियोगिता कर सकता है।

आदमी द्वारा आविष्कृत मशीनें उसे विश्व के क्षिप्रतम जीव में परिणत कर रही है।

चित्र 1. मोटर-कार जील-111.

कुछ ही समय पहले सोवियत संघ में जलगत डैनों वाला यात्री स्टीमर बनाया गया है, जो अपना वेग 60-70 km/h तक बढ़ा सकता है। जमीन पर आदमी पानी की अपेक्षा अधिक तेज चल सकता है। सोवियत संघ में रेलवे के कुछ भागों में गाड़ी का वेग 100 km/h तक पहुँच जाता है। हल्की-सी नयी औटो-कार जील-111 (चित्र 1) अपना वेग 170 km/h तक बढ़ा सकती है। सात लोगों के बैठने लायक कार "चाइका" का वेग 160 km/h तक पहुँचता है।

इन गतियों को आधुनिक हवाई जहाज काफी पीछे छोड़ चुके हैं। सोवियत संघ के कई यात्री हवाई-मार्गों पर बड़े-बड़े मल्टी-सीटर जहाज तु - 134 और तु - 154 (चित्र 1) उड़ते हैं। उनकी उड़ान का औसत वेग 800 km/h के लगभग है। हाल तक हवाई जहाज बनाने वालों के सामने "ध्वनि-बाधा" पार कराने की समस्या थी; वे विमानों को ध्वनि यह अब संभव हो चुका है। नन्हे, पर शक्तिशाली रिएक्टिव मोटरों वाले विमानों का वेग 2000 km/h के निकट पहुँच सकता है।

मानव निर्मित उपकरण और भी अधिक वेग उपलब्ध यकर सकते हैं। वातावरण की घनी परतों की सीमा के निकट उड़ने वाले पृथ्वी के कृत्रिम स्पूतनिक (सहयात्री; रूसी से) या सैटेलाइट (अंगरक्षक; रोमन से) लगभग 8 km/s वेग से गतिमान हैं। सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों की ओर उड़ने वाले अन्तरिक्षी उपकरणों का आरम्भिक वेग द्वितीय अन्तरिक्षी वेग (धरातल के समीप 11.2 km के लगभग) से अधिक होता है।

पाठक वेगों की निम्न तालिका के साथ परिचय कर सकता है :

चित्र 2. यात्री प्रतिकारी विमान तु-144.

घोंघा	1.5 mm/s	5.4 m/h
कछुआ	20 "	70"
मछली	1 m/s	3.6 km/h
पैदल यात्री	1.4"	5"
घुड़सवार (दुलकी चाल)	1.4"	6"
घुड़सवार (सरपट चाल)	3.5"	12.6"
मक्खी	5"	18"
स्की करने वाला	5"	18"
घुड़सवार (छलांगी चाल)	8.5"	30"
जलगत डैनों वाला स्टीमर	16"	58"
खरहा	18"	65"
गरूड़	24"	86"
शिकारी कुत्ता	25"	90"
रेलगाड़ी	28"	100"
कार जील-111	50"	170"
कार-रेस की मोटरगाड़ियाँ (कीर्तिमान)	174"	633"
तु-104	220"	800"
वाये में ध्वनि	330"	1200"
नन्हा रिएक्टिव विमान	550"	2000"
पृथ्वी, अपने कक्ष पर	30000"	108000"

क्या व्लादीवस्तोक से 8 बजे सुबह उड़कर उसी दिन 8 बजे सुबह मास्को पहुँच जा सकता है? प्रश्न बिल्कुल अर्थहीन नहीं है। यह सचमुच सम्भव है। इस उत्तर को समझने के लिए सिर्फ यह स्मरण करना है कि मास्को व व्लादीवस्तोक के समयों में 9 घण्टे का अन्तर है। यदि विमान इस कालान्तर में ब्लादीवस्तोक से मास्को की दूरी तय कर सकता है, तो वह मास्को उसी समय पहुँचेगा, जिस समय ब्लादीवस्तोक से उड़ा था।

व्लादीवस्तोक - मास्को की दूरी लगभग 9000 km है। अतः जहाज का वेग 9000 : 9 = 1000 km/h होना चाहिए। आधुनिक स्थितियों में ऐसा वेग बिल्कुल सम्भव है।

ध्रुववर्ती अक्षांशों पर सूरज (या और सही कहें, पृथ्वी) को दौड़ में पकड़ने के लिए बहुत कम वेग की आवश्यकता होगी। 77^0 अक्षांश (नोवाया ज़िमल्या, नवोर्वी) पर 450 km/h वेग से गतिमान जहाज दिये कालान्तर में उतना दूर उड़ सकता है, जितना उसी कालान्तर में धरातल का कोई बिन्दु पृथ्वी के घूर्णन के कारण अक्ष के चारों ओर घूमता है। ऐसे विमान के यात्री को सूरज थमा हुआ दिखेगा; वह आकाश में अचल लटका रहेगा और अस्त होने की दिशा में नहीं बढ़ेगा (सन्देह नहीं कि इसके लिए विमान की उपयुक्त दिशा होनी चाहिए)।

पृथ्वी की परिक्रमा में चन्द्रमा को हराना और भी सरल है। चाँद पृथ्वी की घूर्णन गति से 29 गुना धीमे पृथ्वी की परिक्रमा करता है। (यहाँ रैखिक गतियों की नहीं, बल्कि कोणिक गतियों की तुलना की गयी है)। अतः घण्टे में 25-30 km चलने वाला साधारण स्टीमर मध्यवर्ती अक्षांशों पर ही "चाँद को दौड़ में हरा दे सकता है"।

"गँवार गये परदेस" नामक निबन्धों में मार्क ट्वेन ऐसी ही एक घटना की याद दिलाते हैं। न्यूयॉर्क से आजोर द्वीपों तक जाते वक्त अटलांटिक महासागर पर "सुन्दर गर्म मौसम था। रातें दिन से भी बेहतर थीं। हमें एक विचित्र घटना देखने को मिली : चाँद हर शाम एक ही समय आकाश के एक ही बिन्दु पर टंग जाया करता था। चाँद के इस मौलिक आचरण का कारण पहले तो हमारे लिए रहस्य बना रहा, पर बाद में हम समझ गए कि बात क्या है : हम

देशान्तर रेखा पर 20 मिनिट प्रति घण्टे की दर से पूर्व की ओर चल रहे थे, अर्थात् हम ऐसी चाल से चल रहे थे कि चाँद से पीछे न रहें!"

सेकेण्ड का सहस्त्रांश

हम समय को अपने मानवीय मानदण्ड से नापने के आदी हैं, इसीलिए सेकेण्ड का सहस्त्रांश हमारे लिए शून्य जैसा ही हे। इतने लघु अन्तराल हमारे व्यवहार में कुछ ही समय से प्रयुक्त हो रहे हैं। जब लोग सूरज की स्थिति या छाया की लम्बाई द्वारा समय निर्धारित करते थे, उस जमाने में मिनिट की परिशुद्धता भी अकल्पनीय थी (चित्र 3); लोग मिनिट को कोई इतना बड़ा परिणाम मानते ही नहीं थे कि उसे नापने की आवश्यकता पड़ती। प्राचीन मनुष्य इतना शान्त (बिना किसी जल्दीबाजी के) जीवन जीता था कि उसकी सूर्य -, जल-, वाय- घड़ियों में मिनिट के अंश चिन्हित भी नहीं थे (चित्र 4,5)। सिर्फ XVIII-वीं शती के आरम्भ से डायल पर मिनिट की सुई को स्थान मिला। सेकेण्ड की सुई XIX -वीं शती के आरम्भ में प्रकट हुई।

सेकेण्ड के सहत्रांश में क्या कुछ घट सकता है? बहुत कुछ! यह सच है कि ट्रेन इस कालान्तर में सिर्फ तीन सेन्टीमीटर आगे बढ़ेगी, पर इसी कालान्तर में ध्वनि 38 cm, हवाई जहाज लगभग आधा मीटर, सूर्य के परिक्रमण में पृथ्वी 30 m और प्रकाश 300 km चल चुकेगा।

चित्र 3. आकाश में सूर्य की स्थिति (बाएं) और छाया की लम्बाई (दाएं) के आधार पर समय-निर्धारण।

चित्र 4. प्राचीन काल में प्रयुक्त जल-घड़ी।

चित्र 5. पुरानी जेबी-घड़ी।

हमारे परिवेश में जीने वाले नन्हें जीवों में यदि सोचने की क्षमता होती है तो वे सेकेण्ड के सहस्त्रांश को शायद इतना नगण्य नहीं मानते। उदाहरणार्थ कीड़े-पतंगे इस परिमाण (राशि) को पूर्णातया अनुभव कर सकते हैं; उनके लिए सेकेण्ड का सहस्त्रांश पूर्णतया अनुभवगत है। मच्छर एक सेकेण्ड की अवधि में 5-6 सौ बार पंख फड़फड़ाता है; अर्थात् सेकेण्ड के हजारवें अंश में वह उन्हें उठाने व गिराने में सफल हो जाता है।

आदमी अपने अंगों को इतनी तेजी से गतिमान नहीं कर सकता जितना कीड़े-पतंगे। हममें सबसे क्षिप्र गति है पलक झपकाना। "पल", "पल भर में", "पलक मारते" आदि व्यंजनों का आदि स्त्रोत हमारा पलक झपकाना ही है। यह इतना जल्द होता है कि पलक मुंदने से हम अन्धकार भी नोट नहीं करते। पर बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि कल्पनातीत क्षिप्रता का समानार्थक "पलक झपकाना" दरअसल काफी धीमी प्रक्रिया साबित होगी, यदि उसे सेकेण्ड के सहस्त्रांश में नापा जाए। परिशुद्ध मापों से ज्ञात होता है कि एक पूरा "पलक" औसतन 2/5 सेकेण्ड अर्थात् 400 सेकेण्ड-सहस्त्रांश के बराबर होता है। पलक झपकाना निम्न चरणों में सम्पन्न होता है : पलक का गिरना (75-90 सेकेण्ड-सहस्त्रांश), गिरे पलक की अचल अवस्था (130-170 सहस्त्रांश) और उनका उठना (लगभग 170 सहस्त्रांश)। स्पष्ट है कि अपने शाब्दिक अर्थ में "पलक" समय की पर्याप्त बड़ी राशि है, जिसके दरम्यान पलक थोड़ा विश्राम भी करने में सफल हो जाती है। यदि सेकेण्ड का सहस्त्रांश हमारे लिए अनुभवगत होता, तो "एक पल" में हम पलकों की दो धीमी तैरती गतियों को देखते, जो विश्राम के अन्तराल से विभक्त होती।

ऐसी स्नायु-प्रणाली के कारण दुनिया हमें इतनी बदली हुई दिखती कि उसे हम पहचान भी नहीं पाते। हमारी आँखों के समक्ष वैसे ही आश्चर्यजनक चित्र उभरते, जिनका वर्णन अंग्रेज लेखक वेल्स ने "नवीनतम त्वरित्र" नामक कहानी में किया है। कहानी के पात्र एक काल्पनिक मिक्सचर पी लेते हैं, जो उनकी स्नायु-प्रणाली को इस प्रकार प्रभावित करता है कि त्वरित घटनाएं उन्हें धीमी दृष्टिगोचर होती हैं।

ये रहे इस कहानी से कुछ उदाहरण :

"- आपने कभी देखा है कि पर्दा खिड़की से इस प्रकार चिपका हो?

मैंने पर्दे पर निगाह डाली और ध्यान दिया कि वह अपनी जगह पर थम-सा गया है; उसका कोना हवा के झोंके से मुड़ा है और फहरने की बजाय वैसे ही रूक गया है।"

"- कभी नहीं देखा, - मैंने कहा। - कितनी विचित्र बात है!

- और यह देखा है? - उसने पूछा और गिलास पर से उंगलियों की जकड़ ढीली कर दी।
- मेरी उम्मीद थी कि गिलास फर्श पर चूर-चूर हो जाएगा, पर वह हिला भी नहीं; हवा में स्थिर लटका था।

- आप अवश्य ही जानते होंगे, - जिबेर्न ने बताया, - कि स्वतंत्र गिरती हुई वस्तु प्रथम सेकेण्ड में 5 m नीचे आती है। और हमारा गिलास अभी ये ही 5m तय कर रहा है। लेकिन आप समझ रहे हैं कि अभी सेकेण्ड का सौंवा अंश भी नहीं बीता है।[1] इससे आप मेरे त्वरित की शक्ति का अन्दाजा लगा सकते हैं।"

गिलास धीरे-धीरे नीचे आ रहा था। जिबेर्न ने गिलास के गिर्द हाथ फेर कर दिखाया, उसके ऊपर, नीचे....

मैंने खिड़की से झाँक कर देखा। एक साइकिल-सवार एक ही स्थान पर जमा हुआ था। उसके पीछे धूल की गुबार लटकी थी। इस क्षण वह एक टमटम का पीछा कर रहा था, जो हमारे लिए अपने स्थान से एक इंच भी नही बढ़ रहा था।

..... हमारा ध्यान एक बग्गी की ओर आकर्षित हुआ, जो मूरत बनकर खड़ा था। चक्के का ऊपरी हिस्सा, घोड़े के पैर, चाबुक का छोर, गाड़ीवान का निचला जबड़ा (उसने अभी-अभी कुछ चबाना शुरू किया था।) - यह सब धीमे ही सही, पर चल रहे थे; बाकी सब कुछ इस सुस्त गाड़ी में बेज़ान था। लोग उसमें मूर्तियों की तरह बैठे थे।

... एक आदमी के हाथ-पैर ठीक उस क्षण थम गये थे, जब वह तेज हवा में अखबार तह करने के लिए अमानवीय प्रयत्न में रत था। पर हमारे लिए इस हवा का कोई अस्तित्व नहीं था।

... मेरे अंगों में इस "त्वरित" के समाने के बाद से जो कुछ भी मैंने कहा है, सोचा है या किया है, अन्य लोगों की नजर में, पूरे ब्रह्माण्ड की दृष्टि में मात्र एक पल था।"

सम्भवतः पाठक के लिए यह जानना दिलचस्प हो कि आधुनिक विज्ञान के साधनों से समय का कितना छोटा अन्तराल मापा जा सकता है। इस शती के आरम्भ में सेकेण्ड का 10 000-वाँ अंश मापा जा सकता था। आज की प्रयोगशालाओं में भौतिकविद् सेकेण्ड का 100000000000-वाँ अंश नाप सकते हैं। यह अन्तराल पूरे सेकेण्ड से उतना ही छोटा है, जितना 3000 वर्ष की अवधि से एक सेकेण्ड!

काल-विशालक

अपना "नवीनतम त्वरित" लिखते वक्त वेल्स ने शायद ही सोचा होगा कि इस तरह की चीज़ सचमुच कभी न कभी बनेगी। पर इस दिन को उसके जीवन-काल में ही आना था। वह खुद अपनी आँखों से उन चित्रों को देख सका (पर्दे पर ही सही!), जिन्हें कभी उसकी कल्पनाशक्ति ने जन्म दिया था। तथाकथित "काल-विशालक" हमें पर्दे पर उन घटनाओं को धीमी गति से दिखाता है, जो अक्सर बहुत तेजी से साथ घटती हैं।

"काल-विशालक" सिनेमा का कैमरा है, जो साधारा मूवी-कैमरों की तरह एक सेकेण्ड में 24 ही नहीं, इससे कई गुनी अधिक तस्वीरें लेता है। इस कैमरे से तस्वीर ली गयी परिघटना को यदि एक सेकेण्ड में 24 तस्वीरों की साधारण गति से पर्दे पर दिखाया जाए, तो दर्शक को परिघटना लमड़ी हुई लगती है, क्योंकि पर्दे पर वह दुगुनी-तिगुनी धीमी गति से घटती है। पाठकों ने अवश्य ही ऐसी अस्वाभाविक छलाँगे व धीमी की गई अन्य घटनाएं पर्दे पर देखीं होंगी। इसी प्रकार के और भी जटिल कैमरों से घटनाएं अधिक मंद की जा सकती हैं, जो लगभग वैसी ही होंगी, जिनका वर्णन वेल्स ने किया था।

सूर्य-परिक्रमा की गति कब तेज-रात में या दिन में?

पेरिस के अखबारों में एक विज्ञानपन छपा, जिसमें 25 सेन्टिम में बिना किसी थकावट के यात्रा की सस्ती विधि बताने का वादा किया गया था। कई लोगों ने विश्वास करके उक्त करम भेज दी। जवाब में उन्हें पत्र मिला, जिसका आशय इस प्रकार थाः

"भाइयों, आराम से बिस्तर में बैठे रहिए। याद रखें कि हमारी पृथ्वी घूमती है। पेरिस में (49-वें अक्षांश पर) आप हर दिन 25000 km से अधिक दूरी तय करते हैं। और यदि आप सुरम्य दृश्यों को पसन्द करते हैं, तो खिड़की के पर्दे हटा दें और तारक-मंडित आकाश की वाह-वाही किया करें।"

बाद में इस धन्धे के अपराधी पर जब ठगी का मुकदमा चलाया गया, उसने फैसला सुनकर जुर्माना अदा कर दिया और, जैसा कहते हैं, नाटकीय मुद्रा में खड़ा होकर गौरव से गैलीली के प्रसिद्ध शब्द दुहराने लगा :

- जो भी कहें, वह घूमती है!

---

[1] ध्यान में रखना चाहिए कि अपने स्वतंत्र अभिपातन के प्रथम सेकेण्ड के प्रथम शतांश में पिण्ड 5m का शतांश नहीं, बल्कि 10000-वां अंश तय करता है (सूत्र $S = gt^2/2$ के अनुसार)। यह आधा मिलिमीटर होगा। प्रथम सेकेण्ड-सहस्त्रांश में पिण्ड सिर्फ 1/200 mm क्तय करता है।

- अभियुक्त एक तरह से सही भी था, क्योंकि हर पृथ्वीवासी पृथ्वी की धुरी के चारों ओर घूमकर ही "यात्रा" नहीं करता। वह कहीं और अधिक वेग से पृथ्वी के साथ सूर्य की परिक्रमा भी करता है। अपने सभी वासियों के साथ हमारा ग्रह अपने अक्ष के गिर्द घूर्णन ही नहीं करता, वह हर सेकेण्ड 30 km की दूरी व्योम में भी तय करता है।

इस सन्दर्भ में एक रोचक प्रश्न उठाया जा सकता है : कब हम अधिक तेजी से सूरज की परिक्रमा करते हैं - दिन में या रात में?

प्रश्न चकराने वाला है : पृथ्वी पर तो हमेशा ही एक तरफ दिन रहता है और एक तरफ रात। फिर इस प्रश्न का अर्थ क्या है? शायद कुछ भी नहीं।

पर ऐसी बात नहीं है। यह तो नहीं पूछा जा रहा है कि कब सारी पृथ्वी तेज या धीमी चलती है। प्रश्न है कि कब हम, पृथ्वी पर जीने वाले लोग, तेजी से तारों के बीच भ्रमण करते हैं। और यह प्रश्न निरर्थक बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। सौर-मण्डल में हमारी गति द्विविध है : हम सूर्य की परिक्रमा करते हैं और साथ ही पृथ्वी की धुरी का भी चक्कर लगाते हैं। दोनों गतियों के योग का परिणाम हमेशा एक जैसा नहीं होता। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम पृथ्वी के किस अर्ध में हैं - रात वाले में या दिन वाले में। चित्र 6 पर एक नजर डालिए और आप समझ जाएंगे कि आधी रात को पृथ्वी की घूर्णन गति उसकी अग्रगामी गति के साथ जुड़ जाती है और दोपहर दिन में इसके विपरीत उससे घट जाती है। अर्थात् आधी रात को हम सौर-मण्डल में दोपहर की अपेक्षा अधिक तेजी से गतिमान रहते हैं।

चूँकि विष्वक (विषुवत रेखा) के बिन्दु एक सेकेण्ड में लगभग आधा किलोमीटर भागते हैं, विष्वक कटि पर अर्धरात्रि और दोपहर की गतियों में पूरे एक किलोमीटर प्रति सेकेण्ड का अन्तर है। ज्यामिति से परिचित लोग सरलातपूर्वक कलन कर सकते हैं कि लेनिनग्राद के लिए (जो 60-वें अक्षांश पर है) यह अन्तर दुगुना कम है : आधी रात को लेनिनग्राद के निवासी सौर-मण्डल में प्रति सेकेण्ड आधा किलोमीटर अधिक तय करते हैं, बनिस्बत कि दिन में।

चक्के का चमत्कार

घोड़ागाड़ी के चक्के की किनारी (या साइकिल के टायर) पर रंगीन कागज का एक टुकड़ा चिपका दें। जब गाड़ी (या साइकिल) चलने लगे, कागज के टुकड़ें को ध्यान से देखते रहें। आप एक विचित्र बात गौर करेंगे : कागज जब तक चक्के के निचले भाग में है, वह आराम से स्पष्ट दिखता रहता है; ऊपरी भाग में वह इतनी तेजी से घूमता है कि आप मुश्किल से उसकी झलक ले पाते हैं।

ऐसा लगता है कि मानो चक्के के निचले भाग की अपेक्षा ऊपरी भाग अधिक तेजी से गतिमान है। किसी चलती बग्गी के चक्के में ऊपर और नीचे की तीलियों को देखा जाए, तो यही बात नजर आएगी। ऊपरी तीलियाँ एक-दूसरे से स्पष्टतः अलग नहीं दिखती हैं, जबकि नीचे की तीलियाँ स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखती हैं। इससे भी मानो यही निष्कर्ष्ज्ञ निकलता है कि चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा अधिक तेजी से घूमता है।

इस विचित्र रहस्य की कुंजी क्या है? यही कि लुढ़कते चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा सचमुच में अधिक तेज घूमता है। पहली दृष्टि में तथ्य असम्भव सा लगता है, पर एक सरल तर्क इसमें विश्वास दिलाने के लिए काफी रहेगा। लुढ़कते चक्के का हर बिन्दु दो प्रकार से गतिमान होता है वह अक्ष की परिक्रमा करता है और अक्ष के साथ-साथ आगे भी बढ़ता है। पृथ्वी के गोले की तरह ही यहाँ भी दो गतियों का संयोजन होता है, जिसका परिणाम चक्के के ऊपरी और निचले भागों के लिए पृथक होता है। ऊपर चक्के की घूर्णन गति उसकी अग्रगामी गति के साथ जुड़ती है, क्योंकि दोनों गतियों की दिशाएं समान हैं। नीचे घूर्णन गति की दिशा विपरीत हैं, अतः वह अग्रगामी गति में से घट जाती है। इसीलिए स्थिर अवलोकक के सापेक्ष चक्के का ऊपरी भाग निचले की अपेक्षा अधिक तेजी से स्थानांतरित होता है।

उपरोक्त बात की सत्यता एक सरल प्रयोग द्वारा जाँची जा सकती है। टमटम के चक्के के पास जमीन में एक छड़ी लम्ब रूप से गाड़ दें। छड़ी चक्के की धुरी के ठीक सामने होनी चाहिए। चक्के की किनारी पर सबसे ऊपरी और सबसे निचले बिन्दुओं पर कोयले या खल्ली से निशान लगा दें : ये निशान छड़ी के ठीक सामने होंगे। अब टमटम को दाएं लुढ़कायें (चित्र 7), ताकि अक्ष छड़ी से करीब 20-30 सेन्टीमीटर आगे बढ़ जाए। ध्यान दें कि आपके निशानों का स्थानांतरण किस प्रकार हुआ है। ऊपरी चिन्ह A विशेष रूप से आगे बढ़ा होगा, जबकि निचला निशान B छड़ी के लगभग पास ही होगा।

चक्के का सबसे सुस्त हिस्सा

हमने देखा कि गाड़ी के चक्के में सभी बिन्दु समान क्षिप्रता से स्थानांतरित नहीं होते। लुढ़कते चक्के का कौन-सा भाग सबसे धीमा होता है?

समझना कठिन नहीं है कि चक्के में सबसे धीमी गति उन बिन्दुओं की है, जो दिए क्षण में जमीन को स्पर्श करते हैं। ठीक-ठीक कहा जाए, तो ये बिन्दु जमीन छूते वक्त बिल्कुल अचल होते हैं।

उपरोक्त बात सिर्फ लुढ़कते चक्के के बारे में सही है, अचल अक्ष पर घूमते चक्कों के साथ यह बात सही नहीं उतरती। उदाहरणार्थ, औटो-गाड़ियों में लगे गति-सामक चक्र के ऊपरी और निचले भाग समान वेग रखते हैं।

प्रश्न है, मजाक नहीं

यह प्रश्न भी कुछ कम मनोरंजक नहीं है : लेनिनग्राद से मास्को जाने वाली ट्रेन में ऐसे बिन्दु होते हैं या नहीं, जो पटरियों के सापेक्ष उल्टा मास्को से लेनिनग्राद की ओर गतिमान हों?

ज्ञात होता है कि ऐसे बिन्दु हर चक्के पर हर क्षण विद्यमान होते हैं। किस जगह होते हैं ये?

आप अवश्य ही जानते होंगे कि ट्रेन के चक्कों की किनारी पर होठ जैसा गोट निकला रहता है। इसी गोट के निचले बिन्दु ऐसे होते हैं, जो ट्रेन के चलते वक्त आगे की बजाए पीछे की ओर स्थानांतररित होते हैं।

चित्र 7. कैसे देखा जाए कि चक्के के निचले भाग की अपेक्षा ऊपरी भाग अधिक तेज घूमा है। अचल खड़ी छड़ी से बिन्दुओं A व B की दूरियों की तुलना करें (दाएं आरेख में)।

चित्र 8. वृत्ताकार वस्तु और तीली के साथ प्रयोग। जब चक्का बायीं ओर लुढ़कता है, तीली के बाहर निकले हिस्से के बिन्दु F, E, D उल्टी दिशा में गतिमान होते हैं।

चित्र 9. जब ट्रेन के चक्के बायीं ओर घूमते हैं, उनकी बाहर निकली किनारी के निचले भाग दायीं ओर अर्थात विपरीत दिशा में गतिमान होते हैं।

चित्र 10. ऊपर के आरेख में दिखाई गई वक्र रेखा (चक्राभ) वह पथ दिखाती है, जिस पर चक्के की किनारी का हर बिन्दु भ्रमण करता है। नीचे-वक्र रेखा, जिसे ट्रेन के चक्के के निचले भाग के हर बिन्दु निरूपित करते हैं।

इस बात की सत्यता आप निम्न प्रयोग द्वारा सरलतापूर्वक जाँच सकते हैं। किसी वृत्ताकार वस्तु (जैसे एक सिक्के या बटन) पर मोम से माचिस की एक तीली इस प्रकार चिपका लें कि वह त्रिज्या पर से गुजरती हुई कोर से काफी बाहर निकली रहे। खड़े स्केल के कोर के बिन्दु C पर सिक्के को रखकर दाएं से बाएं ओर लुढ़कायेंगे (चित्र 8), तो तीली के निकले हुए भाग के बिन्दु F, E, D, आगे नहीं, पीछे खिसकेंगे। बिन्दु, वृत्त के कोर से जितना ही दूर होगा, उतना ही अधिक वह पीछे खिसकेगा (बिन्दु D का स्थान D' हो जाएगा।)

ट्रेन में चक्के की गोट की गति वैसी ही होती है, जैसी हमारे प्रयोग में तीली के निकले हुए भाग की।

अब आपको इस बात से आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ट्रेन में ऐसे बिन्दु भी हैं, जो आगे की बजाए पीछे चलते हैं। यह सत्य है कि ऐसी गति सिर्फ सेकेण्ड के क्षुद्रांश में ही सीमित रहती है। पर जो भी हो, हमारी सामान्य धारणा के बावजूद ट्रेन में उसके विरुद्ध स्थानांतरण भी होते हैं। उक्त बातें चित्र 9 व 10 द्वारा स्पष्ट की गई हैं।

कल्पना करें कि एक चप्पूदार नाव झील में चल रही है और हमारे चित्र 11 में तीर a उसकी गति की दिशा और वेग द्योतित करता है। उसके पथ के साथ समकोण बनाती रेखा पर एक पाल वाली नाव आ रही है। तीर b उसकी दिशा और वेग दर्शाता है। यदि आप से पूछा जाए कि यह नाव कहाँ से चली थी, तो आप बेशक तट पर बिन्दु M दिखा देंगे। पर यही प्रश्न यदि चप्पूदार नाव के यात्रियों को दिया जाए, तो वे बिल्कुल ही दूसरा बिन्दु बताऐंगे। क्यों?

कारण यह है कि यात्री दूसरी नौका को अपने पथ के लम्ब चलती नहीं देखते। वे अपनी गति महसूस नहीं करते : उन्हें लगता है कि वे एक ही स्थान पर खड़े हैं और चारों ओर की चीज़ें उनकी खुद की गति से (पर विपरीत दिशा में) चल रही हैं। अतः उनके लिए पाल वाली नौका तीर b की दिशा में ही नहीं, बल्कि चप्पूदार नौका के विपरीत छिन्न-तीर a की दिशा में भी चल रही है (दे. चित्र 12)। पाल वाली नौका की वास्तविक व प्रतीयमान दोनों गतियाँ समान्तर चतुर्भुज के नियम से जोड़ी जाती हैं। परिणामस्वरूप यात्रियों को लगता है कि पाल वाली

चित्र 11. पाल वाली नाव का पथ चप्पूदार नाव के पथ के लम्ब है। तीर a व b वेग द्योतित करते हैं। चप्पू चलाने वालों को क्या दिखेगा।

चित्र 12. चप्पू चलाने वालों को लगता है कि पाल वाली नाव बिन्दु M से नहीं N से आ रही है, अर्थात् वह उनके पथ के लम्ब नहीं, तिरछा चल रही है।

नाव b और a भुजाओं से बने समान्तर चतुर्भुज के कर्ण पर चल रही है। यही कारण है कि यात्री पाल वाली नाव की रवानगी का स्थान M नहीं बताकर बिन्दु N बताते हैं, जो उनकी गति की दिशा में बहुत दूर हैं (चित्र 12)।
जिस प्रकार चप्पूदार नाव के यात्री पाल वाली नाव के प्रस्थान का स्थल गलत निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार हम भी तारों से हमारी आँखों तक आती किरणों के उद्‌गम का स्थान आकाश में गलत बताते हैं। कारण यही है कि हम अपनी उस गति को ध्यान में नहीं रखते, जिससे हम पृथ्वी पर बैठे उसके कक्ष पर सूरज की परिक्रमा करते हैं। इसीलिए तारे हमें पृथ्वी की गति-पथ पर थोड़ा आगे विस्थापित लगते हैं। यह सही है कि पृथ्वी का वेग प्रकाश-वेग की तुलना में नगण्य है (10000 गुना कम है) और इसलिए तारों का आभासी विस्थापन नगण्य होता है। पर फिर भी उसे खगोलिकी के उपकरणों से ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी परिघटना को प्रकाश का विपथन कहते हैं।
यदि ऐसे प्रश्नों में आपकी दिलचस्पी हो गयी हो, तो नाव वाले प्रश्न की शर्तों को बिना परिवर्तित किए बताने की कोशिश करें :

1) पाल वाली नाव के यात्रियों के लिए चप्पूदार नाव की दिशा क्या होगी?
2) पाल वाली नाव के यात्रियों के दृष्टिकोण से चप्पूदार नाव किस स्थान पर पहुँचेगी?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आपको a रेखा पर (चित्र 12) गतियों का समान्तर चतुभुर्ज बनाना होगा; उसका कर्ण दिखाएगा कि पालवाली नाव के यात्रियों को चप्पूदार नाव तिरछी चलती नजर आएगी मानो वह तट पर लगने जा रही हो।

अध्याय 2

गुरुत्व और भार, उत्तोलक, दाब

उठिये

यदि मैं आप से कहूँ : "अभी आप कुर्सी पर ऐसे बैठेंगे कि उठ नहीं सकेंगे, हालाँकि आप बँधे नहीं होंगे," आप इसे बेशक मजाक मानेंगे।

ठीक है। आप ऐसे बैठिए जैसे चित्र 13 में आदमी बैठा है : धड़ सीधा हो और पैर कुर्सी के नीचे न मुड़े हों। अब खड़े होने की कोशिश करें; शर्त है कि पैरों की स्थिति न बदले और धड़ आगे न झुके।

नहीं हो रहा है? पेशियों की लाख कोशिश से भी आप खड़े नहीं हो सकते, जब तक आप पैरों को कुर्सी के नीचे नहीं मोड़ते या धड़ आगे नहीं झुकाते।

इसका कारण समझने के लिए हमें पिंडो के सन्तुलन पर व्यापक रूप से और आदमी के सन्तुलन पर विशेष रूप से बातें करनी होंगी। खड़ी वस्तु सिर्फ उस स्थिति में नहीं गिरती, जब उसके गुरुत्व केन्द्र से खींची गयी साहुल-रेखा (सीधी, लम्बवत खड़ी रेखा) उसके आधार के दायरे (आलम्ब-क्षेत्र) में पड़ती रहती है। अतः चित्र 14 का नत बेलन अवश्य ही गिरेगा। यदि वह इतना चौड़ा होता कि उसके गुरुत्व केन्द्र से खींची गयी साहूल-रेखा उसके आलम्ब-क्षेत्र में ही पड़ती, तो बेलन नहीं गिरता। पीसा की "झुकी मीनार" या अर्खांगेल्स्क का "गिरता घण्टाघर" इतना झुका होने पर भी नहीं गिरता, क्योंकि उनके गुरुत्व केन्द्र से चली साहुल-रेखा उनके आधार के दायरे से बाहर नहीं पड़ती (दूसरा एक गौण कारण यह भी है कि वे काफी गहरी नींव पर खड़े हैं)।

खड़ा आदमी तभी तक नहीं गिरता, जब तक कि उसके गुरुत्व केन्द्रसे गुजरती साहूल-रेखा उसकी एड़ियों से घिरे क्षेत्र के भीतर गिरती है। इसलिए एक पैर पर खड़ा होना कठिन है; तनी रस्सी पर खड़ा होना और भी मुश्किल है : आधार या आलम्ब-क्षेत्र बहुत ही कम है और साहूल-रेखा के लिए उसकी सीमा से बाहर निकल आना बहुत सरल है। आपने कभी ध्यान दिया है कि पुराने घाघ नाविकों की चाल कितनी बेढव होती है? उनकी सारी जिन्दगी हिचकोले खाते जहाजों पर बीतती है, जहाँ उनके शरीर के गुरुत्व केन्द्र से गुजरती साहूल-रेखा किसी भी क्षण उनकी एड़ियों से घिरे क्षेत्र के बाहर चली आ सकती है। इसलिए वे इस तरह चलने की आदत बना लेते हैं कि उनके शरीर का आधार अधिक से अधिक स्थान घेर कर रखे, अर्थात् पैर अधिक से अधिक खुले हों। इससे नाविकों को हिचकोलों के बीच आवश्यक स्थिरता प्राप्त होती है। स्वाभाविक है कि स्थिर जमीन पर चलते वक्त भी उनकीयह आदत नहीं छूटती। इसका विपरीत उदाहरण भी दिया जा सकता है, जिसमें सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता मुद्रा की सुन्दरता का आधार बन जाती है। आपने कभी ध्यान दिया है कि सर पर बोझ ढोने वालों की आकृति कितनी सुडौल होती है? सिर पर घड़ा लिए स्त्री के रूप की मनोहरता सभी को ज्ञात है। सिर पर बोझ ढोते वक्त सिर और धड़ को बिल्कुल सीधा रखना पड़ता है : हल्का-सा झुकाव भी गुरुत्व केन्द्र को आलम्ब-क्षेत्र से बाहर कर देगा (क्योंकि इस स्थिति में गुरुत्व केन्द्र विशेष रूप से ऊपर उठ आया है!) और आकृति का सन्तुलन बिगाड़ देगा।

अब बैठे से खड़े होने के प्रयोग की ओर लौटें। बैठे हुए आदमी के धड़ का गुरुत्व केन्द्र शरीर के भीतर मेरूदण्ड के पास नाभि से करीब 20 सेन्टीमीटर ऊपर होता है। यहाँ से नीचे की ओर साहुल-रेखा खीचे : वह ठीक कुर्सी के नीचे, एड़ियों के पीछे पहुँचेगी। पर आदमी खड़ा हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि यह रेखा एड़ियोंके बीच खड़ी हो।

अतः उठते वक्त हमें या तो छाती आगे की ओर झुकानी चाहिए या पैरों को पीछे करके गुरुत्व केन्द्र को टेक देनी चाहिए। कुर्सी पर से उठते वक्त हम अक्सर यही करते हैं। लेकिन यदि हमें दोनों में से कुछ भी करने की अनुमति नहीं है, तो जैसा कि आप देख चुके हैं, उठना मुश्किल है।

चित्र 13. इस मुद्रा में बैठे रह कर खड़ा नहीं हो सकते।

चित्र 14. यह बेलन गिर जाएगा, क्योंकि उसके गुरुत्व केन्द्र से खींची गयी साहूल-रेखा उसके आधार-क्षेत्र के बाहर पड़ रही है।

चित्र 15. अर्खागेल्स्क का "गिरता" घण्टाघर (पुराने फोटोग्राफ से)।

चित्र 16. खड़े आदमी के गुरुत्व केन्द्र से गुजरती साहूल-रेखा दोनों तलवों से घिरे क्षेत्र में पड़ती है।

चित्र 17. आदमी का चलना। शरीर की क्रमिक मुदाएं।

चित्र 18. चलते वक्त पैरों की गति का आरेख। ऊपरी रेखा एक पैर की गति दिखाती है और निचली रेखा - दूसरे पैर की। सरल रेखाएं पैरों से जमीन टेकने के क्षणों को दिखाती हैं और चाप - जब पैर बिना टेक के गतिमान रहते हैं। आरेख से स्पष्ट है कि अन्तराल के दरम्यान दोनों पैर जमीन पर टिके हैं; अन्तराल में - पैर ऊपर उठा हुआ है, जमीन पर टिका है; अन्तराल में - दोनों पैर पुनः जमीन पर हैं। जितनी ही तेजी से आदमी चलेगा, अन्तराल उतने ही छोटे होंगे (तुलना करें चित्र 20 में दौड़ के आरेख से)।

चित्र 19. आदमी का दौड़ना-क्रमिक मुद्राएं (ऐसे भी क्षण हैं, जब दोनों पैर उठे हुए होते हैं)।

चित्र 20. दौड़ में पैरों की गति का आरेख (तुलना करें चित्र 18 से)। स्पष्ट दिख रहा है कि दौड़ते आदमी के लिए ऐसे क्षण होते हैं, जब दोनों पैर हवा में उठे रहते हैं। चलने की क्रिया से दौड़ इसी बात में भिन्न होती है।

चलना और दौड़ना

दैनिक जीवन में जो चीजें हम लाखों-हजारों बार दुहराते हैं, हमें अच्छी तरह ज्ञात होनी चाहिए। सोचा यही जाता है, पर हमेशा ऐसा नहीं होता। इसके सुन्दर उदाहरण हैं - चलना और दौड़ना। इनसे बढ़कर हमारे लिए परिचित शायद ही कोई दूसरी गति हो। पर कितने ऐसे लोग मिलेंगे, जो अच्छी तरह जानते हैं कि चलने और दौड़ने में शरीर आगे कैसे बढ़ता है और इन दो प्रकार की गतियों में क्या अन्तर है? देखें कि शरीर क्रिया-विज्ञान चलने व दौड़ने के बारे में क्या कहता है।[2]

'मान लें कि आदमी एक पैर पर खड़ा है, उदाहरणार्थ दाएं पैर पर। अब कल्पना करें कि वह हल्के से पिछली एड़ी उठाता है और साथ ही धड़ को आगे झुकाता है।[3] स्पष्ट है कि इस स्थिति में गुरुत्व केन्द्र आलम्ब-क्षेत्र से बाहर निकल आयेगा और आदमी आगे की ओर गिरेगा। लेकिन जैसे ही उसका गिरना शुरू होता है, हवा में लटका उसका बायां पैर जल्दी से आगे बढ़ता है और गुरुत्व केन्द्र से खिंचे लम्बे के पाद से कुछ दूर जमीनपर रूकता है। इससे लम्ब दोनों पैरों के आलम्ब-बिन्दुओं से घिरे क्षेत्र में आ जाता है और आदमी का गिरना रूक जाता है। सन्तुलन पुनः कायम हो जाता है और आदमी एक कदम पूरा कर लेता है।'

---

[2] अवतरण प्रो. पोल बेर्ट के "जैविकी पर व्याख्यान" से लिए गये है; चित्र संकलनकर्ता की तरफ से।

[3] चलने की प्रक्रिया में आधार-बिन्दु को इस प्रकार धकेलते वक्त आदमी अपने भार के साथ-साथ उस पर लगभग 20 किलो का अतिरिक्त दाब डालता है। इसी से यह निष्कर्ष निकलता है कि चलते वक्त आदमी जमीन को अधिक जोर से दबाता है, बनिस्बत कि जब वह खड़ा रहता है। - या. पे.

आदमी इस उकताने वाली स्थिति में रुका रह सकता है, पर यदि वह आगे बढ़ना चाहता है, तो वह शरीर को थोड़ा आगे झुकाता है, गुरुत्व केन्द्र से खींचे लम्ब को टेक-क्षेत्र के बाहर ले जाता है और फिर गिरने के क्षण पैर आगे बढ़ा देता है- लेकिन इस बार बायां नहीं, दायां पैर।

एक और कदम पूरा हो जाता है। इस प्रकार, चलने की क्रिया आगे की ओर गिरने की सिलसिला है, जो हर बार पीछे पड़े पैर द्वारा ऐन मौके पर रोक लिया जाता है।

बात को और नजदीक से देखें। मान लें कि पहला कदम पूरा होने जा रहा है। इस क्षण दायां पैर अभी भी जमीन छू रहा है और बायां जमीन पर आ रहा है। यदि कदम बहुत छोटा नहीं है तो दायीं एड़ी पीछे से कुछ उठी होनी चाहिए। सन्तुलन तोड़ने के लिए यदि शरीर आगे झुकाना है, तो यही करना होगा। बायां पैर एड़ी के सहारे जमीन पर उतरता है। इसके बाद जब सारा तलवा जमीन छूने लगता है, दायां पैर बिल्कुल हवा में उठ जाता है। इसके साथ ही बायां पैर, जो अब तक घुटनों पर मुड़ा हुआ था, कमर की त्रिशिरा पेशियों के सिकुड़ने से क्षण भर को सीधा हो जाता है। थोड़ा मुड़ा हुआ दायां पैर तभी बिना जमीन छूए आगे बढ़ सकता है और शरीर की गति के अनुसार अगले कदम के लिए पुनः एड़ी के सहारे जमीन पर उतर आता है।

इसके बाद गतियों का यही सिलसिला बाएं पैर के साथ शुरू होता है, जो इस समय जमीन पर सिर्फ उंगलियों के सहारे टिका होता है और उठने की तैयारी करने लगता है।

चलने से दौड़ने में अन्तर यह है कि जमीन पर खड़ा पैर पेशियों के अचानक सिकुड़ने से सीधा लमड़ता है और शरीर को इसतरह आगे फेंक देता है कि वह क्षण भर को जमीन से बिल्कुल अलग हो जाता है। इसके बाद वह पुनः जमीन पर दूसरे पैर के सहारे गिरता है, जो शरीर के हवा में उछलते वक्त शीघ्रता से आगे बढ़ चुका होता है। इस प्रकार, दौड़ने की क्रिया एक पैर से दूसरे पर छलाँगों का सिलसिला है।

जहाँ तक क्षैतिज पथ पर चलने से खर्च हुई मानव-ऊर्जा का प्रश्न है, वह शून्य के बराबर नहीं है, क्योंकि हर कदम के दौरान आदमी का गुरुत्व केन्द्र कुछ सेन्टीमीटर ऊपर उठता है। हिसाब लगाया जा सकता है कि क्षैतिज पथ पर चलने से सम्पन्न कार्य चलने वाले के शरीर को पथ की लम्बाई के पन्द्रहवें भाग ऊँचा उठाने से सम्पन्न कार्य के बराबर होता है।[4]

चलती गाड़ी से कैसे कूदें?

किसी से यह पूछेंगे, तो आपको बेशक निम्न उत्तर मिलेगा : 'जड़त्व नियम के अनुसार आगे की ओर, गाड़ी चलने की दिशा में'। अब आप उससे सविवरण समझाने का अनुरोध करें कि जड़त्व नियम से इसका क्या सम्बन्ध है। परिणाम का अन्दाजा लगाया जा सकता है : आपका साथी पूरे विश्वास के साथ अपने विचारों को सिद्ध करने में लग जाएगा; पर यदि उसे टोका नहीं जाए, तो जल्द ही चक्कर में पड़ जाएगा : पता चलेगा कि जड़त्व नियम के अनुसार ठीक उल्टा - गति के विपरीत-कूदना चाहिए!

जड़त्व नियम की यहाँ सचमुच में गौण भूमिका है, - मुख्य कारण कुछ और है। यदि इस मुख्य कारण को छोड़ दें, तो निष्कर्ष सचमुच में यही निकलता है कि आगे नहीं, पीछे की ओर कूदना चाहिए।

मान लें कि आपको चलती गाड़ी से कूदना पड़ रहा है। क्या होगा इस स्थिति में?

जिस समय हम चलती गाड़ी के डब्बे से कूदते हैं, हमारा शरीर डब्बे के वेग से गतिमान रहता है (जड़त्व के कारण) और उसकी प्रवृत्ति आगे चलते जाने की होती है। आगे की ओर कूद कर हम इस वेग को नष्ट करने की बजाए और बढ़ा देते हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि आगे नहीं, पीछे की ओर कूदना चाहिए। क्योंकि पीछे कूदने से प्राप्त वेग उस वेग को घटा देता है, जिससे हमारा शरीर जड़त्व के कारण आगे चल रहा है। इसके फलस्वरूप हमारा शरीर जमीन पर कम शक्ति से गिरने की प्रवृत्ति रखेगा।

पर इसके बावजूद भी, यदि कूदना पड़ता है, तो सब आगे ही कूदते हैं। यह सचमुच ही उत्तम विधि है और इतनी खरी है कि पाठक को हम चलती गाड़ी से पीछे की ओर कूदनेकी असुविधाओं को जानने की कोशिश न करने की विशेष चेतावनी देते हैं।

---

[4] यह कलन प्रो. गर्याछकिन की पुस्तक "सजीव चलित्रों का कार्य" (1914) में दिया गया है।

फिर बात क्या है?

व्याख्या की त्रुटि है, उसका अधूरापन है। आगे कूदें या पीछे, गिरने का खतरा हमेशा है, क्योंकि धड़ जड़त्ववश चलता रहेगा और पैर जमीन को छूते ही रूक जाएंगे।[5] धड़ की गति इस स्थिति में कहीं अधिक होगी, बनिस्बत पीछे कूदने में। पर यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि पीछे की अपेक्षा आगे की ओर गिरना कम खतरनाक है। आगे गिरते वक्त हम आदतवश पैर बढ़ा कर गिरना रोक लेते हैं (गाड़ी का वेग अधिक होने पर कुछ कदम दौड़ भी लेते हैं)। हम इस तरह की गतियों के आदी हैं, क्योंकि हर रोज चलते वक्त यही करते हैं : यांत्रिकी के दृष्टिकोण से चलना और कुछ नहीं, बल्कि आगे की ओर गिरने और पैर बढ़ाकर इसे रोकने का सिलसिला है। पीछे की ओर गिरने से बचने के लिए पैर कुछ भी नहीं करते (आदी नहीं हैं) और इसलिए इसमें खतरा अधिक है। अंततः, यदि हम आगे गिरते भी हैं, तो हाथ बढ़ा कर रोकने की कोशिश करते हैं और हमें वैसी चोट नहीं आती। यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इसप्रकार, आगे कूदने में कम खतरा है। इसका कारण जड़त्व नियम में नहीं, खुद हमारे भीतर है। जाहिर है कि ये बातें निर्जीव वस्तुओं पर लागू नहीं होतीं : चलती गाड़ी से आगे की ओर फेंकी गयी बोतल के फूटने की आशंका कहीं अधिक है; पीछे फेंकने पर उसे कम चोट आएगी। इसीलिए, यदि कभी आपको चलती ट्रेन से समान के साथ कूदने की जरूरत पड़े, तो पहले सामान पीछे की ओर फेंकना चाहिए और तब आगे की ओर कूदना चाहिए।

ट्राम के कंडक्टर या टिकट-चेकर जैसे अनुभवी लोग अक्सर गाड़ी की गति की ओर मुँह करके पीछे छलाँग लगाते हैं। इससे दो फायदे होते हैं : जड़त्व से प्राप्त हमारा वेग भी कम हो जाता है और पीठ के सहारे गिरने का खतरा भी नहीं रहता, क्योंकि कूदने वाले का मुँह उधर ही है, जिधर गिरने की संभावना है।

खाली हाथ बन्दूक की गोली पकड़ना

साम्राज्यवादी युद्ध के समय एक फ्रांसीसी पायलट के साथ असाधारण घटना घटी। दो किलोमीटर की ऊँचाई पर उसे सिर के पास कोई छोटी सी चीज़ उड़ती नजर आयी। फतिंगा समझ कर उसने उसे हाथ से पकड़ लिया। जब उसने मुट्ठी खोलकर देखा, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके हाथ में थी...जर्मन गोली!

अखबारों में छपी खबर किस्से वाले गप्पबाज नवाब म्यूनहाउजेन की याद दिलाती है, जो तोप से दागे गए गोलों को हाथ से पकड़ लिया करते थे। पर इस खबर में कोई असम्भव बात नहीं है।

बन्दूक की गोली अपनी उड़ान के पूरे समय 800-900 m प्रति सेकेण्ड की गति से नहीं चलती। हवा के प्रतिरोध से उसका वेग धीरे-धीरे कम होता है और अन्त में उसकी गति सिर्फ 40 मीटर प्रति सेकेण्ड रह जाती है। हवाई जहाज भी इसी गति से उड़ते हैं। अतः यह पूरी तरह सम्भव है कि हवाई जहाज और गोली समान गति से चल रहे हों। इस स्थिति में पायलट के सापेक्ष गोली अचल रहेगी या बहुत ही धीरे चलेगी। यदि हाथ दस्तानों में हों, तो ऐसी गोली को पकड़ लेने से कुछ नहीं होगा (हवा के घर्षण से गोली काफी गर्म हो जाती है)।

तरबूज या बम?

यदि स्थिति-विशेष में बन्दूक की गोली खतरनाक नहीं रह जाती, तो इसका उल्टा भी सम्भव हैः किसी निश्चन पिण्ड को यदि नगण्य वेग से फेंका जाए, तो भी वह घातक सिद्ध हो सकता है। सन् 1924 की लेनिनग्राद तिफलिस मोटर-रेस के समय रास्ते में पड़ने वाले कावकेशस गाँवों के किसान स्वागत के लिए उन तरबूज, सेव आदि फेंका करते थे। इन निर्दोष हार्दिक प्रेमोपहारों का परिणाम काफी दुखद रहा : तरबूज और खरबूज गाड़ियों के कार्पस पिचका देते थे या तोड़ देते थे और सेव यात्रियों को गम्भीर चोट पहुँचाते थे। इसका कारण स्पष्ट है : मोटरों का अपना वेग फेंके गए तरबूजों और सेवों के वेग से जुड़कर उन्हें घातक तोप के गोलों में परिणत कर देता था। आसानी से कलन कर देख सकते हैं कि 10 g की गोली में उतनी ही गति की ऊर्जा है, जितनी 120 km/h के वेग से दौड़ती गाड़ी पर फेंके गए 4 g के तरबूज में।

---

[5] यहाँ गिरने का कारण एक और दृष्टिकोण से समझाया जा सकता है (दे. "मनोरंजक यांत्रिकी", अध्याय 3, उपशीर्षक : "क्षैतिज रेखा कब अक्षैतिज होती है?")।

तरबूज और गोली की अनिष्टकारी शक्तियों की तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि तरबूज गोली जैसा कठोर नहीं होता।

वातावरणकी ऊपरी परतों (तथाकथित समतापीय मण्डल) में जब क्षिप्र विमानन शुरू होगा और विमानों का वेग लगभग 3000 km/h (बन्दूक की गोली के वेग के बराबर) हो जाएगा, तब पायलटों का वास्ता ऐसी घटनाओं से पड़ेगा, जो हम अभी ऊपर देख चुके हैं। ऐसे अतिक्षिप्र विमानों के रास्ते में आने वाली हर छोटी-मोटी चीज उसके लिए घातक गोली का काम करेगी। किसी दूसरे विमान द्वारा यूँ ही गिरायी गई गोलियों से टकराने का परिणाम वैसा ही होगा, जैसा यदि विमानपर ऑटोमेटिक गन से गोलियों की चाँदमारी की जाए। गिरती गोलियाँ विमान में उसी शक्ति से छेद करेंगी, जिससे दागी गई गोली करते है। चूँकि दोनों ही स्थितियों में सापेक्षिक वेग समान हैं (विमान और गोली लगभग 800 m/s के वेग से एक दूसरे के निकट आ रहे हैं), टकराने के अनिष्टकारी परिणाम दोनों ही हालतों में समान होंगे।

चित्र 21. सामने से आती मोटर कार पर फेंका गया तरबूज
तोप के गोले का काम करता है।

इसके विपरीत, यदि दागी गई गोली विमान के पीछे से आ रही है, तो, जैसा अब हम जानते हैं, वह पायलट के लिए खतरनाक नहीं है। इस तथ्य को, कि लगभग समान वेग से एक ही दिशा में गतिमान पिण्ड एक-दूसरे को बिना टकराव के स्पर्श करते हैं, सन् 1935 में एक इन्जन चालक बोर्शेव ने बहुत निपुणता से काम में लाया : उसने अपनी ट्रेन को 36 डिब्बें वाली ट्रेन के साथ टकराने से बचा लिया। घटना दक्षिण के येलनिकोव-ओलशान्का पथ की है। बोर्शेव की ट्रेन से कुछ आगे एक और ट्रेन चल रही थी। आगे वाली ट्रेन पर्याप्त वाष्प न मिलने के कारण रुक गई। उसका चालक इन्जन और कुछ डिब्बों के साथ आगे स्टेशन की ओर बढ़ गया। बाकी 36 डिब्बे उसे वहीं छोड़ देने पड़े। चूँकि इन डिब्बों को रोकने की व्यवस्था नहीं की गई थी, वे पीछे की ओर ढलान पर करीब 15 km/h के वेग से लुढ़क पड़े। बोर्शेव की ट्रेन के लिए खतरा पैदा हो गया। बुद्धिमान चालक स्थिति भाँपते ही अपनी ट्रेन रोककर करीब 15 km/h की गति से बैक करने लगा। इस युक्ति से वह 36 डिब्बों की टुकड़ी अपनी ट्रेन से बिना किसी नुकसान के रोक सका।

चित्र 22. चलती गाड़ी में लिखने के लिए सुविधाजनक प्रयुक्ति

चलती ट्रेन में लिखना आसान करने वाला साधन इसी सिद्धान्त पर बना है। चलती ट्रेन में लिखना सिर्फ इसलिए कठिन होता है कि पटरियों के जोड़ों पर उत्पन्न हिचकाले कागज और नीब को एक ही साथ नहीं लगते। यदि ऐसा कुछ किया जाए कि कागज और नीब को एक ही साथ धक्के लगें, तो दोनों एक दूसरे के सापेक्ष गतिहीन रहेंगे और चलती ट्रेन में लिखना कठिन नहीं रह जाएगा।

यह चित्र 22 में दिखाए गए साधन द्वारा सम्भव है। कलम वाला हाथ तख्ते a के साथ बाँध दिया जाता है, जो पटरियों b के गड्ढे में आगे-पीछे हो सकता है। पटरियाँ भी डिब्बे के टेबुल पर रखे तखते में आगे-पीछे हो सकती हैं। स्पष्ट है कि हाथ पर्याप्त स्वतंत्र है, ताकि वह अक्षरों के बाद अक्षर और पंक्तियों के बाद पक्तियाँ लिख सके। और साथ ही तख्ते पर पड़े कागज को लगने वाला हर धक्का उसी क्षण उसी शक्ति से हाथ को भी लगता है, जिसमें कलम है। अतएव इन परिस्थितियों में लिखना उतना ही सरल होता है, जितना खड़े डिब्बे में लिखना। सिर्फ एक चीज़ बाधा डालती है - कागज पर नजर उछलती रहती है, क्योंकि हाथ और सर को हिचकोले एक ही साथ नहीं लगते।

तराजू के चबूतरे पर

दशमलव प्रणाली के तराजू सिर्फ उस स्थिति में आपके शरीर का सही भार बताते हैं, जब आप उनके चबूतरे पर बिल्कुल बिना हिले-डुले खड़े रहते हैं। आप थोड़ा भी झुकेंगे कि तराजू आपके झुकने के क्षण आपका वजन कम कर दिखाएगा। क्यों? क्योंकि धड़ के ऊपरी भाग को झुकाने वाली पेशियाँ उस क्षण शरीर के निचले भाग को ऊपर तानती है; जिससे टेक पर (जिस पर आप खड़े हैं) दबाव कम हो जाती है। इसके विपरीत, जब आप पेशियों की कोशिश से धड़ झुकना रोक देते हैं, तो उनसे शरीर के ऊपरी और निचले भागों को अलग-अलग भिन्न दिशाओं में धक्के मिलते हैं। शरीर के निचले भाग द्वारा नीचे की ओर धक्के खाने से शरीर के आलम्ब पर दबाव बढ़ जाता है और फलतः तराजू आपका वजन भी उतना ही बढ़ा हुआ दिखा देता है।

संवेदनशील तुला के परिणामों में हाथ उठाने से भी अन्तर आ जाना चाहिए। यह अन्तर आपके वजन में प्रतीयमान वृद्धि के बराबर होगा। हाथ को उठाने वाली पेशियाँ कँधे पर टेक लगाती हैं, अतः उसे धड़ सहित नीचे की ओर धक्का देती हैं : चबूतरे पर दबाव बढ़ जाता है। हाथ को रोकते वक्त हम दूसरी पेशियों को कार्यशील करते हैं, जो कन्धे को ऊपर की ओर खींचती हैं, ताकि वह हाथ के सिरे से करीब आ जाए। इससे टेक पर दाब घट जाता है।

हाथ नीचे गिराते वक्त हम इसके विपरीत शरीर के वजन में कमी ला देते हैं, और जब हाथ का गिरना रोकते हैं - वजन बढ़ा देते हैं। तात्पर्य यह है कि अपनी आन्तरिक शक्तियों की क्रियाशीलता से हम अपना वजन घटा-बढ़ा सकते हैं (यदि वजन को टेक या आलम्ब पर दबाव के अर्थ में लिया जाए)।

चीजें कहाँ अधिक भारी होंगी?

पिण्डो को पृथ्वी जिस बल से आकर्षित करती है, वह धरातल के ऊपर उठने पर क्रमशः घटता है। यदि हम एक किलोग्राम के मुग्दर को 6400 km की ऊँचाई पर ले जाएं, तो आकर्षण - बल 2^2, अर्थात 4 गुना कम हो जाएगा। मुग्दर स्प्रिंग-तुला पर 1000 g की बजाए सिर्फ 250 g भारी नजर आएगा। गुरुत्वाकषर्ण नियम के अनुसार बाह्य पिण्डों को पृथ्वी इस प्रकार आकर्षित करती है, मानो उसका सारा द्रव्यमान उसके केन्द्र में जमा हो; और आकर्षण का बल दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। हमारे उदाहरण में पृथ्वी के केन्द्र से मुग्दर की दूरी दुगुनी बढ़ गई है, इसलिए आकर्षण 2^2 गुना अर्थात चौगुना कम हो गया है। धरातल से 12800 km ऊपर, अर्थात पृथ्वी के केन्द्र से तिगुनी दूरी पर गुरुत्वाकर्षण बल 3^2 या 9 गुना कम हो जाता है। अतः ऐसे बिन्दु पर 1000 ग्राम भारी मुग्दर का भार मात्र 111 g रहेगा।

चित्र 23. पृथ्वी की गहराई में गुरुत्व शक्ति कम क्यों हो जाती है।

स्वभावतः ऐसा विचार भी उठ सकता है कि मुग्दर को गहराई में, अर्थात् पृथ्वी-केन्द्र के निकट ले जाने पर उसका वजन बढ़ना चाहिए : वहाँ पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अधिक होगा। पर यह खयाल गलत हैः पृथ्वी की गहराई में भी पिण्ड का वजन नहीं बढ़ता; वह घटता ही है।

इसका कारण यह है कि इस स्थिति में मुग्दर को आकर्षित करने वाले पृथ्वी-कण मुग्दर के एक ही तरफ नहीं है, उसके चारों ओर हैं। चित्र 23 पर नजर डालिए। आप देखेंगे कि पृथ्वी में गहराई पर रखा हुआ मुग्दर नीचे के कणों द्वारा तो आकर्षित हो ही रहा है, साथ-साथ ऊपर की ओर ऊपरी कणों द्वारा भी आकर्षित हो रहा है। सिद्ध किया जा सकता है कि अन्ततोगत्वा सिर्फ उस गोले के आकर्षण का महत्व रह जाता है, जिसकी त्रिज्या पृथ्वी के केन्द्र से मुग्दर तक है। इसलिए पिण्ड का भार पृथ्वी की गहराई में जाने के साथ-साथ तेजी से घटना चाहिए। पृथ्वी केन्द्र पर पहुँच कर उसका भार बिल्कुल खत्म हो जाएगा, क्योंकि उसके गिर्द के कण उसे सभी दिशाओं में समान बल से खींचेंगे।

अतः पिण्ड का अधिकतम भार पृथ्वी-तल पर ही होता हहै : तल से ऊपर या नीचे (गहराई में) जाने पर उसका भार कम हो जाता है[6]।

गिरते पिण्ड का वजन

आपने कभी ध्यान दिया है कि जिस क्षण लिफ्ट नीचे उतरना शुरू करती है, कितना अजीब-सा महसूस होता है? शरीर क्षण भर को असाधारण रूप से हल्का हो जाता है, मानो आप गहरी खाई में गिर रहे हैं... यह और कुछ नहीं, बल्कि भारहीनता की अनूभूति है। गति के प्रथम क्षण, जब पैरों तले फर्श नीचे गिरना-शुरू हो जाता है, आप फर्श का वेग तुरन्त प्राप्त नहीं करते; जड़त्व के कारण वहीं उसी ऊँचाई पर रुके रह जाते हैं। इसलिए आपका शरीर फर्श को लगभग नहीं दबाता, अर्थात् शरीर का भार काफी कम हो जाता है। पर पल भर बाद ही यह विचित्र अनुभव समाप्त हो जाता हैः आपका शरीर त्वरित वेग से गिरने लगता है, जबकि लिफ्ट का वेग स्थिर, समरूप होता है। लिफ्ट से अधिक तेज गिरने की कोशिश में आपका शरीर पुनः फर्श पर दबाव डालने लगता है, अर्थात आपका भार पूर्णतया वापिस लौट आता है।

---

[6] यह पूर्णतया सत्य होता, यदि पृथ्वी का धनत्व सर्वत्र एक रूप से समान होता; पर केन्द्र की ओर जाने पर पृथ्वी का घनत्व बढ़ता है। इसीलिए गुरुत्व-बल पृथ्वी की गहराई में जाने पर शुर-शुरू थोड़ा बढ़ता है और बाद में घटने लगता है।

किसी मुग्दर को कमानीदार तुला के अकुंश से लटका दें। अब तुला को झटके से नीचे गिरने दें (उसे हाथ से छोड़े नहीं) और ध्यान दें कि उसकी सुई किस ओर जाती है (आसानी के लिए तुला की दरार में काग का एक टुकड़ा फँसा दें और उसकी स्थिति पहले से नोट कर लें)। आपको विश्वास हो जाएगा कि गिरते वक्त सुई मुग्दर हो जाएगा कि गिरते वक्त सुई मुग्दर का पूर्ण भार नहीं दिखाती, उससे काफी कम दिखाती, उससे काफी कम कम दिखाती है। यदि स्वतंत्र रूप से गिरती तुला की सूई को आप देख सकते, तो आप देखते कि गिरते वक्त मुग्दर बिल्कुल भारहीन है : सूई शून्य पर रूकी है।

चित्र 24. गिरती वस्तु की भारहीनता दिखाने के लिए प्रयोग।

भारी से भारी पिण्ड भी स्वतंत्र रूप से गिरते वक्त भारहीन रहता है। इसका कारण समझना आसान है। पिण्ड का "भार" हम उस बल को कहते हैं, जिससे वस्तु अपने लटकन-बिन्दु को खींचता है, या आधार को दबाता है। तुला के साथ गिरता हुआ पिण्ड तुला की कमानी बिल्कुल नहीं तानता, क्योंकि कमानी उसके साथ-साथ नीचे आ रही होती है। गिरने की प्रक्रिया में पिण्ड किसी चीज़ को खींता नहीं है, और न ही किसी चीज़ पर दबाव डालता है। अतः गिरते हुए पिण्ड का भार कितना होगा - यह पूछने का अर्थ है पूछना पिण्ड कितना भारी है, जबकि वह भारहीन अवस्था में है?

XVII-वीं शती में ही यांत्रिकी के प्रतिष्ठापक गैलीली ने लिखा था[7]। हम कँधों पर बोझ तब महसूस करते हैं, जब हम उसके गिरने में बाधा डालने की कोशिश करते हैं। पर यदि हम बोझ के वेग से ही नीचे की ओर गतिमान हो जाएं, तब फिर कैसे वह हमें दाबेगा, तब कैसे वह हमें थकायेगा? यह वही हुआ, जैसे हम किसी को भाला भोंकना चाहते हैं। और वह हमारे आगे उसी वेग से भागा जा रहा है, जिससे हम भाले के साथ उसकी ओर दौड़ रहे हैं।"

निम्न प्रयोग दृष्ट रूप से उपरोक्त विचारों की सत्यता सिद्ध करता है, आप इसे सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

सरल तुला के एक पलड़े पर बादाम फोड़ने वाली सँड़सी इस प्रकार से रखें कि उसकी एक भुजा पलड़े पर हो और दूसरी भुजा डँडी के छोर से डोरी के सहारे लटकी हो (चित्र 24)। दूसरे पलड़े पर इतने बाट रखें कि तुला सन्तुलित हो जाए (डण्डी क्षैतिज रहे)। माचिस की तीली जलाकर डोरी के पास लाएं; डोरी जल जाएगी और सँड़सी की लटकी भुजा पलड़े पर गिरेगी।

तुला के साथ क्या होगा? भुजा गिरने के क्षण सँड़सी वाला पलड़ा ऊपर उठेगा, नीचे झुकेगा या स्थिर रहेगा?

अब, जब आप जान चुके हैं कि गिरता हुआ पिण्ड भारहीन होता है, सही उत्तर आप स्वयं बता दे सकते हैं : पलड़ा पल भर को ऊपर उठेगा।

सच भी है : यद्यपि ऊपरी भुजा निचली से जुड़ी है, स्थिरावस्था की अपेक्षा गिरते समय वह निचली भुजा को कम शक्ति से दबाती है। सँड़सी का कुल भार पल भर को घटता और स्वाभाविक है कि पलड़ा ऊपर उठ जाता है।

तोप से चाँद पर

सन् 1865-1870 के दरम्यान फ्राँस में जूल वेर्न को "तोप से छूटे, चाँद पर पहुँचे" नामक विज्ञान गल्प प्रकाशित हुआ था। इसमें एक असाधारण विचार हैः एक विशाल तोप के गोले में आदमियों समेत यान भर कर चाँद पर भेजना! पुस्तक में इस योजना का इतना विज्ञान-सम्मत वर्णन है कि अधिकाँश पाठकों के मन में उत्सुकता उठती हैः क्या सचमुच में इसविचार को मूर्त्त रूप नहीं दिया जा सकता? ऐसे प्रश्न के बारे में बातें करना निश्चय ही दिलचस्प रहेगा।[8]

पहले यह देखें कि कम से कम सैद्धांतिक तौर पर तोप इस प्रकार दागी जा सकती है या नहीं कि उसका गोला पृथ्वी पर कभी वापस न गिरे। सिद्धान्त इसकी सम्भाव्यता को मानता है। तोप से क्षैतिज छोड़ गया गोला पृथ्वी पर ही क्यों गिरता है? क्योंकि पृथ्वी गोले को आकर्षित करते हुए उसके पथ को वक्रित करती है : गोला सरल रेखा

---

[7] "नवीन विज्ञान के दो क्षेत्रों से संबद्ध गणितीय प्रमाण" नामक कृति में।

[8] पृथ्वी से कृत्रिम उपग्रहों और अन्तरिक्षी राकेटों के छोड़े जा चुकने के बाद हम कह सकते हैं कि अन्तरिक्ष यात्राओं के लिए राकेटों का प्रयोग होगा, तोप के गोलों का नहीं। पर उड़ने के क्षण जब राकेट के सभी ईंधन-कक्ष कार्यशील हो जाते हैं, राकेट के गति उन्हीं नियमों का पालन करती है, जिनका कि तोप के गोले। इसलिए लेखक की ये बातें अद्यातीत नहीं है। - सम्पादक

पर नहीं, वक्र रेखा पर चलता है, जो निरन्तर पृथ्वी की ओर मुड़ती जाती है और इसलिए अंततोगत्वा वह जमीन पर आ गिरता है। यह सत्यहै कि धरातल भी वक्र है पर गोले का पथ की वक्रता इतनी कम कर दी जाए कि वह पृथ्वी तल की वक्रता के बराबर हो जाए, तो गोला कभी भी पृथ्वी पर नहीं गिरेगा! वह पृथ्वी के केन्द्र को अपना केन्द्र बनाकर एक वक्र पर चलता रहेगा; अन्य शब्दों में, वह पृथ्वी का एक उपग्रह बनकर रह जाएगा, जैसे कोई दूसरा चन्द्रमा हो।

पर क्या किया जाए कि तोप से छुटा गोला पृथ्वी-तल से कम वक्रिता पथ पर चले? इसके लिए उसे सिर्फ पर्याप्त वेग देना आवश्यक है। चित्र 25 पर ध्यान दें, जिसमें पृथ्वी के गोले के एक अंश का काट दिखाया गया है। पहाड़ की चोटी (बिन्दु A) पर एक तोप रखा है। पहाड़ की ऊँचाई नगण्य मकान लेते हैं। क्षैतिज दिशा में तोप से प्रक्षिप्त गोला एक सेकेण्ड बाद बिन्दु B पर होता, यदि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति बाधक नहीं बनती। पर आकर्षण शक्ति स्थिति में परिवर्तन ला देती है। उसके प्रभाव के कारण गोला एक सेकेण्ड बाद बिन्दु C पर होगा। पाँच मीटर यह वही दूरी है, जो शून्य में धरातल के निकट स्वतंत्र गिरती हुई वस्तु अपनी गति के प्रथम सेकेण्ड में तय करती है। यदि 5 मीटर नीचे आने के बाद भी पृथ्वी से गोले की ऊँचाई वही रह जाती है, जो बिन्दु A पर थी, तो इसका अर्थ है कि वह पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और उसके पथ की वक्रता का केन्द्र पृथ्वी का ही केन्द्र है। अब रह जाता है खण्ड AB (चित्र 25) की लम्बाई ज्ञात करना। यह उस क्षैतिज पथ की लम्बाई है, जो गोला प्रथम सेकेण्ड में तय करता है। इससे हमें ज्ञात होगा कि तोप के गोले को किस वेग से फेंकना चाहिए। त्रिभुज AOB की सहायता से यह कलन करना बिल्कुल कठिन नहीं है। OA- पृथ्वी की त्रिज्या (करीब 6370000 m) है; OC = OA, BC = 5 m; अतः OB = 6370005 m। पाइथागोरस प्रमेय में इन आँकड़ों का प्रयोग करने से प्राप्त होता है।

$AB2 = (6370005)^2 — (6370000)^2$

आंकिक क्रियाएं सम्पन्न करने पर ज्ञात होता है कि पथ AB करीब 8 किमी के बराबर है।

इस प्रकार, यदि हवा नहीं होती (क्षिप्र गतियों के लिए वह बहुत बड़ी बाधा है), तो 8 km/s वेग से क्षैतिज दिशा में फेंका जाए।[9]

चित्र 25. तोप का गोला पृथ्वी पर कभी वापस न गिरे, इसके
लिए उसके आवश्यक वेग का कलन।

चित्र 26. 8 km/s और इससे अधिक वेग से प्रक्षिप्त गोले के
पथ।

(उपरोक्त 'विचारक्रम इस मान्यता पर आधारित है कि गोले की गति में वातावरण बाधक नहीं बनता। पर वायु-प्रतिरोध की उपस्थिति के कारण इतने बड़े वेगों को प्राप्त करना दरअसल काफी मुश्किल है, या हो सकता है कि बिल्कुल ही असम्भव है।)

चन्द्र यात्रा : जूल वेर्न की कल्पना और सच्चाई

जिन लोगों ने उपरोक्त उपन्यास को पढ़ा है, उन्हें चन्द्र-यात्रा का एक मनोरंजक क्षण याद होगा। गोला ऐसे स्थान को पार कर रहा होता है, जहाँ पृथ्वी और चाँद-दोनों का आकर्षण-बल समान है। यहाँ की घटनाएं सचमुच में परिकथाओं की याद दिलाती हैं : गोले की सभी वस्तुएँ भारहीन हो जाती हैं और यात्री उछल-उछल कर बिना किसी आधार के हवा में लटक जाते हैं।

वर्णन बिल्कुल सही किया गया है, पर उपन्यासकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि समान आकर्षण वाले बिन्दु को पार करने के पहले और बाद भी यही अवस्था होनी चाहिए थी। यह सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि गोले के भीतर यात्रियों और सभी अन्य वस्तुओं को मुक्त उड़ान के प्रथम क्षण से ही भारहीन हो जाना था।

यह असम्भव लगता है, पर मुझे विश्वास है कि आप जल्द ही आश्चर्य करेंगे : "इतनी बड़ी गलती पर मैंने खुद क्यों नहीं ध्यान दिया!"

[9] इसमें उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ बिल्कुल दूसरी तरह की हैं। 'मनोरंजक भौतिकी' के दूसरे भाग तथा मेरी अन्य पुस्तक 'अन्तर्ग्रही यात्राएं' में इस प्रश्न का सविस्तार किया गया है।

जूल वेर्न के इसी उपन्यास से एक उदाहरण लें। आप निश्चय ही यात्रियों के आश्चर्य को नहीं भूले होंगे, जब उन्होंने मरे कुत्ते की लाश को बाहर फेंक दिया और देखा कि लाश वापस जमीनपर नहीं गिर रही है, गोले के साथ-साथ आगे चली रही है। उपन्यासकार ने इस परिघटना का सही वर्णन किया है और उसकी सही व्याख्या की है। शून्य में सभी वस्तुएं सचमुच समान वेगसे गिरती हैं : पृथ्वी का आकर्षण सभी वस्तुओं को समान त्वरण प्रदान करता है। हमारे उदाहरण में भी पृथ्वी का आकर्षण गोले और लाश दोनों को समान अभिपातन वेग (समान त्वरण) देता है। यदि और सही कहें तो, तोप से प्राप्त आरम्भिक वेग दोनों ही के लिए समान रूप से कम होता है, समान रूप से घटता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पथ के हर बिन्दु पर गोले का वेग और लाश का वेग आपस में बराबर हैं। इसलिए गोले से फेंकी गई लाश उनके साथ चलती रहती है, उनसे पीछे नहीं छूटती।

लेकिन उपन्यासकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया : यदि कुत्ते की लाश गोले के बाहर होने पर पृथ्वी की ओर नहीं गिरती, तो गोले के भीतर क्यों गिरती है? आखिर एक ही तो बल बाहर और भीतर काम कर रहा है! गोले के भीतर कुत्ते के शरीर को बिना किसी आलम्ब के रखने पर उसे जैसे का तैजे व्योम में लटक जाना चाहिए : उसका वेग बिल्कुल गोले के वेग के बराबर है, अतः गोले के सापेक्ष वह अचल रहता है।

जो बात कुत्ते के लाश के लिए सही है, वही यात्रियों के शरीरों और गोले के भीतर अन्य सभी वस्तुओं के लिए सही है : पथ के हर बिन्दु पर उन सबका वेग वही है, जो गोले का है, अतः उन्हें गिरना नहीं चाहिए, चाहे वे निरालंब ही क्यों न हों। उड़ते गोले के फर्श पर खड़ी कुर्सी के पैरों को ऊपर कर के छत पर टिका दिया जा सकता है; वह 'नीचे' नहीं गिरेगी, क्योंकि वह छत के साथ-साथ आगे चलना जारी रखेगी। यात्री इस कुर्सी पर पैर ऊपर और सिर नीचे करके बैठा रह सकता है, पर फर्श पर गिरने की कोई प्रवृत्ति उसे महसूस नहीं होगी। कौन-सा बल उसे गिरने को बाध्य कर सकता है? यदि वह गिरती ही, अर्थात फर्श के निकट आने लगती, तो इसका अर्थ होता कि गोला कहीं अधिक वेग से चल रहा है, बनिस्बत कि यात्री (अन्यथा कुर्सी फर्श के निकट नहीं आती)। पर यह सम्भव नहीं है : हम जानते हैं कि गोले के भीतर सभी वस्तुएँ वही त्वरण रखती है, जो स्वयं गोले का है।

उपन्यासकार ने इस बातों पर ध्यान नहीं दिया : उसने सोचा कि मुक्त रूप से गतिमान गोले के भीतर वस्तुएँ, जो सिर्फ आकर्षण बल के प्रभाव में हैं, अपने आलम्बों पर उसी तरह दबाव डालेंगी, जैसे गोले की अचलावस्था में डाला करती थीं। जूल वेर्न भूल गया कि पिण्ड और उसका आलम्ब एक दूसरे पर दाब नहीं डाल सकते, यदि वे व्योम में गतिमान हैं और समान त्वरण रखते हैं, जो उन्हें आकर्षण बल द्वारा मिल रहा है (अन्य बाह्य बल -वायु) का संवाहक व प्रतिरोधी बल-अनुपस्थित हैं)।

निष्कर्ष निकलता है कि गोले के भीतर हवा में स्वतंत्र उड़ानें भरने के लिए यात्री उसी क्षण से भारहीन हो गए होंगे, जिस क्षण गोला गैसों के प्रभाव से बाहर निकला होगा। उन्हीं की तरह गोले के भीतर अन्य सारी वस्तुएँ भी भारहीन हो गई होंगी। भारहीनता के आधार पर यात्री सरलतापूर्वक निर्धारित कर सकते थे कि वे व्योम में उड़ रहे हैं या तोप की नली में ही स्थिर बैठे हैं। पर उपन्यासकार वर्णन करता है कि नभयात्रा के आरम्भ में आधे घण्टे तक लोग सिर खपाते रहे कि वे उड़ रहे हैं या जमीन पर ही पड़े हैं

'- निकोल, हम उड़ भी रहे हैं, या नहीं?

निकोल और अरदान ने देखा कि गोले में किसी प्रकार का कम्पन नहीं है।

- सचमुच! हम उड़ रहे हैं या नहीं? - अरदान ने प्रश्न दुहराया।
- या आराम से फ्लोरीदा की धरती पर लेटे हैं? - निकोल ने पूछा।
- या मेक्सीकन खाड़ी के तल पर ? - मशेल ने जोड़ा।
- इस प्रकार के संदेह स्टीमर-यात्रियों के मन में उठ सकते हैं, पर स्वतंत्र रूप से गतिमान गोले के यात्रियों के मन में नहीं : स्टीमर के यात्री का भार बना हता है, पर गोले में यात्री अवश्य ही ध्यान देंगे कि वे बिल्कुल भारहीन हो गए हैं।
- यह गल्पित गोला-यान एक अजूबा सा नजर आएगा। यह एक नन्हीं सी दुनिया होगी, जिसमें पिण्डों के भारनहीं होते, हाथ से छूट कर के गिरने की बजाए वहीं रूके रहते हैं, वस्तुएँ किसी भी स्थिति में सन्तुलन नहीं खोतीं, गिरे बोतल से पानी नहीं छलकता।... यह सब 'चन्द्र-यात्रा' के लेखक की दृष्टि से

छूटा रहा गया; और ये आश्चर्यजनक सम्भावनाएं उपन्यासकार की कल्पना को कितना विस्तृत करने का सामर्थ्य रखती हैं।[10]

खोटे तराजू से सही तौल

सही तौल के लिए क्या अधिक महत्व रखता है : तराजू या बाट?

यदि आप सोचते हैं कि दोनों ही का समान महत्व है, तो आप गलत हैं : खोटे तराजू से भी सही तौल ज्ञात किया जा सकता है, यदि हमारे पास सही बाट हों। खोटे तराजू से सही तौल ज्ञात करने के कई तरीके हैं; इनमें से दो को हम देखेंगे।

पहली विधि महान रसायनज्ञ दिमित्री मेंदेलीव द्वारा बताई गई थी। शुरू में किसी भी एक पलड़े पर कोई भारी वस्तु रखते हैं। उसका भार तौली जाने वाली वस्तु के भार से अधिक होना चाहिए। दूसरे पलड़े पर बाटों की मदद से इस भार को सन्तुलित करते हैं। इसके बाद बाटों वाले पलड़े पर तौली जाने वाली वस्तु रखते हैं और इतने बाट हटा लेते हैं कि टूटा हुआ सन्तुलन पुनः स्थापित हो जाए। हटाए गए बाटों का भार ही इष्ट भार होगा, क्योंकि तौली जाने वाली वस्तु बिना सन्तुलन बिगाड़े उनका स्थान ले सकती है।

इस विधि को स्थायी भार की विधि कहते हैं। यह विशेष कर उस स्थिति में सुविधाजनक हैं, जब एक के बाद कई वस्तुओं को तौलने की जरूरत पड़ती है। आरम्भिक भार अपनी जगह से नहीं हटाते; उसका उपयोग सभी तौलों में करते हैं।

चित्र 27. आदमी की केहुनी द्वितीय श्रेणी का उत्तोलक है। बल बिन्दु I पर क्रियाशील है; उत्तोलक का टेक बिन्दु O पर है; प्रतिरोध (भार R) बिन्दु B पर लग रहा है। I O की दूरी से BO करीब 8 गुना अधिक है। (चित्र XVII वी शती के फ्लोरेंसवासी वैज्ञानिक बोरेल की एक रचना 'जीव-जन्तुओं की गतियाँ' से ली गई है। इस पुस्तक में पहली बार शरीर क्रिया विज्ञान में यांत्रिकी के नियमों का उपयोग किया गया है)

दूसरी विधि, जिसे उसका आविष्कार करने वाले वैज्ञानिक के नाम पर 'बोर्ड विधि' कहते हैं, इस प्रकार है : एक पलड़े पर तौली जाने वाली वस्तु रखते हैं और दूसरी पर रेत रखना शुरू करते हैं। तराजू सन्तुलित हो जाने पर वस्तु हटा लेते हैं (बालू नहीं छूते) और उसकी जगह बाट रखना शुरू करते हैं। जब सन्तुलन पुनः स्थापित हो जाता है, बाटों का भार तौली जाने वाली वस्तु के भार के बराबर होता है। कारण स्पष्ट है : ये बाट बिना सन्तुलन बिगाड़े पलड़े से वस्तु को प्रतिस्थापित कर सकते हैं। इसीलिए इस विधि को 'प्रतिस्थापन विधि' भी कहते हैं।

यदि आपके पास सही बाट हैं, तो आपस इस विधि का उपयोग कमानीदार तुला के साथ भी कर सकते हैं, जिसमें सिर्फ एक पलड़ा होता है। इसमें बालू की आवश्यकता भी नहीं है। तौली जाने वाली वस्तु को पलड़े पर रखकर नोट कर लें कि तुला की सुई पैमाने के किस अंश (चिन्ह) पर रूकी है। फिर वस्तु को हटाकर पलड़े पर इतने बाट रखते हैं कि सुई पुनः उसी चिन्ह पर आ रुके। स्पष्ट है कि इन बाटों का कुल भार ही वस्तु का भार होगा।

स्वयं से भी शक्तिमान

हाथ से आप कितना बड़ा बोझ उठा सकते हैं? मान लें कि 10 किलो। आप सोचते हैं कि आपके हाथो में पेशियों की शक्ति यही है? गलतफहमी है। पेशियाँ कहीं अधिक शक्तिशाली है! उदाहरणार्थ, आप अपने हाथ के तथाकथित द्विशिरा पेशी की क्रिया पर ध्यान दें (चित्र 27)। उसका एक सिरो केहुनी की हड्डी के पास जुड़ा है (यही हडडी हाथ रूपी उत्तोलक की टेक भी है)। बोझ इस सजीव उत्तोलक के दूसरे सिरे पर क्रियाशील है। भार से टेक-बिन्दु, अर्थात जोड़, तक की दूरी पेशी के सिरे से टेक तक की दूरी से 8 गुनी अधिक है। अर्थात यदि बोझ 10

[10] भारहीनता की परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन आज अन्तरिक्ष-यात्रियों की जुबानी सुना जा सकता है। राकेटों में खींचें गए चल-चित्र भी प्रदर्शित किए जाते हैं। टेलीविजन के पर्दे पर अन्तरिक्ष में उड़ते यात्रियों और उनके भारहीन 'राकेटी-जीवन' को देखने का संयोग हमें अक्सर प्राप्त होता रहता है। - सम्पादक

किलो है, तो पेशी उसे 8 गुने अधिक बल से उठाती है। हाथ द्वारा 8 गुना अधिक बल लगाकर पेशी 10 किलो नहीं, 80 किलो उठा सकती है।

हम बिना किसी अतिशयोक्ति के कह सकते हैं कि हर आदमी अपने आप से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है, अर्थात् हमारी पेशियाँ जो बल लगाती हैं, वह हमारी क्रियाओं में प्रकट होने वाले बल से काफी बड़ा होता है।

क्या इस प्रकार की संरचना को मितव्ययी या विवेकसंगत कहा जा सकता है? प्रथम दृष्टि में नहीं लगता- यहाँ हम बल की बरबादी देखते हैं, जिसके बदले में कुछ भी नहीं मिलता। पर यांत्रिकी के एक पुराने 'स्वर्ण-नियम' का स्मरण करें : ताकत की बर्बादी कदमों की आबादी। बल में हानी स्थानांतरण में लाभ देता है और इसलिए वेग भी अधिक प्राप्त होता है। 8 गुना बल खर्च करने से हाथ 8 गुना जल्द हिल-डुल सकता है।

जीवों में पेशियों के जुड़ने की जो विधि हम देखते हैं, वह हाथ पैर को फुर्तीलापन देता है। जीवनसंघर्ष में यह बात शक्ति से कहीं अधिक महत्व रखती है। हम काफी सुस्त जीव होते, यदि हमारे हाथ-पैर इस सिद्धान्त पर नहीं बने होते।

तीक्ष्ण वस्तुएँ चुभती क्यों हैं?

आपने कभी इस प्रकार पर सोचा है कि सुई इतनी आसानी से क्यों चीज़ों के आर-पार चुभ कर निकल जाती है? मोटे कपड़े या गत्ते को पतली सुई से भोंकना क्यों आसान है, बनिस्बत कि भोथी काँटी से? देखने पर लगता है कि दोनों ही स्थितियों में बल समान लगते हैं।

बल समान हैं, पर दबाव या दाब समान नहीं है। प्रथम स्थिति में सारा बल सुई की नोक पर सकेन्द्रित हो जाता है और दूसरी स्थिति में वही बल कहीं बड़े क्षेत्र पर वितरित होता है, क्योंकि काँटी भोथी है। अतः सुई का दाब भोथी काँटी के दाब से कहीं अधिक है, हालाँकि हाथ से हम समान बल लगाते हैं।

हर आदमी यही कहेगा कि 20 दाँतों वाला हेंगा (ट्रैक्टरों में चक्केदार हेंगे होते हैं) अधिक गहराई तक जमीन ढीली कर सकता हैं, बनिस्बत की उसी भार का 60 दाँतों वाला हेंगा। क्यों? क्योंकि दूसरी स्थिति की अपेक्षा पहली में हर दाँत पर अधिक बोझ पड़ता है।

जब भी दाब का सवाल उठे, बल के सिवा उस क्षेत्र को भी ध्यान में रखना चाहिए, जिस पर बल कार्यशील है। जब हमें कहा जाता है कि एक आदमी का वेतन 100 रूबल है, हम नहीं जानते कि यह कम है या अधिक। इसके लिए जानना चाहिए कि यह वेतन मासिक है या वार्षिक। ठीक इसी प्रकार से बल की क्रिया इस पर निर्भर करती है कि वह एक वर्ग सेन्टीमीटर पर वितरित है या वर्ग मिलिमीटर के सौवे भाग पर संकेन्द्रित है।

भुरभुरे बर्फ पर स्की पहन कर आप चल सकते हैं, पर बिना स्की के आप बर्फ में धँस जाते हैं। क्यों? क्योंकि प्रथम स्थिति में आपके शरीर का दाब कहीं बड़े तल पर वितरित होता है। उदाहरणतया, यदि तलुवों के क्षेत्रफल से स्की के तल का क्षेत्रफल 20 गुना कम है,तो पैरों की अपेक्षा स्की से हम बर्फ को 20 गुनी कम शक्ति से दबाते हैं। भुरभुरा बर्फ इस दाब को सह जाता है, पर खाली पैरों से पड़ने वाले दाब को नहीं सह पाता।

इसी कारणवश दलदली जमीन पर काम करने वाले घोड़ों के खुरों पर खास 'जूते' पहनाए जाते हैं, जिससे पैरों की टेक का क्षेत्रफल बढ़ जाता है और जमीन पर दाब घट जाता है। कुछ दलदली हिस्सों में रहने वाले लोग भी ऐसे 'जूते' पहना करते हैं।

नदी या तालाब पर यदि बर्फ की परत काफी पतली हो, तो उस पर खड़े होकर नहीं, लेटकर रेंगते हुए चलते हैं, ताकि शरीर का भार अधिक बड़े क्षेत्र पर वितरित किया जा सके।

और अन्त में, टैंकों और चक्रपट्टी पर चलने वाले ट्रैक्टरों के भुरभुरी जमीन में नहीं फँसने का गुण इसीसे समझाया जा सकता हैः उनका भार काफी विस्तृत टेक-क्षेत्र पर वितरित रहता है। पट्टे पर चलने वाली 8 टन से अधिक भारी गाड़ी जमीन के 8 वर्ग सेन्टीमीटर पर 6000 g से अधिक दाब नहीं डालती। इसी दृष्टिकोण से चक्कों की बजाए पट्टों पर चलने वाली औटोगाड़ियाँ दलदलों पर भार ढोने के काम में अधिक उपयोगी हो सकती हैं। इस तरह का ट्रक 2 टन का बोझ ढोते वक्त जमीन के एक वर्ग सेन्टीमीटर पर सिर्फ 160 g दाब डालता है। इसलिए वह दलदली इलाकों में मजे से चल सकता है।

इन स्थितियों में बड़ा आलम्ब-क्षेत्र तकनीकी तौरपर उतना ही उपयोगी है, जितना सुई के उदाहरण में सूक्ष्म क्षेत्र।

उक्त बातों से स्पष्ट है कि वस्तुओं की नोक सिर्फ अपने नगण्य क्षेत्रफल के कारण ही चुभती है, जिस पर बल वितरित होता है। ठीक इसी कारणवश तेज छूरी अधिक अच्छी तरह काटती है, बनिस्बत कि भोथी : बल कम व्योम में संकेन्द्रित होता है।

इस प्रकार, तीक्ष्ण वस्तुएँ सरलतापूर्वक चुभती और काटती हैं, क्योंकि नोक और धार पर अधिक दाब संकेन्द्रित होता है।

लेविफान की तरह

साधारण स्टूल पर बैठने से वह कठोर क्यों लगता है, जबकि उसी लकड़ी की बनी कुर्सी मुलायम लगती है? कठोर रस्सी से बुनी खाट भी मुलायम लगती है, क्यों?

समझना कठिन नहीं है। साधारण स्टूल पर बैठने की जगह चौरस होती है और हमारा शरीर बहुत छोटे क्षेत्रफल वाले तल पर उसे स्पर्श करता है। धड़ का सारा बोझ इसी छोटे तल पर संकेन्द्रित होता है। कुर्सी पर बैठने लायक जगह थोड़ी गहरी (नतोदर) होती है। हमारा शरीर उसके तल के साथ अधिक बड़े क्षेत्र पर सटा होता है और इसी क्षेत्र पर हमारे धड़ का भार वितरित होता है। यहाँ स्पर्श-तल के इकाई क्षेत्रफल पर कम बोझ पड़ता है। कम दाब होता है।

इस प्रकार, बात सिर्फ दाब के समरूप वितरण में है। जब हम मुलायम गद्दे पर सोते हैं, हमारे शरीर के ऊबड़-खाबड़ तलों के अनुरूप उसमें गड्ढे आदि बन जाते हैं। हमारे शरीर के निचले भाग के तल पर (जो बिस्तर के साथ स्पर्श में है) दाब का वितरण पर्याप्त समान रूप से होता है, जिसके कारण हर वर्ग सेन्टीमीटर पर कुछ ग्राम के बराबर ही भार रहता है। आश्चर्य नहीं कि इन परिस्थितियों में हम बहुत आरामदेह महसूस करते हैं।

उपरोक्त अन्तर को संख्याओं में भी व्यक्त किया जा सकता है। वयस्क आदमी के शरीर पर तल क्षेत्रफल करीब 2 m^2 या 20000 cm^2 होता है। मान लें कि जब हम बिस्तर पर लेटते हैं, हमारे शरीर के पूरे तल का करीब 1/4 अंश, अर्थात 0.5m^2 या 5000 cm^2 उसके साथ स्पर्श में आता है। हमारे शरीर का भार (औसत) 60 किलो या 60000 ग्राम है, अतः हर वर्ग सेन्टीमीटर पर सिर्फ 12 ग्राम दाब पड़ता है। जब हम नग्न तख्ते पर लेटते हैं, तो हमारे शरीर के कुछ छोटे उभरे हिस्से ही आलम्ब-क्षेत्र बनाते हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल कुछेक सौ वर्ग सेन्टीमीटर ही होता है। अतः हर वर्ग सेन्टीमीटर पर दसेक ग्राम की बजाए कोई आधा किलोग्राम का दाब पड़ता है। यह अन्तर वृहत है और हम अपने शरीर द्वारा तुरन्त ही इसका अनुभव कर लेते हैं, और कहते हैं कि काफी 'कड़ा' है।

पर सबसे कठोर बिस्तर भी हमें अत्यंत मुलायम लग सकता है, यदि दबाव उसके बड़े हिस्से पर समान रूप से वितरित किया जा सके। कल्पना कीजिए कि आप नर्म गीली मिट्टी पर लेटते हैं। उस पर आपके शरीर की छाप उखड़ आती है। अब आप उठकर मिट्टी को सूखने दें (सूखने पर मिट्टी 5-10 प्रतिशत ''बैठती' या 'सिकुड़ती' है, पर मान लें कि ऐसा नहीं होता)। जब वह सूख कर पत्थर की तरह कठोर हो जाए, तो आप पुनः उस पर बने अपने शरीर के साँचे में लेट जाएं। आप अपने को मुलायम रूई के गद्दे पर महसूस करेंगे, कोई भी कठोरता नहीं लगेगी, यद्यपि आप अक्षरशः पत्थर पर ही लेटे हैं। आप किस्से के लेविफान की तरह बन जाएंगे, जिसके जिसके बारे में लोमोनोसोव ने कविता लिखी है :

पत्थरों पर सोता निर्विकार

करता कठोरता का तिरस्कार,

वज्र सा जीता शक्तिमान

चट्टानों को नर्म मिट्टी मान।

पर कठोरता के प्रति हमारी अंसवेदनशीलता का कारण हमारी 'वज्र शक्ति' नहीं है, बल्कि विस्तृत आलम्ब-क्षेत्र पर हमारे शरीर के भार का समरूप वितरण है।

अध्याय 3

परिवेश का प्रतिरोध

हवा में बुलेट

बुलेट क उड़ान में हवा बाधा डालती है, यह सभी जानते हैं। पर हवा की रोध शक्ति कितनी है, इसका सही अन्दाजा बहुत कम ही लोग लगा पाते हैं। अधिकांश लोग सोचते हैं कि हवा जैसा नर्म परिवेश, जिसे साधारणतया हम महसूस भी नहीं करते, बन्दूक की गोली के अबाध वेग में कोई बड़ी बाधा कैसे डाल सकता है।

चित्र 28. हवा व निर्वात में गोली की उड़ान। बड़ा चाप उस पथ को द्योतित करता है, जिस पर गोली वातावरण की अनुपस्थिति में चलती। बाएं छोटा चाप गोली का हवा में वास्तविक पथ द्योतित करता है।

पर यदि चित्र 28 पर ध्यान देंगे, तो आप समझ जाएंगे कि हवा बुलेट के रास्ते में सचमुच गम्भीर रुकावट है। आरेख में बड़ा चाप उस पथ को दर्शाता है, जिस पर गोली हवा की अनुपस्थिति में चलती। 45^0 के कोण पर करीब 620 m/s के आरम्भिक वेग से प्रक्षिप्त गोली बन्दूक से निकल कर बहुत बड़ा मेहराबी पथ तय करती, जिसकी ऊँचाई 10 km होती और लम्बाई करीब 40 km होती, पर यथार्थ परिस्थितियों में गोली अपेक्षाकृत अत्यन्त छोटा चापबनाती है और बन्दूक से सिर्फ 4 km की दूरी पर गिर जाती है। उसी आरेख में दर्शित यह चाप बिल्कुल नगण्य लगता है। यह है परिणाम हवा के प्रतिरोध का ! यदि हवा नहीं होती तो दुश्मन पर 40 km की दूरी से गोली चलाई जा सकती थी। उनके लिए यह 10 km की ऊँचाई से छर्रों की बौछार होती।

चित्र 29. अतिदूर मारक तोप के झुकाव-कोणों को बदलने पर गोलेकी उड़ानों में अन्तर; कोण 1 पर गोला p बिन्दु पर गिरता है, कोण 2 पर - p पर, कोण के 3 हो जाने पर उड़ान काफी लम्बी हो जाती है, क्योंकि गोला वातावरण की विरल परतों में भ्रमण करता है।

अतिदूर की चाँदमारी

दुश्मन पर सौ से अधिक किलोमीटर की दूरी से गोली चलाना साम्राज्यवादी युद्ध के अन्त (1918) में जर्मन तोपों ने शुरू किया, जब अंग्रेज और फ्राँसीसी विमानों ने जर्मनोंके हवाई आक्रमण को निष्क्रिय कर दिया। जर्मन सैनिक मुख्यालय ने फ्रौंट से करीब 110 किमी से भी दूर फ्राँस की राजधानी पर गोले बरसाने के लिए तोपों का सहारा लिया।

यह विधि बिल्कुल नई थी, किसी ने भी इसका प्रयोग नहीं किया था। जर्मनों के हाथ यह विधि सिर्फ संयोगवश ही आई थी। अधिक कोणों पर खड़े वृहत कैलीबरी तोपों से गोलेबारी करने पर देखा गया कि 20 किमी की बजाए गोले 40 किमी की दूरी पर गिरते हैं। यह परिणाम आशातीत था। पता चला कि वृहत आरम्भिक वेग से गोले को सीधा ऊपर भेजने पर वह ऊँचाई पर स्थित वातावरण के विरल परतों में प्रविष्ट हो जाता है, जहाँ हवा का प्रतिरोध काफी नगण्य होता है। ऐसे क्षीण प्रतिरोधी परिवेश में गोला अपने उड़ान पथ का बहुत बड़ा भाग तय कर लेता है और फिर सीधा नीचे जमीन की और गिरने लगता है। चित्र 29 दृष्ट रूप से दिखाता है कि तोप की नली का कोण बदलने पर गोलों के पथों में कितना बड़ा अन्तर हो जाता है।

जर्मनों द्वारा 115 किमी दूर स्थित पेरिस पर गोले बरसाने के लिए अतिदूरमारी तोपोंकी परिरचना के आधार में ये ही प्रेक्षण थे। सन् 1918 की गर्मियों में यह तोप सफलतापूर्वक बनकर तैयार हो गया। उसने पेरिस पर तीन सौ से अधिक गोले फेंके।

बाद में इस तोप के बारे में जो कुछ पता चला, वह इस प्रकार से है।

यह इस्पात की एक विशाल नली थी। यह 34 मी. लम्बी थी और पूरी एक मीटर मोटी थी। दीवार की मुटाई 40 सेमी. थी। अस्त्र का वजन 750 टन था। इसके 120 किलो भारी गोले एक मीटर लम्बे और 21 सेमी मोटे थे। इसमें 150 किलो बारूद होता था। तोप दागते वक्त यह बारूद 5000 वायुमण्डलीय दबाव उत्पन्न करता था, जो

गोले को 2000 m/s के आरम्भिक वे गसे प्रक्षिप्त करता था। गोलेबारी 52^0 के उत्थान कोण पर की जाती थी। गोले का उड़ान-पथ एक विशाल चाप था, जिसका उच्चतम बिन्दु जमीन से 40 किमी ऊपर, अर्थात सुदूर स्ट्रेटोस्फेयर में था। अपने स्थान से पेरिस तक की दूरी - 115 किमी वह 3.5 मिनट में तय करता था, जिसमें से 2 मिनट की उड़ान स्ट्रेटोस्फेयर में भरता था।

ऐसा था प्रथम अतिदूर मारक तोप, आधुनिक अतिदूर मारक तोपों का पूर्वज।

चित्र 30. जर्मन तोप "कोलोसल"। बाह्य रूप।

गोली (या गोले) का आरिम्भक वे ग जितना ही अधिक होगा, वायु का प्रतिरोध उतना ही स्पृश्य होगा : वह वेग के अनुपात में नहीं बढ़ात, बल्कि और तेजी से, वेग के अन्य उच्च घातों के अनुपात में बढ़ता है। यह वेग के परिमाण पर निर्भर करता है।

पतंग की उड़ान

आपने कभी समझने की कोशिश की है कि पतंग ऊपर पीछे उठती है, जबकि डोरी उसे पीछे खींचती है?

यदि आप इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं, तो आप यह भी समझ जाएंगे कि विमान कैसे उड़ता है, मैपल (पुतली वृक्ष) के बीज कैसे हवा में तैरते हैं और यहाँ तक कि बूमरैंग की विचित्र गति के कारणों को भी समझ लेंगे। ये सारी परिघटनाएँ एक ही प्रकार की हैं। वही हवा, जो गोली की गति में गम्भीर बाधक होती है, न केवल पतंग व मैपल बीज के उड़ने का कारण बनती है, बल्कि दसियों यात्रियों समेत भारी विमानों के भी उड़ने में सहायक बनती है।

पतंग के ऊपर उठने के कारण को समझने के लिए हमें सरलीकृत आरेख का सहारा लेना पड़ेगा। माना कि रेखा MN (चित्र 31) पतंग का काट द्योतित करती है। जब हम पतंग उड़ाते हैं, हम उसे डोर के सहारे खींचते हैं। पूँछ के भार के कारण वह झुकी स्थिति में उड़ती है। माना कि यह गति दाईं से बाईं ओर की है। a द्वारा क्षितिज के साथ पतंग के झुकाव के कोण को व्यक्त करते हैं। अब देखें कि इसप्रकार से गतिमान पतंग पर कौन-से बल कार्यशील हैं। हवा अवश्य ही उसकी गति में बाधा डालेगी और पतंग पर कोई दबाव डालेगी। यह दबाव चित्र 31 में तीर OC द्वारा दर्शाया गया है। चूँकि में हवा समतल पर हमेशा लम्बरूप से दबाव डालती है,रेखा OC लम्ब खींची गई है MN के। बलों का समान्तर चतुर्भुज बना कर हम बल OC को घटकों में विघटित कर सकते हैं; बल OC की जगह पर हमें दो बल OD और OP मिलेंगे। उनमें से बल OD हमारे पतंग को पीछे खींचता है और इसलिए उसके आरिम्भक वेग को कम कर देता है। दूसरा बल OP पतंग को ऊपर उठाने में लगा है; वह पतंग के भार को कम करता है। यदि बल OP इतना बड़ा हो कि पतंग के भार पर विजय प्राप्त कर ले, तो वह पतंग को ऊपर उठा सकता है। यही कारण है कि क्यों पतंग ऊपर उठती है, जबकि हम उसे पीछे की ओर खींचते हैं।

विमान भी पतंग ही है; सिर्फ उसमें हमारे हाथों की गति प्रेरक शक्ति की जगह पर पंखुड़ियों या प्रतिकारी चलित्रों की गति गति-प्रेरक शक्ति का काम करती हे, जो विमान को पीछे की गति देकर उसे उठने को विवश करती है। यहाँ पर परिघटना को मोटा-मोटी ही रेखांकित किया गया है। दूसरी परिस्थितियाँ भी हैं, जो विमान के ऊपर उठने में सहायक होती हैं। उनके बारे में अन्यत्र बात होगी।[11]

सजीव ग्लाइडर

आप देखते हैं कि विमान पक्षियों की नकल नहीं है, जैसा कि साधारणतया लोग सोचते हैं : वह उड़न-गिलहरी या उड़न-मछली से कहीं अधिक मिलता जुलता है। वैसे, उपरोक्त जीव अपनी उड़ने वाली झिल्लियों का उपयोग ऊपर उड़ने के लिए नहीं करते, बल्कि सिर्फ लम्बी छलाँगों (पायलट के शब्दों में 'तैरती उड़ानों') के लिए करते हैं। उनके लिए बल OP (चित्र 31) पर्याप्त नहीं होता कि उनके शरीर के बोझ को पूर्णतया सन्तुलित कर सके; वह सिर्फ उनके भार को कम कर देता है, जिसकी मदद से वे बड़ी-बड़ी ऊँचाईयों से भी छलाँग लगा सकते हैं (चित्र 32)। उड़न-गिलहरियाँ एक पेड़ की फुनगी (20-30 मी. ऊँची) से दूसरे पेड़ की निचली शाखाओं पर छलाँग लगाया करती हैं। लंका और इस्टइंडीज में काफी बड़ी उड़न-गिलहरियाँ होती हैं, जिन्हें तागुवान कहते हैं। आकार में बिल्ली के बराबर होती हैं। डैनों को फैलाने पर उनकी चौड़ाई आधे मीटर तक हो जाती है। इतनी बड़ी उड़नेकी

[11] दे. 'मनोरंज भौतिकी', दूसरी पुस्तक, शीर्षक 'तरंग और भंवर।'

झिल्लियाँ अपेक्षाकृत बड़े वजन के बावजूद भी उन्हें 50 मीटर तक की उड़ान में मदद देती हैं। अंगुलास्थिक, जो जोंद व फिलिपाइन द्वीपों पर पाए जाते हैं, 70 मी तक की छलाँगे लगा सकते हैं।

चित्र 31. पतंग पर क्रियाशील बल।

चित्र 32. उड़न-गिलहरियों की उड़ान। ऊँचाई से छलाँग लगाकर वे 20-30 मीटर दूर उड़ सकती हैं।

पौधे बिना मशीन के उड़ते हैं

पौधे भी अपने फलों और बीजों को फैलाने के लिए ग्लाइडरों का इस्तेमाल करते हैं। अनेक फलों और बीजों में बालों के गुच्छे लगे होते हैं (डैडेलियम, बकरदाढ़ी, कपास आदि की टीक), जो पैराशूट का काम करते हैं। बहुतों में अवलम्ब देने के लिए विशेष पंख सी झिल्ली लगी होती है। ऐसे वनस्पति-ग्लाइडर शकुलों,मैपलों,अल्मस, बर्च, चमखरक, लसौटा व अनेक छत्र-पुष्पों में देखे जाते हैं। केर्नेर फोन मैरिलाउन की विख्यात पुस्तक 'पादपों का जीवन' में निम्न पंक्तियाँ पढ़ सकते हैं :

'शान्त हवा और धूप के दिन बहुत से बीज ऊर्ध्वमुखी वायु संवहन धाराओं के साथ काफी ऊपर उड़ आते हैं' और सूर्यास्त के बाद कुछ दूरी पर अक्सर नीचे उतर आते हैं। इस तरहकी उड़ानें पौधों को दूर-दूर तक फैलाने में उतना महत्व नहीं रखतीं, जितना पहाड़ी ऊँचाइयों, सीधी ढलानों पर बने छिद्रों, दरारों, चट्टानों आदि पर बीजों को पहुँचाने में। ऐसी जगहों पर बीज दूसरी विधियों से नहीं पहुँच सकते हैं। क्षैतिज पवन-धाराएं बीजों को बड़ी-बड़ी दूरियों पर पहुँचा सकती हैं।

कुछ पौधों के बीज पंख और पैराशूट से सिर्फ तभी तक जुड़े रहते हैं, जब तक कि उड़ते रहते हैं। थिसल के बीज हवा में आराम से उड़ते हैं, पर जैसे ही मार्ग में कोई बाधा आती है, बीज पैराशूट से अलग होकर जमीन पर गिर जाता है। यही कारण है कि दीवारों और बाड़ों के पास थिसल इतना बहुतायत में पनपते हैं। दूसरी स्थितियों में बीज हमेशा पैराशूट से जुड़ा रहता है।

चित्र 33. बकरदाढ़ी का बीज

चित्र 34. पौधे के उडाकू बीज; - a - मैपल, b - पाइन c- करगच d- बर्च

चित्र 33 व 34 में चंद 'ग्लाइडर युक्त' बीज दिखाए गए हैं।

वनस्पति ग्लाइडर कई अर्थों में मानव-निर्मित ग्लाइडरों से भी अच्छे हैं। वे अपने वजन की तुलना में कहीं बड़ा बोझ उठा लेते हैं। इसके अतिरिक्त, वनस्पति ग्लाइडर में स्वपालित स्थिरता होती है : यदि भारतीय चमेली के बीज को उलट दिया जाए, तो हवा में उसका उन्नतोदर माग स्वयं नीचे हो जाएगा। यदि उसके मार्ग में बाधा आती है, तो वह सन्तुलन नहीं खोता, बल्कि तैरता हुआ नीचे उतर आता है।

पैराशूटीस्ट की विलम्बित छलांग

यहाँ आप पैराशूटी-छलाँग के निपुण खिलाड़ियों की वीरतापूर्ण छलाँगों को याद कर सकते हैं, जो करीब 10 किमी की ऊँचाई से पैराशूट खोले बगैर ही छलाँग लगाते हैं। अपने पथ का बहुत बड़ा हिस्सा तय करने के बाद ही वे पैराशूट के छल्ले को झटका देते हैं और सिर्फ आखिरी ौ-एक मीटर अपनी छतरियों के सहारे उड़कर जमीन पर आते हैं।

बहुत से लोग सोचते हैं कि बिना पैराशूट के आदमी वैसे ही गिरता है, जैसे शून्य में पत्थर। पर यदि ऐसी बात होती, तो विलम्बित छलाँग वास्तविकता से बहुत कम समय तक जारी रह सकती और छलाँग के अन्तिम क्षण में वेग विशाल होता।

पर हवा का प्रतिरोध वेग बढ़ने में बाधक होता है। विलम्बित छलाँग में पैराशूटिस्ट का वेग सिर्फ प्रथम दस सेकण्डों में ही प्रथम सौ-एक मीटर तय करते वक्त बढ़ता है। वेग-वृद्धि के साथ-साथ हवा के प्रतिरोध में इतनी तेजी

से वृद्धि होने लगती है कि शीघ्र ही वह क्षण आ जाता है, जब वेग का बढ़ना रुक जाता है। त्वरित गति समरूप गति में परिणत हो जाती है।

कलन कर के यांत्रिकी के दृष्टिकोण से विलम्बित छलाँग का चित्र प्राप्त किया जा सकता है। छतरीबाज का त्वरित अभिपातन उसके वजन के अनुसार प्रथम 12 या उससे कुछ कम सेकेण्डों तक ही जा सकता है और 50 m/s का वग प्राप्त कर लिया जा सकता है। छतरी खुलने तक बाकी सारा पथ वह इसी वेग वाली समरूप गति से गिरता है।

वर्षा की बूँदे भी करीब इसी प्रकार गिरती हैं। फर्क बस इतना है कि अभिपातन का प्रथम अवकाश, जिसमें वेग बढ़ता रहता है, एक सेकेण्ड या इससे भी कम समय तक जारी रहता है। इसलिए वर्षा की बूँद का अन्तिम वेग इतना बड़ा नहीं होता, जितना छतरीबाज काः वह बूँद के आकार के अनुसार 2 से 7 मीटर प्रति सेकेण्ड तक का हो सकता है।[12]

बूमरैंग

यह मौलिक अस्त्र आदिम मानव के तकनीक क सबसे विकसित सृष्टि है। लम्बे अर्से तक यह वैज्ञानिकों के आश्चर्य का कारण बना रहा। सचमुच में, विचित्र आर जटिल आकृतियाँ, जो बूमरैंग का पथ हवा में बनाता है (चित्र 35), किसी को भी सोच में डाल दे सकती हैं।

आधुनिक समय में बूमरैंग की उड़ान का सिद्धान्त विस्तारपूर्वक प्रतिपादित हो चुका है और उसकी उड़ान अब कोई चमत्कार नहीं रह गया है। इन दिलचस्प विस्तारों में हम नहीं जाएंगे। सिर्फ इतना बता दें कि बूमरैंग की उड़ान के ये असाधारण पथ निम्न तीन कारणों की आपसी क्रिया के फल हैं : 1) आरिम्भक प्रक्षेप, 2) बूमरैंग का घूर्णन और 3) हवा का प्रतिरोध। आस्ट्रेलियनवासी अन्तर्प्रेरणा से इन तीन घटकों को संयुक्त करता है; वह कौशलतापूर्वक बूमरैंग का नति-कोण (झुकाव का कोण) और प्रक्षेप-बल व उसकी दिशा परिवर्तित करता है, ताकि इष्ट परिणाम प्राप्त हों। वैसे, इस कला में कुछ निपुणता हर व्यक्ति हासिल कर सकता है। कमरे में अभ्यास के लिए आपको कागजी बूमरैंग से ही सन्तोष करना पड़ेगा, जिसे पोस्टकार्ड को चित्र 36 में दर्शित आकार में काट क प्रापत कर ले सकते हैं। हर शाखा की लम्बाई करीब 5 सेमी है और चौड़ाई 1 सेमी से कुछ कम है। अँगूठे के नाखून में इसे फँसा कर चुटकी से इस प्रकार मारें कि चोट की दिशा आगे, थोड़ा ऊपर की ओर हो। बूमरैंग कोई पाँच - एक मीटर उड़ जाएगा और तैरता हुआ वक्र-पथ बनाएगा, जो कभी-कभी जटिल भी हो सकता है, और यदि कमरे में किसी चीज से टकराएगा नहीं, तो आपके पैरों के पास आकर गिरेगा।

प्रयोग और सफल साबित होगा, यदि बूमरैंग को चित्र 37 की भाँति रूप और आकार दिया जाए। बूमरैंग की शाखा को एक हल्का मरोड़ देना भी लाभदायक होगा (चित्र 37 नीचे)। ऐसे बूमरैंग को आप थोड़ी निपुणता से ही जटिल वक्रों पर चलने और फिर आपके पास वापस लौटने को विवश कर सकते हैं।

अन्त में यह भी बता दें कि बूमरैंग सिर्फ आस्ट्रेलियन वासियों का ही अस्त्र नहीं रहा है, जैसा कि बहुत से लोग सोचते होंगे। वह भारत में भी कुछ स्थानों पर व्यवहृत होता है। भित्ति चित्रों के अवशेषों से लगता है कि वह कभी एसीरियन योद्धाओं के लिए आस अस्त्र था। प्राचीन मिस्त्र और नूबी में भी बूमरैंग ज्ञात था। आस्ट्रेलियनों के बूमरैंग र्मे एक ही असाधारण बात है कि उसे बीच से एक हल्की ऐंठन दे दी जाती है। यही कारण है कि आस्ट्रेलियन बूमरैंग आश्चर्यजनक वक्र बनाते हैं और निशाना चूकने पर वापस फेंकने वाले के पैरों पर आ गिरते हैं।

चित्र 35. आस्ट्रेलियावासी छिपकर बूमरैंग से निशाना लगाते
हैं। बूमरैंग का पथ (यहाँ निशाना चूक गय है।) बिन्दु रेखा
द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 36. कागजी बूमरैंग उसे चलाने का तरीका।

चित्र 37. कागजी बूमरैंग : का एक और रूप (अपने वास्तविक
आकार में)।

चित्र 38. मिस्त्र के एक प्राचीन चित्र में बूमरैंग चलाता हुआ
एक सैनिक।

---

[12] वर्षा की बूँदके वग के बारे र्मे मेरी पुस्तक 'मनोरंजक यांत्रिकी' में सविस्तार बताया गया है, और विलम्बित छलाँग के बारे र्मे - 'क्या आप भौतिकी जानते हैं?' नामक पुस्तक में।

अध्याय 4

घूर्णन "शाश्वत गति"

उबले और कच्चे अण्डों की पहचान

यद आवश्यकता पड़े, तो बिना छीले बता सकते हैं कि अण्डा उबला हुआ है या कच्चा? यांत्रिकी का ज्ञान ऐसी छोटी-मोटी दिक्कतों से छुटकारा दिलाने में सहायक हो सकता है।

बात यह है कि उबले और कच्चे अण्डे अलग-अलग प्रकार से घूर्णन करते हैं। उक्त समस्या को हल करने में इसी बात की सहायता ले सकते हैं। अण्डे को थाली या प्लेट में रखते हैं और दो ऊंगलियों से पकड़ कर तेजी से घिरनी की तरह घुमाते हैं (चित्र 39)। उबला हुआ (खासकर अच्छी तरह से) अण्डा काफी तजी से और देर तक घूर्णन करता रहेगा। कच्चे अण्डे को घूर्णन के लिए विवश करना भी कठिन है, जबकि अच्छी तरह उबला अण्डा इतनी तेजी से घूमना शुरू क देता है कि उसकी पर्याकृति घुलकर चपके दीर्घवृत्तज की तरह दिखने लगती है और वह अपने पतले सिरे पर भी खड़ा हो जा सकता है।

इन परिघटनाओं का कारण यह है कि अच्छी तरह से उबला हुआ अण्डा एक पूरे एकाश्म पिण्ड की तरह घूमता है, जबकि कच्चे अण्डे के भीतर का द्रव घूर्णनगति तुरन्त प्राप्त नहीं करता और जड़त्व के कारण ऊपरी कठोर कोण की गति को रोकने लगता है, ब्रेक का काम करने लगता है।

उबले और कच्चे अण्डे रोकने पर भी भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। घूर्णनरत उबले अण्डे को उंगली से छूने पर वह रुक जाता है। कच्चा अण्डा पल भर को रुक जाएगा, पर उंगली हटाते ह फिर थोड़ा घूमना शुरू कर देगा। इसका कारण भी जड़त्व ही है : कच्चे अण्डे में भीतरी द्रव तब भी घूमना जारी रखता है, जबकि ऊपरी कठोर कोष रुक चुका होता है। अच्छी तरह उबले अण्डे के भीतर जो कुछ होता है, ऊपरी कोष के रुकने के साथ ही रुक जाता है।

इस तरह के परीक्षण दूसरी विधि से भी सम्पन्न किए जा सकते हैं। एक उबले और एक कच्चे अण्डे की 'याम्योत्तर रेखा' पर रबड़ का एक छल्ला तान कर चढ़ा दीजिए और एक जैसी रस्सी से बाँधकर लटका दीजिए (चित्र 40)। रस्सियों को समान संख्यामें ऐंठन दे कर छोड़ दें। कच्चे और उबले अण्डों में अन्तर तुरन्त दिखा जाएगा। उबला अण्डा आरम्भिक स्थिति में आकर रुकेगा नहीं, बल्कि रस्सी को उल्टा ऐंठता हुआ चक्कर खाने लगेगा; इसके बाद ऐंठन को खोलता हुआ घूमने लगेगा और रस्सी को पहले जैसे ऐंठने लगेगा। यह चक्कर काफी देर तक चलता रहेगा। (हर बार चक्करों की संख्या कम होती जाएगी)। कच्चा अण्डा पुरानी स्थिति में आकर एकाध बार इधर-उधर घूमकर रुक जाएगा; उबले अण्डे के शान्त होने के बहुत पहले ही। उसकी गति में बाधक भीतर का द्रव पदार्थ होता है।

हास चक्र

छाता खोलें और फर्श पर उलटकर नोंक के सहारे घुमाना शुरू करें; उसे क्षिप्र गति देना कठिन नहीं होगा। अब छतरी में मुडा-चुड़ा कागज या एक छोटा गेंद डालें। ढाली गयी वस्तु छाते के भीतर नहीं रुकेगी, वह बाहर उछल आएगी। इसे 'केंद्रापसारी बल' का नाम गलत ही दिया गया है। दरअसल यह सिर्फ जड़त्व की अभिव्यक्ति है। गेंद त्रिज्या की दिशा में नहीं, चक्रीय गति के पथ की स्पर्शरेखा की दिशा में भागती है।

घूर्णन गति के इसी प्रभाव पर आधारित है मनोरंजन का एक साधन 'हास चक्र' (चित्र 41)। ये साँस्कृतिक पार्कों में देखे जा सकते हैं। इसमें आप को खुद अपने ऊपर जड़त्व के प्रभाव को झेलने का अवसर मिलता है। लोगएक गोल चबूतरे पर रहते हैं - बैठकर, लेटे या खड़े, जैसे पसन्द हो। नीचे छिपा हुआ चलित्र (मोटर) चबूतरे को ऊर्ध्वमुखी अक्ष के गिर्द नचाना शुरू कर देता है - पहले धीमी गति से, फिर धीरे-धीरे त्वरित करते हुए तेज गति से। शुरू में यह गति महसूस नहीं होती, पर इसके 'यात्री' जैसे-जैसे केन्द्र से दूर बड़ी से बड़ी त्रिज्या वाली परिधियों पर पहुँचते हैं, वेग और इसलिए गति का जड़त्व, अधिक अनुभूत होने लगता है। अपने स्थान पर टिके रहने के लिए कोई भी कोशिश क्यों न की जाए, लोग धीरे-धीरे 'हास चक्र' से बाहर फेंक दिए जाते हैं।

पृथ्वी का गोला भी सच पूछें तो 'हास चक्र' ही हैं। सिर्फ इसका आकार विराट है। पृथ्वी हमें अपने ऊपर से फेंकती तो नहीं है, पर वह हमारा वजन कम अवश्य कर देती है। विष्वक, पर जहाँ घूर्णन-वेग महत्तम है, उक्त कारण से भार 1/300 अंश तक घटता है। इसके साथ ही एक दूसरे कारण (पृथ्वी के संकोचन) से विष्वक पर वजन में कुल कमी आधे प्रतिशत (अर्थात, 1/200 अंश) की होती है। अतः विष्वक परवयस्क आदमी का भार 300 ग्राम कम होता है, बनिस्बत की ध्रुव पर।

स्याही का बवण्डर

सफेद चिकने गत्ते को गोल काटकर उसके केन्द्र में नुकीली की हुई माचिस की तीली चुभा लें। आपके हाथों में एक घिरनी होगी, जैसी चित्र 42 में बाएँ (वास्तविक माप से आधी छोटी) दिखाई गई है। तीली की तेज नोक पर घिरनी नचाने के लिए किसी खास कौशलता की जरूरत नहीं है; उँगलियों के बीच तीली को नचाते हुए जल्दी से किसी चिकने तल पर उसे गिरा देना काफी रहेगा।

ऐसी घिरनी के साथ बहुत ही काम के प्रयोग किए जा सकते हैं। उसे नचाने के पहले गत्ते की ऊपरी सतह पर स्याही की कुछ नन्हीं बूँदे डाल दें। उनके सूखने के पहले ही घिरनी नचाएं। जब वह रुक जाए, तो देखें कि बूँदों के साथ क्या हुआ है : उनमें से प्रत्येक बह कर सर्पिलाकार रेखा में परिणत हो गइ है और सभी सर्पिल मिलकर बवण्डर का सा चित्र बनाते हैं।

ऐसा चित्र बन जाना कोई संयोग की बात नहीं है। घिरनी पर स्याही के ये सर्पिल क्या बताते हैं? ये बूँदों की गति के निशान हैं। बूँद उसी प्रभाव के अन्तर्गत आ जाती है, जिसके अन्तर्गत आदमी नाचते 'हास चक्र' पर होता है। केन्द्रापसारी प्रभाव के कारण केन्द्र से दूर होने पर बूँद चकरी के उस स्थान पर पहुँच जाती है, जहाँ चक्रीय वेग बूँद के वेग से अधिक होता है। इन स्थानों पर चकरी बूँद के नीचे से खिसक जाती है, उसे पीछे छोड़ देती है। यहाँ बात इस प्रकार से है : बूँद मानों चकरी से पीछे रह जाती है, त्रिज्या से पीछे हट जाती है। इसीलिए उसका पथ वक्रित हो जाता है और हम चकरी पर वक्ररेखिल गति का निशान देखते हैं।

यह बात पवन-धाराओं के साथ घटती है, जो वातावरण के उच्च दबाव वाले स्थान से दूर भागती हैं (प्रतिचक्रवात में) या निम्न दबाव वाले स्थान की ओर दौड़ती हैं (चक्रवात में)। स्याही की सर्पिलें इन्हीं विराट बवण्डरों के छोटे रूप हैं।

चित्र 41. 'हास चक्र'। घूमते चक्के पर से लोग किनारी की
ओर फिसलने लगते हैं।

चित्र 42. कागज की घिरनी पर स्याही की बूँदों का बहना।

धोखे में पड़ा पौधा

क्षिप्र घूर्णन से केन्द्रापसारी प्रभाव इतनी बड़ी मात्राएं धारण कर सकता है कि वह गुरुत्व से भी बड़ा हो जाता है। एक दिलचस्प प्रयोग पेश है, जो दिखाता है कि साधारण चक्का भी घूमने पर कितना बड़ा फेंकने वाला बल उत्पन्न कर सकता है। हमें ज्ञात है कि नन्हा पौधा अपना डंठल गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में बढ़ाता है, अर्थात् यदि सरल शब्दों में कहें, ऊपर की ओर पनपता है। लेकिन क्षिप्र घूर्णित चक्के की किनारी पर बीज को पनपने दें, जैसा कि अंग्रेज वनस्पति-वैज्ञानिक नाइट ने सौ साल से भी पहले किया था। आप आश्चर्यजनक चीज़ देखेंगे : पौधों की जड़ें बाहर की ओर निकली होंगी और डंठल, पत्ते आदि चक्के के केन्द्र की ओर त्रिज्या की दिशा में (चित्र 43)।

हमने मानों पौधें को धोखे में डाल दिया है : उस पर गुरुत्व बल के बदले दूसरे बल का प्रभाव डाल दिया, जिसकी क्रियाशीलता चक्के के केन्द्र से बाहर की ओर निर्दिष्ट है। और चूँकि अँकुर हमेशा गुरुत्व के विपरीत दिशा में बढ़ता है, उसे इन परिस्थितियों में चक्के के भीतर किनारी से अक्ष की ओर बढ़ना पड़ा। हमारा कृत्रिम गुरुत्व प्राकृतिक गुरुत्व से अधिक शक्तिशाली निकला[13] और पौधा उसी के प्रभाव में पनपा।

---

[13] गुरुत्व की प्रकृति पर आधुनिक दृष्टिकोण इन दोनों के बीच कोई सैद्धांतिक फर्क नहीं देखता।

"चिर-चलित्र"

"चिर-चलित्र" और "चिर-गति" के बारे में अक्सर लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष अर्थों में बोला करते हैं, पर शायद ही सभी समझते हों कि इन शब्दों का अर्थ क्या है। चिर-चलित्र एक ऐसा काल्पनिक यंत्र है, जो अविराम स्वयं चलता रहता है। और साथ ही कोई कार्य भी सम्पन्न करता रहता है (जैसे भार उठाना)। ऐसा यंत्र कोई भी नहीं बना सका, हालाँकि बनाने की कोशिशें पुराने जमाने से हो रही हैं। इन प्रयत्नों की असफलता से चिर-चलित्र की असंभाव्यता में विश्वास और आधुनिक विज्ञान में ऊर्जा संरक्षण नियम की स्थापना में सहायता मिली। जहाँ तक चिर-गति (शाश्वत गति) का प्रश्न है, इसका अर्थ बिना कार्य-सम्पन्नता के अविराम गति है।

चित्र 44 में एक मिथ्या स्वचल यंत्र दिखाया गया है। यह चिर चलित्र की प्राचीनतम प्रायोजनाओं में से एक है, जो अभी भी असफल दुराग्रहियों के कारण पुनर्जन्म को प्राप्त होता रहता है। चक्के के किनारों पर छोटे-छोटे छड़ लगे हैं, जिनके दूसरे सिरों पर बोझ जुड़े हैं। चक्का किसी भी स्थिति में हो, उसकी दाएं ओर के बोझ केन्द्र से दूर रहते हैं, बनिस्बत कि बाएं ओर के। इसलिए दाएं ओर के बोझ बाएं बोझों को उठाते हुए नीचे की ओर लुढकेंगे और चक्के को चला देंगे। इसका मतलब है कि चक्का चिरकाल तक चलना चाहिए, कम से कम तब तक, जब तक कि अक्ष घिस न जाए। आविष्कारक ने यही सोचा होगा। फिर भी, यदि ऐसा चलित्र बनाया जाए, वह घूमेगा नहीं। आविष्कारक का सोचा हुआ कामगर नहीं रहा, क्यों?

कारण यह है : दाहिनी तरफ के गुल्ले चक्के के केन्द्र से दूर जरूर हैं पर कभी न कभी ऐसा क्षण आएगा ही, जब इन गुल्लों की संख्या बाएं गुल्लों की संख्या से कम हो जाएगी। चित्र 44 पर नजर डालिए : दाएं गुल्लों की संख्या सिर्फ 4 है, बाएं - 8। इससे सारी प्रणाली सन्तुलित हो जाएगी और चक्का घूमेगा नहीं; कुछेक बार झूलकर इसी स्थिति में रुक जाएगा।[14]

चित्र 43. घूमते चक्के की किनारी पर पनपता बीज। फुनगी
अक्ष की ओर बढ़ रही हैं और जड़-बाहर की ओर।

चित्र 44. मध्ययुगीन मिथ्या शाश्वत चलित्र।

चित्र 45. लुढ़कते गोलों वाला मिथ्या शाश्वत चलित्र।

अब अकाट्य रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि ऐसा यंत्र नहीं बनाया जा सकता, जो अनवरत अपने आप चलता रहे और साथ-साथ कोई कार्य भी सम्पन्न किया करे। इस समस्या पर श्रम करना बिल्कुल निरर्थक है। पुराने जमाने में, खासकर मध्य युग में, लोगों ने इस समस्या के हल पर बहुतही सर खपाया और 'चिर चलित्र' (लातीनी में पेरपेतुउम मोबीले, perpetuum mubile) के आविष्कार में बहुत ही श्रम और समय बर्बाद किया। ऐसा चलित्र प्राप्त करना सस्ते धातुओं से सोना बनाने की कला से भी अधिक आकर्षक था।

पुश्किन ने अपने 'सामन्तकालीन शूरवीरों के जीवन से कुछ दृश्य' में एक ऐसा ही सपना देखने वाले व्यक्ति बेरतोल्द का चित्रण किया है :

'- घ्ङ्खद्धद्रङ्घ्यद्वद्वश्च श्र्दृडत्थ्ङ्क क्या है? - मार्तीन ने पूछा।'

'- घ्ङ्खद्धद्रङ्घ्यद्वद्वश्च श्र्त्डत्थ्ङ्क ऽ बेर्तोल्द उसे बताता है, - शाश्वत गति है।'

यदि शाश्वत गति बना सकूँ, तो फिर मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों की कोई सीमा नहीं रह जाएगी... देखो, मेरे अच्छे मार्तीन! स्वर्ण बनाना आकर्षक काम है, मनोरंजक भी और फायदेमंद भी, पर ढूँढ लेना ... अरे...'।

सैकड़ों 'चिर चलित्र' सोच-सोच कर निकाले जा चुके हैं, पर उनमें से एक भी चला नहीं। आविष्कारक हर बार, जैसा कि हमारे उदाहरण में हुआ था, कोई न कोई छोटी सी चीज़ भूल जाया करता था, या ध्यान नहीं देता था, जिससे उसकी योजना भंग हो जाती थी।

[14] इस प्रकार की प्रणालियाँ आघूर्ण-प्रमेय की सहायता से निरूपित होती हैं।

यह रहा चिर-चलित्र का एक और नमूना ; चक्के में भारी गोलियाँ हैं जो नीचे की ओर लुढ़का करती हैं (चित्र 45)। आविष्कारक ने सोचा था कि चक्के में एक तरफ की गोलियाँ हमेशा केन्द्र से दूर वाली किनारी पर रहेंगी और अपने भार से चक्के को चलने पर विवश करेंगी।

जाहिर है कि चक्का घूमेगा नहीं। कारण वही है, जो कि चित्र 44 में दर्शित चक्के के साथ था। पर अमेरिका के एक शहर में एक ऐसा ही चक्का बनाया गया। इसका लक्ष्य एक रेस्तरां के लिए खूबसूरत विज्ञापन देना था, ताकि ग्राहकों का ध्यान आकर्षित हो (चित्र 46)। यह 'शाश्वत चलित्र' यत्न से छिपाकर रखी गई मशीनसे चला करता था, पर दर्शकों को लगता था कि चक्का दरारों में रखे भारी गोलियों के लुढ़कने से चल रहा है। एक समय था, जब लोगों को आकर्षित करने के लिए घड़ीसाज अपनी दुकानों में ऐसे नकली शाश्वत चलित्र रखाकरते थे। इन चलित्रों को छुपे-रुस्तम बिजली से चलाया जाता था।

एक बार एक ऐसे ही विज्ञापन वाले 'शाश्वत चलित्र' के कारण मुझे काफी तंग होना पड़ा। मेरे कुछ मजदूर छात्र इससे इतने आश्चर्यचकित थे कि उन पर शाश्वत चलित्र की असंभाव्यता के प्रमाणों का कोई असर नहीं पड़ रहा था। कंचों का लुढ़क-लुढ़क कर चक्का चलाना और फिर इसी चक्के से ऊपर उठना - यह दृश्य मेरे तर्कों से अधिक प्रभावशाली निकला। मेरे भाग्य से उस समय छुट्टियों के दिन बिजली नहीं मिलती थी। मैंने अपने छात्रों को सलाह दी कि वे किसी ऐसे दिन शो-केस के निकट जा कर देखें। उन्होंने मेरी बात मान ली।

चित्र 46. लोस-ऐंजेल्स शहर (कैलीफोर्निया) में विज्ञापन के
लिए रचा गया मिथ्या शाश्वत चलित्र।

- क्या हाल है चलित्र का, आपने देखा? - मैंने प्रश्न किया।
- नहीं, - निराश उत्तर दिया उन्होंने। - वह दिखा नहीं; अखबार से ढका था...
- ऊर्जा संरक्षण नियम ने पुनः उनका विश्वास जीत लिया और इसके बाद फिर कभी खोया नहीं।

"अड़चन"

अनेक रूसी स्वशिक्षित आविष्कारक भी 'शाश्वत चलित्र' की मोहक समस्या को हल करने में लगे थे। ऐसे एक साइबेरियन किसान अलेक्सांदर शेग्लोव का चित्रण शेद्रिन के उपन्यास 'आधुनिक रमण-काव्य' के एक पात्र 'प्रेजेंतोव बाबू' के रूप में किया गया है। शेद्रिन इस आविष्कारक की कर्मशाला देखने गए थे, जिसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं :

'प्रेजेंतोव बाबू की उम्र पैंतिस वर्ष थी, शरीर दुबला-पतला, चेहरा पीला, आँखें बड़ी और चिन्तनशील, बाल डोरी-से गर्दन तक लटके हुए। उनकी लकड़ी की झोपड़ी काफी बड़ी थी, लेकिन आधी जगह एक बहुत बड़े गति-पालक चक्के ने घेर रखा था और इसलिए हम मुश्किल से अंट रहे थे। चक्का तीलियों वाला था। उसकी रिम तख्तों को ठोक कर बनाई गई थी और काफी मोटी, बक्सों जैसी भीतर से खोखली थी। इसी खाली स्थान में आविष्कारक निर्मित यंत्र का राज छिपा था। राज कोई खास जटिल नहीं था; बस बालू की बोरियाँ थीं, जो मिलकर एक दूसरे को सन्तुलित कर सकती थीं। चक्के में एक डण्डा फँसा था, ताकि वह चलता न रहे।'

- हम लोगों ने सुनाकि आप शाश्वत गति के नियम को व्यवहार में ला रहे हैं? - मैंने बात शुरू की।
- क्या कहूँ, पता नहीं, - हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया, - लगता है, मानों कि ....
- हम देख सकते हैं?
- क्या कहते हैं? यह तो सौभाग्य है....
- वह हमें चक्के के पास ले गया, फिर चारों ओर से दिखाया। पता चला कि आगे, पीछे - सब तरफ से चक्का चक्का ही था।
- घूमता है?
- घूमना तो चाहिए। नखरे कर रहा है वैसे...

- सिटकिनी हटाई जाए?

- प्रजेंतोव ने डण्डा खींचकर निकाल लिया। चक्का हिला भी नहीं।

- नखरे कर रहा है! - उसने दुहराया, - थोड़ा जोर लगाना पड़ेगा।

उसने दोनों हाथों से चक्का पकड़ लिया, कुछेक बार ऊपर-नीचे झुलाया और एक जोर की पेंगे देकर छोड़ दिया। चक्का चल पड़ा। कुछ चक्कर तो उसने काफी तेजी से और बिना किसी बाधा के आराम से पूरे कर लिए। पर सुनाई दे रहा था, किस प्रकार रेत की बोरियाँ चक्के की भीतरी दीवारों से घिस रही थीं और कैसे उनसे छूट-छूट कर गिर रही थीं। इसके बाद चक्के का घूमना मंद होने लगा। एक चरमराहट की आवाज आयी और इसके बाद वह बिल्कुल रुक गया।

कोई अड़चन लग रही है भीतर, - आविष्कारक ने व्यग्र स्वर में समझाया और फिर से दम लगाकर चक्के को एक जोर की पेंग दी।

पर दूसरी बार भी वही हुआ।

- घर्षण का हिसाब शायद आपने नहीं लगाया था?

- घर्षण का भी लगाया था... घर्षण है ही क्या? घर्षण के कारण नहीं; बस, यूं ही... कभी-कभी तो मन खुश कर देता है, और इसके बाद फिर एकदम से... नखरे करने लगता है, अड़ जाता है - और बस। जरा ढंग का सामान होता... चक्का तो इधर-उधर की टुकड़ियों से जोड़-जाड़ कर बना है।"

स्पष्ट है कि यहाँ सवाल 'अड़चन' या 'अच्छी निर्माण सामग्री' का नहीं, बल्कि यंत्र के मुख्य विचार की जटिलता का है। चक्का आविष्कारक द्वारा धक्का खाने पर थोड़ा बहुत चल लेता है, लेकिन जब यह बाह्य-सम्प्रेषित ऊर्जा घर्षण के साथ संघर्ष में समाप्त हो जाती है, तो चक्के को रुकना ही पड़ता है।

उफिम्त्सेव का संचायक

गति के कारण को पता लगाए बगैर सिर्फ उसके बाह्य रूप और ढाँचे के आधार पर उसे 'शाश्वत' कहना गलत होगा। इस बात की सत्यता उफिम्त्सेव द्वारा आविष्कृत यांत्रिक ऊर्जा के संचायक से सिद्ध होती है। कूर्स्की शहर के अ. गि. उफिम्त्सेव ने एक नये प्रकार के पवनशक्ति-केन्द्र का निर्माण किया। इसमें गतिसामक चक्र की तरह के सस्ते 'जड़त्वीय' संचायक का इस्तेमाल हुआ था। सन् 1920 में उफिम्त्सेव ने अपने संचायक का एक चक्कीनूमा प्रतिमान तैयार किया। चक्की ऊर्ध्व अक्ष पर बाल-बेयरिंग के सहारे घूमती थी। यह सब एक चमड़े की थैली में रखा था, जिसमें से पम्प द्वारा हवा निकाली जा चुकी थी। चक्की को 20000 चक्कर प्रति मिनट का आरम्भिक वेग दिया गया और वह 15 दिनों तक इसी तरह घूमती रही। सतही तौर पर देखने वाला व्यक्ति चक्की के अक्ष को देखकर इसे शाश्वत गति का कार्यान्वयन ही कहता, क्योंकि ऊर्जा का कोई स्पष्ट स्रोत सामने नहीं था।

चमत्कार : है भी और नहीं भी

'शाश्वत' चलित्रों में पीछे निरर्थक दौड़ ने अनेक लोगों की जिन्दगी बर्बाद की है। मैं एक मजदूर को जानता हूँ, जो अपनी सारी बचत और तनख्वाह शाश्वत चलित्रों के प्रतिमान बनाने में खर्चकर दिया करता था। वह अपने असम्भव विचारों का बलिदान बन गया था। उसके पासस पहननेको कपड़े नहीं होते थे, भूखा रहता था, पर वह लोगों से साधन माँगता था 'अन्तिम प्रतिमान' के लिए, जो 'अवश्य ही चलता रहता'। अफसोस होता था कि यह आदमी भौतिकी के आरिम्भक ज्ञान न होनेके कारण ही इतनी गरीबी में जी रहा था।

मजे की बात यह है कि 'शाश्वत' गति की खोज हमेशा निष्फल रही है, पर उसकी असंभाव्यता के गूढ़ ज्ञान ने अनेक लाभप्रद वैज्ञानिक निष्कर्षों को जन्म दिया है।

इसका एक सुन्दर उदाहरण है नत-तलों पर बल-सन्तुलन के नियम की खोज। खोजकर्ता हालैण्ड (XVI वीं-XVII वीं शती) के वैज्ञानिक स्टेविन थे। उन्हें इतनी ख्याति नहीं प्राप्त हुई, जितनी होनी चाहिए थी। उन्होंने अनेक महत्व्पूर्ण खोजें की, जिनका हम निरन्तर प्रयोग करते हैं, जैसे दशमलव भिन्न, बीजगणित में घात का प्रयोग, जल-स्थैतिक नियम, जिसकी बाद में पास्कल ने पुनः खोज की।

नत-तल पर बल-सन्तुलन के नियम की खोज स्टेविन ने बल समान्तर चतुर्भुज के नियम की सहायता के बिना सिर्फ एक आरेख की मदद से की (दे. चित्र 47)। त्रिफलकी प्रिज्म पर 14 मोती की एक माला लटकी है। मोती समान हैं। माला के साथ क्या होगा? नीचे लटके मोती आपस में सन्तुलन कर लेते हैं। पर माला के अन्य दो भाग एक दूसरे को सन्तुलन में रखते हैं या नहीं? अन्य शब्दों में : दाईं ओर के दो मोती बाईं ओर के चार मोतियों से सन्तुलित होते हैं या नहीं? अवश्य होते हैं, अन्यथा माला निरन्तर दाएं से बाएं सरकती रहती, क्योंकि आगे बढ़े मोतियों की जगह नए मोती आ जाते और सन्तुलन कभी भी स्थापित नहीं होता। पर हम जानते हैं कि माला उक्त स्थिति में स्थिर रहती है, खुद ब खुद घूमती नहीं रहती, इसलिए स्पष्ट है कि दाईं ओर के दो मोती बाईं ओर के चार मोतियों को सन्तुलित कर लेते हैं। यह एक चमत्कार सा लगता है : दो मोती उसी बल से खींच रहे हैं, जिससे कि चार।

स्टेविन ने इस मिथ्या चमत्कार से यांत्रिकी का एक महत्वपूर्ण नियम निकाला। उसने इस प्रकार सोचा। माला के ये दो भाग - लम्बा और छोटा- अलग-अलग प्रकार से लटके हैं : एक भाग दूसरे से उतना ही गुना अधिक भारी है, जितना गुना प्रिज्म का लम्बा फलक छोटे वाले से अधिक है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि रस्सी से जुड़े दो बोझ नत तलों पर एक दूसरे को सन्तुलित कर लेते हैं, यदि उनका भार तलों की लम्बाइयों के समानुपाती होता है।

स्थिति विशेष में, यदि छोटा तल लम्बवत खड़ा हो, हमें यांत्रिकी का एक विख्यात नियम प्राप्त होता है : नत तल पर पिण्ड को रोक रखने के लिए इस तल की दिशा में ऐसे बल को लगाना चाहिए, जो पिण्ड के भार से उतना ही गुना छोटा हो, जितनी तल की ऊँचाई उसकी लम्बाई से छोटी है।

इस प्रकार, शाश्वत चलित्र की असंभाव्यता के आधार पर यांत्रिकी के एक महत्वपूर्ण नियम की खोज हुई।

कुछ और 'शाश्वत चलित्र'

चित्र 48 में आप एक भारी चेन देखते हैं, जो चक्कों पर इसप्रकार लगा है कि हर स्थिति में उसका दायां भाग बाएं से लम्बा रहता है। इसीलिए, आविष्कारक ने सोचा - दाएं भाग को निरन्तर नीचे गिरते रहना चाहिए और इससे पूरे यंत्र को चलते रहना चाहिए। क्या यह सही है?

बेशक नहीं। हम अभी-अभी देख चुके हैं कि भारी चेन को हल्का चेन सन्तुलित कर लेता है, क्योंकि उन्हें खींचने वालेबल भिन्न कोणों पर कार्यशील हैं। इस यंत्र में बायां चेन लम्बवत लटक रहा है और दायां तिरछे लगा हुआ है। इसलिए दायां चेन भारी होने के बावजूद भी हल्के को नहीं खींचेगा। यहाँ प्रत्याशित "शाश्वत" गति प्राप्त नहीं हो सकती।

पिछली शती की साठवीं दशाब्दी में एक अत्यंत चालाक आविष्कारक का "शाश्वत" चलित्र पेरिस की प्रदर्शनी में दिखाया जा रहा था। चलित्र एक चक्का था जिसमें भारी गोलियाँ लुढ़कती रहती थीं। आविष्कारक का दावा था कि चक्के की गति को कोई नहीं रोक सकता। दर्शक एक के बाद एक चक्के को रोकने की कोशिश करते थे, पर हाथ हटाते ही चक्का पुनः चालू हो जाता था। किसी को यह शक नही होता था कि चक्का दर्शकों द्वारा रोकने की कोशिश से ही चलता था; रोकने के लिए चक्का पीछे घुमाने से यंत्र में घड़ी की तरह चाबी पड़ जाती थी - स्प्रिंग अत्यंत सावधानी से छिपा हुआ था...

प्योत्र प्रथम के समय का "शाश्वत चलित्र"

1715-1722 में प्योत्र प्रथम द्वारा लिखे गए पत्र और उनके उत्तर बचे हैं, जिनमें जर्मनी में आविष्कृत एक शाश्वत चलित्र के बारे में बातचीत चल रही थी। आविष्कारक कोई डा. ओरफीरेउस था। जर्मनी में उसके "स्वचालित चक्के" के कारण उसे काफी ख्याति मिल रही थी। त्सार[15] से वह काफी बड़ी कीमत ऐंठना चाहता था। विद्वान पुस्तकालयाध्यक्ष शुमाखेर, जिसे प्योत्र ने दुर्लभ वस्तुओं के संग्रह के लिए पाश्चात्य देशों में भेजा था, ओरफीरेउस की माँग के बारे में त्सार को लिखा :

चित्र 47. "चमत्कार भी, और नहीं भी"।

चित्र 48. क्या चलित्र शाश्वत है?

---

[15] अंग्रेजी में 'जार'। येफीमक - करीब एक रूबल मूल्य की पुरानी रूसी मुद्रा-इकाई।

"आविष्कारक अन्तिम मूल्य बता रहा है : 100 000 येफीमक[16] रख दीजिए और मशीन ले जाइए।"

अपनी मशीन के बारे में आविष्कारक का कहना था कि (पुस्तकालयाध्यक्ष के शब्दों में) वह "सही है और कोई भी उसका मजाक नहीं उड़ा सकता' दुर्जनों की बात दूसरी है और दुनिया ऐसे ही लोगों से भरी है, जिनका विश्वास नहीं किया जा सकता"।

1725 की जनवरी में प्योत्र इस "शाश्वत चलित्र" को देखने के लिऐ जर्मनी जाने वाले थे, पर इसी बीच उनकी मृत्यु हो गई।

यह ओरफीरेउस कौन था और उसकी मशीन कैसी थी। इन प्रश्नों पर प्रकाश डालने वाली सूचनाएं प्राप्त करने में मुझे कुछ सफलता मिली।

ओरफीरेउस का वास्तविक नाम बेस्लेर था। उसका जन्म 1680 में जर्मनी में हुआ था। उसने ईश्वर-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, चित्रकला आदि का अध्ययन किया और अंत में वह "शाश्वत" चलित्र के आविष्कार में लग गया। ऐसे हजारों आविष्कारकों में सबसे भाग्यशाली ओरफीरेउस ही था। मशीन दिखा-दिखा कर कमाए पैसों से उसने मृत्यु-पर्यन्त आराम की जिन्दगी बसर की। उसकी मृत्यु सन् 1745 में हुई थी।

चित्र 49 एक पुरानी पुस्तक से लिया गया है। इसमें ओरफीरेउस की मशीन दिखाईगई है। 1714 में वह ऐसी ही थी। आप एक बहुत बड़ा चक्का देखते हैं, जो मानों खुद घुमता रहता था और साथ ही एक बड़ी ऊँचाई तक भारी बोझ भी उठा लेता था।

इस अद्‌भूत आविष्कार की ख्याति, जिसे विद्वान डाक्टर पहले मेलों में दिखाया करता था, शीघ्र ही पूरे जर्मनी में फैल गई। ओरफीरेउस ने कई प्रभावशाली व्यक्तियों का वरदहस्त प्राप्त कर लिया। पोलैण्ड के राजा ने उसमें दिलचस्पी ली, फिर नवाब कासेल-हेसेन ने निमंत्रण दिया। नवाब ने उसे अपने किले में स्थान दिया और हर तरह से मशीन की परीक्षा ली।

उदाहरणार्थ, 12 नवम्बर 1717 को मशीन एक अलग कमरे में चला दी गई और कमरा ताले से बन्द कर दिया गया। दरवाजे पर मूहर लगा दी गई और दो सेनाध्यक्षों के ऊपर पहरे की जिम्मेदारी डाल दी गई। 14 दिनों तक कोई भी कमरे के निकट नहीं गया। सिर्फ 26 नवम्बर को सील तोड़ा गया और नवाब अपने दरबारियों के साथ कमरे में घुसे। चक्का उसी गति से चल रहा था! मशीन को अच्छी तरह से देख-सुन लेने के बाद उसे पुनः चालू किया गया और इस बार कमरे को चालिस दिनों तक सील-बंद रखा गया। सेनाध्यक्ष पहरा देते रहे। जब 4 जनवरी 1718 को दरवाजा खोला गया, विशेषज्ञों की टोली ने मशीन को चलती अवस्था में पाया!

नवाब को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने अपना प्रयोग फिर से दुहराया और मशीन दो महीनों तक बंद रखी गई। अवधि समाप्त होने पर मशीन चालू पाई गई।

नवाब ने खुश होकर आविष्कारक को एक प्रमाणपत्र दिया, जिसके अनुसार उसका "शाश्वत चलित्र" प्रति मिनट 50 बार घूमता था, 16 किलो भारी वस्तु को 1.5 मीटर की ऊँचाई तक उठा सकता था; उससे लुहार की भाथी और छूरी पिंजाने का चक्का चल सकता था। ओरफीरेउस इसी प्रमाणपत्र को लिए यूरोप में भ्रमण कर रहा था। पैसे उसे काफी मिल रहे थे; शायद इसलिए वह अपनी मशीन 100 000 रूबल से कम में बेचने को तैयार नहीं हो रहा था।

डॉ. आरेफीरेउस के इस आश्चर्यजनक आविष्कार की खबर अब जर्मनी के बाहर यूरोपीय देशों में फैलने लगी। वह रूस भी पहुँची। प्योत्र, जो अजीबोगरीब मशीनों का बेहद शौकीन था, इसकी ओर आकर्षित हुआ।

सन् 1715 की अपनी एक विदेश यात्रा के दरम्यान ही प्योत्र ओरफीरेउस के चक्के के बारे में सुन चुका था। उस समय उसने एक विख्यात राजनीतिज्ञ अ. इ. ओस्तेरमान के हाथ इस मशीन के अध्ययन का कार्य सौंपा। ओस्तेरमान ने मशीन के बारे में एक सविस्तार प्रतिवेदन लिख ओरफीरेउस को एक महान आविष्कारक के रूप में अपने यहाँ काम करने के लिए आमंत्रित करना चाहता था और इसके बारे में उस समय के विख्यात दर्शनशास्त्री ख्रिस्टियान वोल्फ (लोमोनोसोव के गुय) का ख्याल जानना चाहता था।

---

[16] येफीमक - करीब एक रूबल मूल्य की पुरानी रूसी मुद्रा-इकाई।

विख्यात आविष्कारक को हर तरफ से लाभप्रद आमंत्रण मिल रहे थे। ऐश्वर्यशाली लोग उस पर दया की वर्षा कर रहे थे; कवि उसकी मशीन के लिए कीर्तिगान लिख रहे थे। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे, जिन्हें इसमें धोखा दिख रहा था। कुछ साहसी लोग ओरफीरेउस को खुलेआम ठग कह रहे थे; धोखा सिद्ध करने वाले को 1000 मार्क का इनाम ऐलान किया जा रहा था। ओरफीरेउस की ठगी का पर्दाफाश करते हुए किसी पुस्तिका ने एक चित्र छापा, जिसे हम यहाँ दे रहे हैं (चित्र 50)। इसके अनुसार रहस्य सिर्फ यही है कि अच्छी तरह से छिपा हुआ आदमी रस्सी खींचता रहता है। खम्भे के भीतर चक्के के अक्ष का जो भाग हैं, उसी पर रस्सी लपेटी गई है, इसीलिए वह दिखती नहीं।

इतना बारीक धोखा सिर्फ एक संयोग के कारण ही खुल सका। विद्वान डाक्टर का उसकी पत्नी और नौकरानी के साथ झगड़ा हो गया। उन्हें शायद हम आज भी इस "शाश्वत चलित्र" के रहस्य को नहीं समझ पाते। ज्ञात हुआ कि "शाश्वत चलित्र" सचमुच में छिपे आदमियों के श्रम से गतिमान रहता था, जो छिपे-रूस्तम रस्सी खींचा करते थे। ये लोग थे - डाक्टर का भाई और उसकी नौकरानी।

भण्डाफोर होने पर भी आविष्कारक ने हार नहीं मानीं; वह मरने तक यही दुहराता रहा कि झगड़े के कारण उसकी पत्नी और नौकरानी ने उस पर लाँछना लगाया है। लेकिन उस पर से लोगों का विश्वास खत्म हो चुका था। प्योत्र के दूत शुमाखेर को वह यूँ ही नहीं कहा करता था कि लोग बुरे हैं और "दुनियां ऐसे ही लोगों से भरी है, जिनका विश्वास नहीं करना चाहिए।"

प्योत्र प्रथम के समय ही जर्मनी में एक और "शाश्वत चलित्र" था। आविष्कारक का नाम था हेर्टनेर। इस मशीन के बारे में शुमाखेर ने लिखा था : श्रीमान हेर्टनेर का Perpetuum Mobile जिसे मैंने ड्रेस्डेन में देखा, कपड़े का बना है। उस पर बालू रखा है। मशीन का रूप छूरी पिंजाने वाले चक्के की तरह है और अपनी जगह से आगे पीछे घूमता रहता है। श्रीमान इन्वेन्टर (आविष्कारक) के शब्दों में, वह काफी बड़ा नहीं किया जा सकता। इसमें कोई शक नहीं कि यह चलित्र भी लक्ष्य से बहुत दूर था। उसे अच्छा सोच-समझ कर बनाया गया था, लेकिन वह भी "शाश्वत" चलित्र नहीं था। शुमाखेर बिल्कुल सही था, जब उसने प्योत्र को लिखा कि अंग्रेज और फ्रांसीसी विद्वान "इन सारे पेरपेतुउस मोबीले को कोई महत्व नहीं देते और कहते हैं कि गणितीय सिद्धांतों के विरुद्ध है"।

चित्र 49. ओरफिरेउस का स्वचलित चक्का, जिसे प्योत्र - क्ष
खरीदते-खरीदते रह गए। (एक पुराने चित्र से)।

चित्र 50. ओरफिरेउस के चक्के का रहस्य। (पुराने चित्र से)

अध्याय 5

द्रव और गैस के गुण

दो केतलियों से सम्बन्धित प्रश्न

आपके सामने समान चौड़ाई की दो केतलियाँ हैं : एक कुछ ऊँची हैं, दूसरी - कुछ नीची। किसमें अधिक पानी अँटेगा?

बहुत से लोग शायद बिना कुछ सोचे-समझे कह देंगे कि ऊँची केतली में अधिक अंटेगा। यदि आप ऊँची केतली में कोई द्रव ढालना शुरू करेंगे, तो देखेंगे कि टोंटी की ऊँचाई से अधिक नहीं ढाल सकते; द्रव गिरने लगेगा। चूँकि दोनों केतलियों में टोंटियों के छेद समान ऊँचाई पर स्थित हैं, बड़ी केतली में उतना ही द्रव अंटेगा, जितना छोटी में।

यह स्पष्ट है, क्योंकि केतली और उसकी टोंटी में द्रव का स्तर समान ऊँचाई पर होगा। जुड़े बर्तनों में यही होता है। टोंटी में स्थित द्रव का भार केतली के द्रव से काफी कम होता है, फिर भी द्रव के स्तरों की ऊँचाईयाँ दोनों जगह समान होती हैं। यदि टोंटी पर्याप्त ऊँची नहीं है, तो आप केतली को द्रव से किसी भी तरह नहीं भर सकते हैं। पानी टोंटी से गिरने लगेगा। इसलिए टोंटी अक्सर केतली की किनारी से कुछ ऊँची ही रखी जाती है, ताकि केतली को थोड़ा ही झुकाने पर पानी न गिरने लगे।

प्राचीन काल में कया नहीं जानते थे

आधुनिक रोम के निवासी आज भी प्राचीन काल में निर्मित पन-संचारी नाले के अवशेषों का उपयोग करते हैं। रोमन गुलामों का बनाया नाला बहुत ही ठोस था।

पर गुलामों के काम का नेतृत्व करने वाले रोमन इंजिनियरों का ज्ञान इतना ठोस नहीं था; बिल्कुल साफ है कि वे भौतिकी के नियमों से अनभिज्ञ थे। म्यूनिख में स्थित जर्मन संग्रहालय से लिए गए इस चित्र को देखें (चित्र 52)। आप देखते हैं कि रोमन पन-नाला जमीन के भीतर नहीं, पत्थर के ऊँचे खम्भों पर रखा जाता था। ऐसा क्यों? क्या आज की तरह जमीन में जलनली बिछाना सरल नहीं होता? बेशक, यह सरल होता, पर उस समय के रोमन इंजिनियरों को संचारी (जुड़े) बर्तनों के नियम का पर्याप्त ज्ञान नहीं था। उन्हें डर था कि अत्यंत लम्बे नलों से जुड़े जलाशयों में जल का स्तर समान नहीं रहेगा। यदि पाइप जमीन की प्राकृतिक ढलानों पर बिछाए जाएं, तो कहीं-कहीं पर पानी को ऊपर की दिशा में बहना होगा। रोमनों को यही डर था कि पानी ऊपर नहीं बहेगा। इसलिए वे पानी-नलों को उनके पूरे पथ पर समरूप झुकाव देते थे (और इसके लिए या तो नलियों को घुमा-फिरा कर ले जाना पड़ता था या फिर ऊँचे खम्भों पर बिछाना पड़ता था। रोमन पाइपों में से एक, आक्वा, मार्शिया, करीब 100 किमी लम्बा है, जबकि उसके छोरों के बीच की सीधी दूरी दुगुनी कम है। पत्थर का पचास किलोमीटर लम्बा पुल बनाना पड़ा, सिर्फ इसलिए कि भौतिकी के सरल नियमों का ज्ञान नहीं था।)

चित्र 51. किस केतली में अधिक पानी ढाला जा सकता है।

चित्र 52. प्राचीन रोम की जल-प्रदाय प्रणाली का आरम्भिक रूप।

द्रव नीचे बर्तन के तल पर और बगल में दीवारों पर दबाव डालता है - यह वे भी जानते हैं, जिन्होंने कभी भौतिकी का अध्ययन नहीं किया है। लेकिन बहुतों को शक भी नहीं होता होगा कि द्रव ऊपर की दिशा में भी दबाव डालते हैं। साधारण लालटेन के शीशे की मदद से यह दिखाया जा सकता है। गत्ते से एक वृत्त काट लें, जो लालटेनी शीशे का एक मुँह बन्द कर सके। गत्ते से एक वृत्त काट लें, जो लालटेनी शीशे का एक मुँह बन्द कर सके। उससे मुँह बन्द करके चित्र 53 की भाँति शीशे को पानी उसे या तो उंगली से दबा कर रखें या उसके केन्द्र से बँधी डोरी द्वारा पकड़े रहें। शीशे को एक विशेष गहराई तक डुबा लेने पर आप देखेंगे कि वृत्त खुद अपनी जगह पर चिपका रह सकता है; उसे ऊंगली या धागे से पकड़े रहने की आवश्यकता नहीं है। पानी नीचे से ऊपर की ओर दबाता हुआ उसे अपनी जगह पर चिपका देता है।

आप इस ऊर्ध्वमुखी दबाव को नाप भी सकते हैं। शीशे में सावधानी से पानी ढालना शुरू करें। जैसे ही शीशे के भीतर पानी का स्तर बाहरी पानी के बराबर हो जाएगा, गत्ते का वृत्त नीचे गिर जाएगा। इसका अर्थ है कि गत्ते पर नीचे से पड़ने वाला दबाव ऊपर से पड़ने वाले शीशे में स्थित जल-स्तम्भ के दबाव द्वारा सन्तुलित हो जाता है (जल-स्तम्भ की ऊँचाई उतनी ही है, जितनी गहराई पर गत्ते का वृत्त है)। द्रव में डूबे किसी भीपिण्ड पर दबाव पड़ने का यही नियम है। द्रव में भार का लोप, जिसके बारे में आर्कमेडिस ने बताया था, इसी ऊर्ध्वमुखी दबाव के कारण होता है।

यदि आपके पास समान छेद वाले, पर भिन्न आकार के शीशे हों, तो द्रवों से संबंधित आप एक और नियम की जाँच कर ले सकते हैं। नियम यह है : बर्तन के पेंदे पर द्रव का दबाव सिर्फ पेंदे के क्षेत्रफल और द्रव स्तर की ऊँचाई पर निर्भर करता है, बर्तन के आकार पर नहीं। जाँच यही है कि आप लालटेन के भिन्न आकार वाले शीशों के साथ उपरोक्त प्रयोग दुहराते हैं। सिर्फ सभी शीशों को द्रव में एक ही गहराई तक डुबाना होगा (और इसके लिए आपको शीशों पर पहले से ही समान ऊँचाईयों पर कागज के पट्टे चिपका लेने होंगे)। आप देखेंगे कि हर बार गत्ता तभी गिरता है, जब शीशों में पानी की एक विशेष ऊँचाई होगी। यह ऊँचाई सभी आकार वाले शीशों के लिए समान होगी (चित्र 54)। इसका मतलब यही है कि भिन्न आकार वाले जल-स्तम्भों का दबाव समान होगा, यदि उनकी ऊँचाइयाँ और उनके आधार के क्षेत्रफल समान होंगे। इस बात पर विशेष ध्यान दें कि यहाँ स्तम्भों की लम्बाई नहीं, बल्कि ऊँचाई का महत्व है, क्योंकि लम्बा, पर तिरछा झुका हुआ स्तम्भ उतना ही दबाव डालेगा, जितना उसी ऊँचाई का सीधा खड़ा छोटा स्तम्भ डालता है (यदि उनके आधार बराबर हैं)।

कौनसा पलड़ा भारी है?

तराजू के एक पलड़े पर पानी से लबालब भरी बाल्टी रखी है। दूसरे पर भी पानी से लबालब भरी वैसी ही बाल्टी है, पर उसमें लकड़ी का एक टुकड़ा तैर रहा है (चित्र 55)। कौन-सा पलड़ा अधिक भारी होगा?

चित्र 53. द्रव नीचे से ऊपर की ओर दबाता है, -यह देखने
का आसान तरीका।

चित्र 54. पेंदे पर द्रव का दाब सिर्फ पेंदे के क्षेत्रफल और द्रव-
स्तर की ऊँचाई पर निर्भर करता है। चित्र में दिखाया गया है
कि इस नियम की जाँच कैसे की जाए।

मैंने यह प्रश्न कई अलग-अलग लोगों से किया और उत्तर भी अलग-अलग ही मिला। कुछ लोगों ने जवाब दिया कि लकड़ी वाली बाल्टी अधिक भारी होगी, क्योंकि उसमें "पानी के सिवा लकड़ी का टुकड़ा भी है"। दूसरों ने बताया कि लकड़ी के टुकड़े वाली बाल्टी हल्की होगी, "क्योंकि लकड़ी पानी से हल्की होती है"।

दोनों ही उत्तर गलत हैं : दोनों बाल्टियों का भार समान होगा। यह सच है कि दूसरी बाल्टी में पहली की अपेक्षा कम पानी है, क्योंकि तैरता हुआ लकड़ी का टुकड़ा पानी का कुछ आयतन विस्थापित कर देता है। पर प्लवन के नियम के अनुसार तैरता हुआ पिण्ड द्रव में डुबे हुए अपने भाग द्वारा ठीक उतना द्रव (भार के दृष्टिकोण से) विस्थापित करता है, जितना पूरे पिण्ड का भार होता है। इसलिए तराजू सन्तुलन की अवस्था में रहेगा।

अब एक दूसरा प्रश्न हल करें। एक पलड़े पर अगल-बगल एक बाट और एक गिलास में थोड़ा पानी रेख देता हूँ। जब दूसरे पलड़े पर आवश्यक बाट रख कर तराजू सन्तुलित कर लेता हूँ, गिलास के बगल में रखा बाट गिलास में डाल देता हूँ। तराजू के सन्तुलन का क्या होगा?

आर्कमेडिस के नियमानुसार बाहर से उठाकर पानी में रखनेसे बाट हल्का हो जाता है। अतः अतः उम्मीद की जा सकती है कि गिलास वाला पलड़ा ऊपर उठ जाएगा। पर ऐसा होता नहीं। कैसे आप यह समझायेंगे?

गिलास में आकर बाट पानी का कुछ भाग विस्थापित कर देता है, जिसके कारण गिलास में पानी का स्तर कुछ ऊपरउठ आता है। जलस्तम्भ की ऊँचाई में वृद्धि गिलास के पेंदे पर पड़ने वाले दबाव में वृद्धि ला देता है, जो बाट के भार में ह्रास के बराबर होता है।

द्रव का स्वाभाविक रूप

हम सोचने के आदी हो गए हैं कि द्रवों का अपना कोई रूप नहीं होता। यह गलत है। द्रव का स्वाभाविक रूप है गोला। अक्सर गुरुत्व भार द्रवों को गोले का रूप नहीं धारण करने देता। द्रव या तो तल पर पतली परत के रूप में फैल जाता है, या बर्तन का रूप धारण कर लेता है (यदि उसमें ढाला जाऐ)। यदि द्रव को उसी विशिष्ट भार वाले दूसरे द्रव में ढाला जाए, तो आर्कमेडिस के नियम के अनुसार वह अपना भार "खो" देता है, जैसे उसका भार हो ही न। गुरुत्व उस पर कार्य नहीं करता और तब इस हालत में द्रव अपना स्वाभाविक गोलाकार रूप धारण करता है।

जैतून का तेल पानी में तैरता है, पर स्पिरिट में डूब जाता है। इसलिए पानी और स्पिरिट का ऐसा मिश्रण तैयार किया जा सकता है। जिसमें जैतून का तेल न तो डूबेगा और न ही तैरेगा। ऐसे मिश्रण में सुई देने वाली पिचकारी द्वारा थोड़ा तेल डाला जाए, तो एक विचित्र बात नजर आएगीः तेल एक बड़ी गोल बूँद का रूप धारण कर लेगा, जो न डूबेगी, न तैरेगी; मिश्रण में गतिहीन लटकी रहेगी[17] (चित्र 56)।

प्रयोग बहुत धीरज व सावधानी के साथ करना चाहिए, अन्यथा एक बड़ी बूँद के बदले कई नन्हीं बूँदे बन जाएंगी। वैसे, प्रयोग इस रूप में भी रोचक रहेगा।

चित्र 55. दोनों बाल्टियाँ समान हैं और पानी लबालब भरा है, एक में लकड़ी का टुकड़ा तैर रहा है। कौन अधिक भारी होगा।

चित्र 56. पानी और स्पिरिट के मिश्रण में तेल न डूबता है, न तैरता है - वह गोले का आकार ग्रहण कर लेता है।

चित्र 57. यदि तैल गोले में पतली छड़ घुसाकर उसे मिश्रण में तेजी से घुमाया जाए, तो उसमें एक छल्ला अलग हो जाएगा।

काम यहीं खत्म नहीं हो जाता। तैलीय गोले के केन्द्र से एक लकड़ी की पतली छड़ (यदि छड़ न हो, तो पतला तार) अक्ष की तरह गुजार कर उसे घिरनी सा घुमाते हैं। तैलीय गोला भी नाचने लगता है। (प्रयोग और भी सफल होगा, यदि अक्ष पर तेल में भीगे गत्ते का वृत्त चिपका दें; वृत्त गोले के भीतर ही होना चाहिए।) घूर्णन के प्रभाव से गोला पहले थोड़ा चपटा होना शुरू कर देता है, और फिर कुछ सेकेण्ड बाद उससे एक छल्ला-सा अलग हो जाता है। (चित्र 57)। छल्ला अनियमित रूप वाले टुकड़ों में नहीं टूटता। उससे नई छोटी-छोटी गोल बूँदें बन जाती हैं, जो बड़े वाले गोले के चारों तरफ घूमना शुरू कर देती हैं।

इस शिक्षाप्रद प्रयोग को प्रथमतः बेल्जियन भौतिकविद प्लेटों ने किया था। हमने उनके प्रयोग को उसी रूप में प्रस्तुत किया है। उसका अधिक सरल और कारगर रूप निम्न है। एक नन्हा गिलास पानीसे खंगाल लेते हैं और उसमें जैतून का तेल भर कर उसे एक बड़े गिलास में रख देते हैं। बड़े गिलास में सावधानीपूर्वक इतना स्पिरिट ढालते हैं कि छोटा गिलास डूब जाए। अब चम्मच से बड़े गिलास में दीवार के सहारे थोड़ा-थोड़ा कर के पानी ढालते हैं। छोटे गिलास में तेल का ऊपरी तल उन्नतोदर होने लगेगा और तेल धीरे-धीरे गोले का रूप धारण करता हुआ छोटे गिलास से ऊपर उठ आएग और बड़े गिलास में बने पानी और स्पिरिट के मिश्रण में लटका रहेगा। (चित्र 58)।

यदि स्पिरिट न हो, तो ऐनिलिन के साथ भी प्रयोग कर सकते हैं। यह एक ऐसा द्रव है, जो साधारण तापक्रम पर पानी से भारी होता है और 75-85^{0}C पर उससे हल्का होता है। पानी में उसे ढाल करयदि गर्म किया जाए, तो एक बड़े गोले का रूप धारण कर लेगा। कमरे के तापक्रम पर ऐनिलिन की बूँद नमक के घोल में सन्तुलित की जा सकती है।[18]

छर्रे गोल क्यों होते है?

अभी बताया गया कि कोई भी द्रव भारहीनता की अवस्था में अपना स्वाभाविक गोलाकार रूप धारण कर लेता है। इसके पहले कहा गया था कि गिरता हुआ पिण्ड अपना भार खो देता है और उसके गिरने के बिल्कुल शुरू में

[17]बूँद का गोला विकृत रूप में न दिखे, इसके लिए शीशे की समतल दीवारों वाला बर्तन लेना चाहिए। (या बर्तन किसी भी आकार का ले लीजिए, पर उसे पानी से भरे समतल दीवारों वाले बर्तन के भीतर रखिए।)।

[18] दूसरे द्रवों में सुविधाजनक आर्थोतोलाइडीन रहेगा। यह गाढ़े लाल रंग का द्रव है; 24^0 पर इसका घनत्व उतना ही होता है, जितना नमकीन पानी का, जिसमें इस द्रव को ढालते हैं।

हवा का प्रतिरोध नगण्य होता है[19]। इन सब बातों को यदि ध्यान में रखेंगे, तो फौरन समझ जाएंगे कि स्वतंत्र गिरते हुए द्रवांश का रूप गोल होना चाहिए। वर्षा की गिरती बूँदें गोल ही होती हैं। छर्रे और कुछ नहीं, बल्कि पिघले सीसे की बूँदे हैं, जिन्हें कारखानों की विधि के अनुसार एक बड़ी ऊँचाई से ठण्डे पानी के टब में गिराया जाता है। यहाँ वे बिल्कुल गोलाकार रूप धारण किए जम जाती हैं।

इस विधि द्वारा ढाला गया छर्रा "मीनारी" कहलाता है, क्योंकि उसे छर्रे की ढलाई करने वाले मिनार से पिघली बूँदों के रूप में गिराया जाता है (चित्र 50)। कारखानों में छर्रे की ढलाई करने वाला मीनार धातु का बना होता है और 45 मी. होता है। सबसे ऊपर ढलाई की जाती है; वहाँ कड़ाहों में सीसा पिघलाया जाता है। नीचे ठण्डे पानी का टब होता है। यहाँ के बाद छर्रो की चुनाई-बिनाई जाती है। पिघले सीसे की बूँदे गिरते वक्त रास्ते में ही जमकर छर्रों में बदल जाती हैं। पानी उनके गोल आकार को चोट से विकृत नहीं होने देता। (6 मिमी. से अधिक व्यास वाले छर्रे दूसरी विधि से बनाए जाते हैं : तार को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उन्हें गोलाकार बेल दिया जाता है।)

चित्र 59. छर्रे बनाने के लिए मीनार

"अथाह" गिलास

आपने गिलास पानी से लबालब भर दिया है। गिलास के पास पिन पड़े हैं। क्या गिलास में एक-दो पिन के लिए जगह बन सकती है? कोशिश करके देखें।

गिलास में एक-एक कर पिन डालना शुरू करें और उन्हें गिनते जाएं। डालिए देख सुनकर : सावधानी से पानी में पहले नोक डुबाएं, फिर बिना दबाव डाले या ठोकर दिए पिन को हाथ से छोड़ दें, ताकि हिचकोले से पानी छलके नहीं। एक पिन पेंदे पर गिर चुका है, दूसरा, तीसरा... ... पानी की सतह ज्यों की त्यों है। दस, बारह, तेरह... पानी गिरता नहीं है। पचास, साठ, सत्तर... पूरे सौ पिन पेंदे पर गिर चुके हैं, पर गिलास का पानी नहीं गिरता (चित्र 60)।

पानी गिरेगा क्या, वह उठा भी नहीं है गिलास में। पिन डालना जारी रखें। दो, तीन, चार सौ पिन गिलास में आ चुके हैं, पर पानी गिरने का नाम नहीं लेता। लेकिन अब आप देख सकते हैं कि पानी की सतह फूल गई है और गिलास की कोर से काफी ऊपर उठ आई है। इस जटिल परिघटना का सारा रहस्य इसी फूलने में है। शीशे की सतह यदि थोड़ी भी तैलीय हो, तो पानी शोशे को नहीं भिगोता। जैसा कि हमारे द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले सभी बर्तनों के साथ होता है, गिलास के कोरों पर भी ऊंगलियों की तैलीय छाप रह जाती है। पिनों द्वारा विस्थापित जल कोर को भिगोता नहीं और इसलिए ऊपर उठने के साथ--साथ उन्नतोदर सतह बना देता है। देखने पर सतह अधिक फूला हुआ नहीं लगता, पर यदि आप कलन द्वारा एक पिन का आयतन ज्ञात करने का श्रम करेंगे और उसकी तुलना गिलास के कोर से ऊपर उठे पानी की उत्तलता के आयतन के साथ करेंगे, तो आपको विश्वास हो जाएगा कि पिन का आयतन पानी की उत्तलता के आयतन से सैकड़ों गुना कम है और इसलिए "भरे" गिलास में कुछेक सौ पिन और अँट जाएंगे। बर्तन जितना ही चौड़ा होगा, उसमें पिन भी उतनेही अधिक अँटेंगे, क्योंकि फुलावट का आयतन इस स्थिति में और अधिक होगा।

स्पष्टता लाने के लिए मोटा-मोटी हिसाब लगाएं। पिन की लम्बाई करीब 25 मिमी है और मोटाई आधा मिलिमीटर। ऐसे बेलन का आयतन ज्यामिति के जाने पहचाने सूत्र $\left(\frac{\pi d^2 h}{4}\right)$। की मदद से ज्ञात करना कठिन नहीं है; वह 5 घन मिलिमीटर के बराबर होगा। सिर समेत पिन का आयतन 5.5 मिमी. से अधिक नहीं होगा।

अब गिलास के कोर से ऊपर उठे पानी की परत का आयतन ज्ञात करते हैं। गिलास का व्यास 9 cm = 900 mm है। यदि ऊपर उठे पानी की परत 1 मिमी मोटी है, तो उसका आयतन 6400 मिमी^{3} होगा। यह पिन के आयतनसे 1200 गुना अधिक है। अन्य शब्दों नहीं में, "पूरी तरह भरे" गिलास में हजार से ज़्यादा पिन डाले जा सकते हैं! और सचमुच में, सावधानी से डालते हुए आप गिलास में हजार पिन डुबा दे सकते हैं। देखने पर लगेगा कि गिलास में पिन ही पिन हैं, गिलास से अधिक भी लग सकते हैं, पर पानी की एक बूँद भी नहीं गिरेगी।

---

[19] वर्षा की बूँदें त्वरित गति से सिर्फ गिरने के आरम्भ में ही चलती हैं; लगभग आधे सेकेण्ड के बाद से ही उनकी गति समरूप हो जाती है। सभी बूँदें हवा की प्रतिरोधक शक्ति द्वारा सन्तुलित हो जाती हैं (हवा का प्रतिरोध बूँदों की गति के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता है)।

किरासिन की दिलचस्प खूबी

जो किरासिन की लालटेन व्यवहार में लाते हैं, उन्हें उसकी एक अवांछित विशेषता का पता होगा। आप लालटेन की टंकी में तेल भर देते हैं और बाहर से पोंछ-पाँछ कर बिल्कुल सुखा देते है। एक घण्टे बाद देखते हैं कि ऊपर से वह पुनः गीला है।

इसका अर्थ है कि आपने ठेपी अच्छी तरह घुमा कर बन्द नहीं की होगी। किरासिन भीतरी दीवारों पर फैलता हुआ बाहर निकल आता है और बाहरी दीवारों पर फैल जाता है। यदि आपको इस तरह के "मजाक" पसन्द नहीं हैं, तो ठेपी कस के घुमाकर बन्द कीजिए।[20]

किरासिन का इस तरह रिसना उन जहाजों पर अखरता है, जिनकी मशीन किरासनि (या पेट्रोल) से चलती है। यदि रिसना रोकने के लिए विशेष व्यवस्था न हो, तो ऐसे जहाजों में किरासिन या पेट्रोल के सिवा और कोई सामान नहीं ढोया जा सकता, क्योंकि ये द्रव सिर्फ पीपों और कनस्तरों के बाह्य सतह तक ही पसरना सीमित नहीं रखते। ये हर जगह प्रविष्ट हो जाते हैं और जो भी चीज इन के सम्पर्क में आती है, उसी पर हावी हो जाते है; यात्रियों के कपड़े तक इनसे अछूते नहीं बचते। और जाहिर है कि इन सब चीज़ों को ये अपना गन्ध भी प्रदान करते जाते हैं, जिसे नष्ट करना एक असम्भव सा कम है। इस के साथ संघर्ष अक्सर बेकार सिद्ध होता है।

अंग्रेज व्यंग्यकार जेरोम ने "एक नाव में तीन" नामक पुस्तक में किरासिन पर कोई अतिशयोक्ति नहीं की है :

मैं नहीं जानता कि किरासिन से अधिक कोई चीज फैलने में माहिर है। हमने उसे नाव की एक के पास रखा और वह दुम तक पहुँच गया। उसके रास्ते में जो भी चीज आई, उसने अपनी गन्ध में लपेट लिया। जोड़ों से रिसता हुआ वह पानी में पहुँच गया; वह हवा से लेकर आकाश तक को दूषित कर रहा था; सर्वत्र जीवन को विषाक्त कर रहा था। किरासिनी हवा बह रही थी, कभी पश्चिम से, तो कभी पूरब से; कभी-कभी उत्तरी किरासिनी हवा भी बहती थी, या शायद दक्षिणी, पर चाहे हिमाच्छादित आर्कटिक से चली हो या मरूभूमि की रेत में पैदा हुई हो, किरासिन की सुगन्ध से ओत-प्रोत वह हमेशा हम तक पहुँच जाती थी। शामों को यह खुशबू सूर्यास्त के सौन्दर्य को नाश करने में लग जाती थी, और चन्द्र-किरणें सिर्फ किरासिन बरसाया करती थीं... पुल के पास नाव बाँध कर शहर का चक्कर लगाने चले, पर इस भयानक गन्ध ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। लगता था जैसे सारा शहर इसमें डूबा हो।" (दरअसल यात्रियों के कपड़े इस गन्ध में डूबे हुए थे।)

टंकियों के बाह्य तल को भिगोने के गुण ने लोगों में गलतफहमी ला दी थी कि किरासिन धातु और शीशे के आर-पार जा सकता है।

पानी में नहीं डूबने वाला सिक्का

सिर्फ किस्सों में नहीं होता। ऐसा सिक्का सचमुच में है। कुछ सरल प्रयोगों से ही आपको यह विश्वास हो जाएगा। कुछ छोटी वस्तुओं से शुरू करते हैं। शायद आपको लगे कि इस्पात की सुई को पानी के तल पर तैराया नहीं जा सकता, पर यह बहुत आसान है। पानीके तल पर टीशू-पेपर (महीन सिगरेटी कागज) का टुकड़ा रख दें और इस पर - बिल्कुल सूखी सुई। अब सावधानीपूर्वक सुई के नीचे से सिर्फ कागज हटाना रह जाता है। यह इसप्रकार करते हैं : एक दूसरी सुई या आलपीनसे लैस होकर कागज के टुकड़े को एक किनारी से पानी में डुबाना शुरूय करते हैं। जब टुकड़ा पूरी तरह भीग जाएगा, वह पानी के अन्दर चला जाएगा और सुई तैरती रहेगी (चित्र 61)। चुम्बक निकट ला कर आप सुई को मनचाही दिशा में घुमा-फिरा सकते हैं।

विशेष अभ्यास के बाद कागज की भी जरूरत नहीं पड़तीः सुई को बीच से पकड़कर क्षैतिजावस्था में पानी के तल पर गिरा दे सकते हैं; वह तैरती रहेगी।

सुई की बजाए आप पिन को तैरा सकते हैं (ये चीजें 2 मिमी से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिए); या फिर हल्के-फुल्के बटन, छोटी चौरस धातुई वस्तुओं आदि के साथ भी यह प्रयोग कर सकते हैं। इन चीज़ों के साथ अच्छा अभ्यास हो जाने पर छोटे सिक्के को तैराने की कोशिश कीजिए।

---

[20] पर ठेपी कस कर बन्द करते वक्त यह न भूलें कि टंकी लबालब नहीं भरी होनी चाहिए। गर्म करने पर किरासिन का आयतन काफी बढ़ता है (100^0 C तापक्रम बढ़ाने पर आयतन का लगभग दसवां भाग)। किरासन के आयतन प्रसार के लिए जगह छोड़नी चाहिए, ताकि टंकी फटे नहीं।

इन धातुई वस्तुओं के नहीं डूबने का कारण यह है कि पानीहमारे हाथ में आई धातु की वस्तुओं को भिगोने में असमर्थ होता है, क्योंकि हमारे हाथों में लगे तैलीय पदार्थ उनपर महीन झिल्ली के रूप में छा जाते हैं। सुई को पानी भिगो नहीं सकता, इसलिए सुई के गिर्द पानी के तल पर गड्ढा सा बना दिखता है (दूसरे शब्दों में, पानी तैलीय सुई से चिपक नहीं सकता, उससे थोड़ा अलग ही रहता है)। द्रव में सतह की झिल्ली सीधी होने की प्रवृत्ति रखती है और इसलिए सुई पर नीचे से दबाव डालती है। सुई इसी दबाव के कारण तल पर टिकी रहती है। प्लवन नियम के अनुसार द्रव में ऊपर धकेलने वाला बल भी सुई को तल पर टिके रहने में मदद करता हैं; सुई द्वारा विस्थापित जल के भार के बराबर का बल सुई को ऊपर की ओर धकेलता है।

सुई को पानी पर तैराना और आसान होगा, यदि आप उस पर तेल मल लें। इस स्थिति में आप सुई को सीधे पानी के तल पर रख दे सकते हैं; वह डूबेगी नहीं।

चलनी में पानी

चलनी में पानी भर लाना भी सिर्फ किस्सों की बात नहीं है। प्राचीनकाल से ही असम्भव माने जाने वाले इस कार्य को भौतिकी के ज्ञानसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए महीन तार की बनी करीब 15 से.मी. चौड़ी चलनी लें। इसके छेद बहुत बड़े नहीं होने चाहिए - करीब 1 मिमी. के हों, तो काम चल जाएगा। इसे गर्म पिघले पैराफीन में डुबाकर निकाल लें : तारों को पैराफीन की पतली परत ढक लेगी, पर दिखेगी नहीं (मुश्किल से दिखेगी!)। चलनी चलनी ही रहेगी, अर्थात उसके छेद बन्द नहीं हो जाएंगे - यह आप सुई की मदद से जाँच करके देख सकते हैं। अब आप इस चलनी में पानी भर सकते हैं। ऐसी चलनी में पानी की पर्याप्त मोटी परत को रोक रखने की क्षमता होती है। पानी छेदों से नहीं गिरेगा, यदि आप सावधानीसे पानी ढालेंगे और चलनी में ठोकर नहीं लगने देंगे।

पानी क्यों नहीं गिर जाता? क्योंकि पानी पैराफीन से चिपकता नहीं (उसे भिगोता नहीं) और इसलिए चलनी के छेदों के पास महीन झिल्लियाँ बनाता है, जिनकी निचली सतहें नीचे की ओर उत्तल होती हैं। ये ही पानी को गिरने से रोकती हैं (चित्र 62)।

पैराफिन में डुबाई गई ऐसी चलनी पानी पर रख सकते हैं उसमें पानी नहीं भरेगा। अतः ऐसी चलनी में सिर्फ पानी ही नहीं लिया जा सकता, उसमें बैठकर उसे नाव की तरह चलाया भी जा सकता है।

उपरोक्त विरोधाभासी प्रयोग अनेक साधारण परिघटनाओं को समझाता है, जिनके हम इतने आदी हो गए हैं कि उनके कारणों के बारे में सोचते भी नहीं। नावों और पीपों पर कोलतार पोतना, ठेपी और कागों पर तैलीय पदार्थ लगा देना, तैलरंगों से रंगना, जल-सह बनाने के लिए वस्तुओं की सतह को तैलीय कर देना, कपड़े पर रबड़ की महीन परत जमाना - यह सब और कुछ नहीं, बल्कि उपरोक्त प्रकार की चलनी तैयार करना ही है। सार हर जगह एक ही है, सिर्फ चलनी के उदाहरण में बात असाधारण सी लगने लगती है।

चित्र 61. पानी पर तैरती सुई। ऊपर सुई का अनुप्रस्थकाट (2 मिमी चौड़ा) और सुई के कारण पानी में बने गड्ढे का सही-सही रूप (चित्र दुगुने आकार का है)। बाएं-सुई को पानी की सतह पर तैराने की विधि।

चित्र 62. पैराफीन में भीगी चलनी से पानी क्यों नहीं चूता।

फेन से तकनीकी सेवा

इस्पात की सुई और ताम्बे के सिक्के को तैराने के प्रयोग से मिलती-जुलती एक और घटना है, जिसे खनिज उद्योगों में अयस्कों के सान्द्रण के लिए उपयोग करते हैं। सान्द्रण का अर्थ है अयस्कों में निहित कीमती अवयवों की मात्रा अधिक करना। अयस्क-सान्द्रण की कई तकनीकी विधियाँ हैं, पर जिसके बारे में हम बताने जा रहे हैं, वह सबसे कारगर विधि है; इसका उपयोग उस समय भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है, जब अन्य विधियाँ लक्ष्य-सिद्धी के लिए पर्याप्त नहीं होतीं। इसे "उत्प्लवन विधि" कहते हैं।

उत्प्लवन (अर्थात तैर कर ऊपर आ जाना) विधि का सार निम्न है। बारीक पिसे अयस्क को पानी और तैलीय पदार्थों से भरे कड़ाहों में डाला जाता है। तैलीय पदार्थ ऐसे होते हैं, जो मूल्यवान खनिजों के कणों पर महीन झिल्ली के रूप में छाकर उन्हें पानी से अलग घेर देते हैं। मिश्रण को हवा के साथ तेजी से मिलाया जाता है, जो छोटे-छोटे

बुलबुलों के रूप में फेन बना लेती है। तेल से चिपटे खनिज-कण इन बुलबुलों से चिपक जाते हैं और बुलबुलों के साथ ऊपर उठ जाते हैं (चित्र 63)। बुलबुले यहाँ गुब्बारे की तरह काम करते हैं। अन्य बेकार पदार्थों के कण जिन पर तेल की झिल्ली नहीं है, बुलबुलों के साथ नहीं चिपकते; नीचे द्रव में ही रह जाते हैं। यहाँ यह ध्यान देने योगय है कि बुलबुलों का आयतन काफी बड़ा होता है और इसलिए वे खनिज-कणों को अपने साथ ऊपर उठाने में समर्थ होते हैं। प्रक्रिया के अन्त में लगभग सारे खनिज-कण फेन के साथ द्रव के ऊपर उठ आते हैं। फेन अलग करके उससे सान्द्रण प्राप्त किया जाता है, जिसमें आरम्भिक अयस्क से दस गुना अधिक बहुमूल्य खनिज होता है।

उत्प्लवन विधि इतनी सविवरण ज्ञात हो चुकी है कि अयस्क में कितना भी बेकार पदार्थ क्यों न हो, उससे कोई भी खनिज अलग कर लिया जा सकता है। इसके लिए सिर्फ आवश्यक द्रवों का चयन करना चाहिए।

चित्र 63. उत्प्लवन का कारण।

उत्प्लवन विधि को सिद्धान्त ने नहीं जन्म दिया है, एक आकस्मिक तथ्य के ध्यानपूर्वक अवलोकन ने दिया है। पिछली शती के अन्त में एक अमरीकी शिक्षिका (कैरी एवर्सन) तेल से गन्दी बोरियों को धो रही थी, जिसमें पहले ताम्र पायराइट था। उसने ध्यान दिया कि पायराइट के कण साबुन के फेन के साथ ऊपर उठ आते है। इसी प्रेक्षण के आधार पर उत्प्लवन विधि का विकास हुआ।

मिथ्या "शाश्वत चलित्र"

किताबों में एक सच्चे "शाश्वत चलित्र" के रूप में अक्सर निम्न उपकरण का वर्णन दिया जाता है (चित्र 60) : एक बर्तन से बाती के सहारे तेल (या पानी) ऊपरी बर्तन में पहुँचाया जाता है। फिर दूसरी बातियों की मदद से तेल सबसे ऊपरी बर्तन में आ कर जमा होता है। इस बर्तन में एक छेद होता है, जिससे तेल बहता हुआ चक्की की पंखुड़ियों पर गिरता है और चक्की को घुमाने लगता है। यहाँ से बहकर गिरे तेल को पुनः बातियों द्वारा क्रमशः ऊपरी बर्तनों में पहुँचाया जाता है। इस प्रकार, तेल का छेद से होकर पंखुडियों पर गिरना कभी बन्द नहीं होता और इसलिए चक्की को अनन्त काल तक गतिमान रहना चाहिए...

यदि इस घिरनी का वर्णन करने वाले लेखक कभी खुद इसे बनाने का श्रम करते, तो वे मान लेते कि चक्की तो क्या घूमेगी, ऊपरी बर्तन में तेल की एक बून्द भी नहीं जमा होगी।

वैसे, घिरनी बनाना शुरू किए बगैर भी यह सिद्ध किया जा सकता है। आविष्कारक आखिर यह क्यों सोचता है कि तेल बाती के सहारे ऊपर चढ़कर उसके ऊपरी मुड़े सिरे से चूना शुरू कर देगा? केशीय (कैपिलरी) आकर्षण द्रव को गुरुत्व बल के विरुद्ध ऊपर चढ़ाता है; फिर यही कारण भीगी बाती के पोरों में द्रव को कैदी बनाए रखेगा, वहाँ से चूने नहीं देगा। यदि यह मान ही लें कि हमारी मिथ्या घिरनी के ऊपरी बर्तन में द्रव केशीय बल द्वारा लाया जाता है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि वे ही बातियाँ तेल को वापस नीचे ले जाएंगी।

यह मिथ्या शाश्वत चलित्र एक दूसरे जल-यंत्र की याद दिलाता है जिसे सन् 1575 में एक इटालियन मैकेनिक स्त्राद ज्येष्ठ ने "शाश्वत" गति की मशीन के रूप में प्रस्तुत किया था। यह दिलचस्प उपकरण चित्र 65 में दिखाया गया है। आर्कमेडिज स्क्रू से घूमता हुआ पानी ऊपरी हौज में भरता है और फिर टोंटी से धार के रूप में चक्के की पंखुडियों पर गिरता है। यह चक्का कई दंति-चक्रों की मदद से छूरी पिंजाने वाले चक्के और आर्कमेडिज स्क्रू को घुमाता है, जो पानी ऊपर के हौज तक ले जाता है। स्क्रू चक्के को घुमाता है और चक्का स्क्रू को!... यदि ऐसे उपकरण सम्भव होते, तो उनमें से सबसे आसान होता :घिर्री पर रस्सी चढ़ाकर उसके छोरों से बोझ लटका देना। जब एक बोझ गिरता, तो वह दूसरे को ऊपर उठाता और जब दूसरा गिरता, तो वह पहले वाले को ऊपर उठाता। अच्छा-खास "शाश्वत" चलित्र होता यह!

साबुन के बुलबुले

आपको साबुन के बुलबुले उड़ाना आता है? यह इतना आसान नहीं है, जितना कि लगता है। मुझे भी लगता था कि इसके लिए किसी खास निपुणता की आवश्यकता नहीं है, पर बाद में मानना पड़ा कि सुन्दर और बड़े बुलबुले छोड़ना भी अपने ढंग की एक कला है और इसमें माहिर होने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। लेकिन साबुन के बुलबुले बनाने जैसे निरर्थक कार्या से भी कोई फायदा है?

लोगों के बीच इस कार्य को कोई खास प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त है; इस काम में रत लोगों को कोई अच्छी उपमा नहीं दी जाती। पर भौतिकविद् इसके बारे में कुछ और ही कहते हैं। "साबुनका बुलबुला बनाइए, - महान, अंग्रेज भौतिकविद् केल्विन ने लिखा है, - और उस पर गौरसे देखिए; आप सारी जिन्दगी उसके अध्ययन में बिता सकते हैं। आपको इससे निरन्तर भौतिकी का ज्ञान मिलता रहेगा।"

साबुन की महीनतम झिल्लियों की सतह पर रंगों की मोहक, क्रीड़ा सचमुच में ज्ञानवर्धन का साधन है। उसकी सहायता से भौतिकविद प्रकाश तरंगों की दीर्घता नाप सकता है। इन सुकुमार झिल्लियों की तनाव के अध्ययन से कणिकाओं के पारस्परिक बलों की क्रियाशीलता के नियम ज्ञात हो सकते हैं। ये वही संसंजक बल हैं, जिनके लुप्त होने पर दुनिया में महीन धूल के सिवा और कुछ भी नहीं बचता।

जो चन्द प्रयोग नीचे दिए जा रहे हैं, उनका लक्ष्य ऐसी गम्भीर समस्याओं को हल करना नहीं है। ये सिर्फ मनोरंजन के लिए दिए जा रहे है; इनसे साबुनी बुलबुले बनाने की कला का ज्ञान भर हो सकता है। अंग्रेज भौतिकविद चार्ल्स ब्यायज की पुस्तक "साबुन के बुलबुले" में तरह-तरह के अनेक प्रयोग दिए गए हैं। जिन्हें साबुन के बुलबुलों में रुचि हो, इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। यहाँ हम सिर्फ चन्द सरल प्रयोगों का वर्णन कर रहे हैं।

चित्र 65. छूरी पिंजाने की मशीन के लिए जल "शाश्वत"
चलित्र की पुरानी योजना।

ये प्रयोग कपड़े साफ करने वाले साधारण साबुन के घोल के साथ किए जा सकते हैं[21], पर जिन्हें इच्छा हो, जैतून या बादाम के तेल से बने साबुन का व्यवहार कर सकते हैं। इनसे बुलबुले बड़े और सुन्दर बनते हैं। साफ ठण्डे पानी में ऐसे साबुन के टुकड़े को सावधानीपूर्वक घोल लेते हैं। घोल पर्याप्त गाढ़ा होना चाहिए। साबुन वर्षा या पिघले बर्फ से प्राप्त साफ पानी में घोलना चाहिए। यदि ऐसा पानी न हो, तो खोल कर ठण्डा किए गए पानी से भी काम चल जाएगा। बुलबुले देर तक टिकें,इसके लिए प्लेटो सलाह देते हैं कि घोल में आयतानुसार करीब एक तिहाई ग्लिसरीन मिलना चाहिए। घोल की सतह पर बने फेन और बुलबुलों को चम्मच द्वारा हटा लेते हैं। मिट्टी की महीन नलिका के एक छोर को भीतर और बाहर साबुन से मलकर घोल में डुबाते हैं। यदि नलिका नहीं हो, तो करीब दस सेन्टीमीटर लम्बा पुआल का टुकड़ा लें और इसके एक सिरे को क्रौस की तरह थोड़ा फाड़ लें। इससे भी काम चल जाएगा।

बुलबुला बनाने की विधि इस प्रकार है : नलिका को घोल नहीं में डुबा का निकालते हैं और उसे सीधा खड़ा पकड़े रहते हैं, ताकि उसके सिरे पर घोल की एक महीन झिल्ली बन जाए। अब नलिका में सावधानीपूर्वक फूँकते हैं। बुलबुला हमारे फेफड़ों से निकलने वाली गर्म हवा से भरा होता है, जो कमरे की हवा से हल्की होती है। इसलिए बुलबुला तुरन्त ऊपर की ओर उड़ता है।

यदि पहली बार में ही करीब दस सेन्टीमीटर व्यास वाला बुलबुला छोड़ने में सफलता मिल जाती है, तो घोल ठीक बना है। यदि ऐसा नहीं है, तो घोल में और साबुन मिलाएं, जब तक कि उपरोक्त आकार के बुलबुले नहीं प्रापत होने लगें। लेकिन यह परीक्षण पर्याप्त नहीं हैं। ऊंगली की घोल में गीली कर उसे बुलबुले में भोंकने की कोशिश करते हैं। यदि बुलबुला फट जाता है तो घोल में और साबुन मिलाना चाहिए और यदि बुलबुला नहीं फटता है, तो आप प्रयोग शुरू कर सकते हैं।

प्रयोग सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे और शान्त चित्त से करना चाहिए। प्रकाश काफी तेज होना चाहिए, अन्यथा बुलबुले अपनी इन्द्रधनुषी आभा नहीं दिखाएंगे।

बुलबुलों के साथ चद मनोरंजक प्रयोग निम्न हैं।

बुलबुले के भीतर फूल। थाल या ट्रे में साबुन का इतना घोल ढालते हैं कि थाल की पेन्दी पर करीब 2-3 मिमी. मोटी परत बन जाए। बीच में एक फूल या नन्हीं सुराही रखते हैं और उसे काँच की कीप से ढक देते हैं। इसके बाद कीप को धीरे-धीरे उठाते हुए, उसकी संकरी नली में फूँकते हैं। इससे साबूनी बुलबुला बनता है। जब बुलबुला पर्याप्त बड़ा हो जाए, कीप को चित्र 66 की भाँति तिरछा करते हुए बुलबुले से अलग कर लें। फूल एक महीन अर्द्धगोलाकार पारदर्शक गुम्बज से ढक जाएगा, जिस पर आप को सारे इन्द्रधनुषी रंगों की आभाएं दिखेंगी।

[21] टवायलेट सोप इन प्रयोगों के लिए खास उपयुक्त नहीं हैं।

फूल की बजाए आप छोटी प्रतिमा भी ले सकते हैं। प्रतिमा के सिर पर एक छोटा बुलबुला भी रख सकते हैं (चित्र 66)। इसके लिए प्रतिमा के सिर पर घोल की कुछ बूँदे रख देते हैं। जब प्रतिमा के गिर्द गुम्बजनूमा बुलबुला बन जाए, तो इस बुलबुले में नलिका भोंककर प्रतिमा के सिर पर पड़ी घोल की बूँद से एक छोटा बुलबुला बना देते हैं।

बुलबुले में बुलबुले (चित्र 66)। उपरोक्त विधि द्वारा ही कीप से एक बड़ा बुलबुला बना लेते हैं। फिर पुआल को ऊपरी सिरे तक (मुँह में लेकर फूँके जाने वाले हिस्से को छोड़कर) घोल से गीला कर देते हैं। फिर उसे सावधानीपूर्वक बुलबुले की दीवार में भोंककर केन्द्र तक ले जाते हैं। उस में फूँक देते हुए उसे वापस खींचते हैं, पर इतना नहीं कि बड़े बुलबुले की दीवार से सटे। इसप्रकार बड़े बुलबुले में उससे कुछ छोटा बुलबुला प्राप्त होगा। इसके भीतर आप तीसरा और तीसरे के भीतर चौथा यदि बुलबुले बना सकते हैं।

साबुनी झिल्ली का बेलन (चित्र 67) तार के दो छल्लों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। निचले छल्ले पर साधारण गोल बुलबुला बनाकर रखते हैं और इसपर दूसरा गीता किया हुआ छल्ला रखकर ऊपर उठाते हैं। इससे बुलबुला खिंचने लगता है और बेलन के आकर का हो जाता है। मजे की बात यह है कि यदि आप छल्ले को बुलबुले की परिधि से अधिक ऊँचा उठाएंगे, तो बेलन का आधा भाग संकीर्ण होने लगेगा और दूसरा अर्द्ध मोटा होने लगेगा। और अधिक खींचने पर बुलबुला टूटकर दो बुलबुलों में विभक्त हो जाएगा।

चित्र 66. साबुन के बुलबुलों के साथ प्रयोग : फूल पर
बुलबुला; गमले के चारों ओर बुलबुला; बुलबुलों में बुलबुले;
बुलबुले के भीतर बुलबुला धारण किए प्रतिमा।

साबुनी झिल्ली हर समय तनाव की स्थिति में होती है और बुलबुले में कैंद हवा को दबाती रहती है। कीप की नली मोमबत्ती की लौ के निकट लाएं; आपको मानना पड़ेगा कि इतनी महीन झिल्लियों में भी कोई कम शक्ति नहीं है; लौ एक ओर को झुक जाती है (चित्र 68)।

चित्र 67. बेलनाकार बुलबुला बनाना।

चित्र 68. बुलबुले की दीवार हवा को धकेलती है।

गर्म स्थान से ठण्डे स्थान में लाए गए बुलबुले का प्रेक्षण भी दिलचस्प हैः उसका आयतन कम होने लगता है। इसके विपरीत ठण्डी से गर्म जगह में लाने पर बुलबुले का आयतन बढ़ने लगता है। इसका कारण निश्चय ही बुलबुले में कैद हवा को संकोचन या प्रसार है। यदि -15^0C पर बुलबुले का आयतन 1000 सेमी.^{3} है और उसे अ 15^0C तापक्रम पर स्थित कमरे में लाया जाता है, तो उसके आयतन में वृद्धि होती है :

$1000 \times 30 \times \frac{1}{273}$ करीब 110 घन सेन्टीमीटर।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि बुलबुलों की क्षण-भंगुरता जैसे विचार पूरी तरह सही नहीं हैंः ढंग से बर्ताव किया जाए, तो वह दसियों दिन सुरक्षित रहता है। अंग्रेज भौतिकविद् डेवर ने (जो वायु के द्रवीकरण पर शोधकार्यों के लिए प्रसिद्ध है) बुलबुलों को महीनों तक सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने उसके लिए विशेष बोतलों का उपयोग किया, जो बुलबुलों को सुखने से तथा धूल व हिचकोलों से बचाती थीं। अमेरिकावासी लौरेंस को काँच के ढक्कनों में वर्षों तक बुलबुलों को सुरक्षित रखने में सफलता मिली।

सबसे बारीक क्या है?

शायद बहुत ही कम लोगों को पता होगा कि साबुनी बुलबुले की झिल्ली का नाम खाली आँखों से दिखने वाली सूक्ष्मतम वस्तुओं में आता है। साबुनी झिल्ली की तुलना में वे वस्तुएं भी काफी मोटी हैं, जिन्हें हम बारीकी की उपमा के रूप में व्यवहार करते हैं। "कागज सा पतला" या "बाल सा महीन" आदि उपमाएं साबुनी बुलबुले की दीवार के सामने निरर्थक हैं, क्योंकि वह बाल या सिगरेटी कागज से 5000 गुना अधिक बारीक होती है। आदमी के सर का बाल 200 गुना बड़ा करने पर करीब एक सेन्टीमीटर मोटा लगेगा। साबुन की झिल्ली का परिच्छेद (काट) इतना बढ़ाने पर दिखेगा भी नहीं। यदि उसे 200 गुना और बढ़ाया जाए, तो वह एक बारीक रेखा के रूप में दिखेगा। बाल

को इतना (अर्थात 40000 गुना!) बढ़ाने पर वह 2 मी. से अधिक मोटा लगगा। चित्र 69 इन अनुपातों को दृश्य-सुगम बनाता है।

चित्र 69. ऊपर- सुई का छेद, आदमी का बाल, कीटाणु और मकड़-जाले का धागा (200 गुना बड़े आकार में)। नीचे - 40000 गुने बड़े आकार में कीटाणु व साबुन के बुलबुले की दीवार $1\mu = 0.0001 cm.$

पानी में भी सूखा

बड़ी चौरस थाल में एक सिक्का रखकर थोड़ा पानी ढालें, ताकि सिक्का डूबा रहे। मेहमानों से बिना ऊँगली गीला किए सिक्का उठाने की कहें।

यह काम असम्भव सा लगता है, पर एक गिलास और जलते कागज की सहायता से सरलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है। कागज में आग लगा दीजिए, जलता हुआ कागज गिलास में रखिए और गिलास फुर्ती से थाल में सिक्के के निकट उलटकर रख दीजिए। कागज बुझ जाएगा, गिलास में सफेद धुँआ भर जाएगा और इसके बाद थाल का पानी खुद-ब-खुद गिलास के नीचे जमा हो जाएगा। सिक्का अपनी जगह पर ही रहेगा। एकाध मिनट बाद जब वह सूख जाए, आप बिना ऊँगली गीला किए उसे उठा ले सकते हैं।

कौन-सा बल पानी को गिलास के नीचे समेट ले जाता है और एक नियत ऊँचाई पर उसका स्तर बनाए रखता है? वातावरण का दबाव। जलता हुआ कागज गिलास के भीतर की हवा को गर्म कर देता है, भीतर दबाव बढ़ जाता है, हवा का कुछ भाग बाहर निकल आता है। जब कागज का जलना बुझ जाता है, हवा पुनः ठण्डी हो जाती है और भीतर दबाव काफी कम हो जाता है, तब बाहरी हवा के दबाव से पानी सिमट कर गिलास में चला जाता है। कागज की जगह काम में चुभी माचिस की तीलियों से भी काम चलाया जा सकता है (चित्र 70)।

चित्र 70. तश्तरी का सारा पानी औंधे गिलास के नीचे जमा कैसे किया जा सकता है।

अक्सर इस पुराने प्रयोग की एक गलत व्याख्या सुनने व पढ़ने को मिलती है।[22] कहते हैं कि इसमें "आक्सीजन जल जाता है" और इसलिए औंधे गिलास के नीचे गैस की मात्रा कम हो जाती है। ऐसी व्याख्या बहुत ही गलत है। मुख्य कारण सिर्फ हवा के गर्म होने में है; जलते कागज द्वारा आक्सीजन "सोखने" में बिल्कुल नहीं। यह निष्कर्ष सबसे पहले इस बात से निकलता है कि यहाँ जलते हुए कागज के बिना भी काम चल सकता है; गिलास को खौलते पानी से खंगाल कर गर्म कर देना ही काफी रहेगा। दूसरे, यदि कागज की जगह स्पिरिट में डुबाई हुई रूई ली जाए, जो ती से और देर तक जलती रहती है, तो गिलास में करीब आधी ऊँचाई तक पानी चढ़ आएगा, जबकि ज्ञात है कि हवा के आयतन में आक्सीजन का सिर्फ $\frac{1}{5}$ भाग होता है। और अंत में, यह भी ध्यान देने योग्य है कि जले हुए आक्सीजन से जल-वाष्प और कार्बन डाईक्साइड गैस बनती है। कार्बन डाइक्साइड तो पानी में घुल जाती है, पर वाष्परह जाता है और अंशतः आक्सीजन का स्थान ले लेता है।

हम कैस पीते हैं?

क्या ऐसे प्रश्नों पर भी सोचना पड़ेगा? और नहीं तो क्या! हम गिलास या चम्मच में द्रव अपने मुँह के पास पास लाते हैं और अपने भीतर "खींच" लेते हैं। द्रव को इस तरह खींचना बहुत ही साधारण बात है; हम इसके आदी हो गए हैं। पर इसी "खींचने" की प्रक्रिया को तो समझाना है। आखिर क्यों द्रव मुँह में खिंचता चला आता है? कौन सी चीज उसे खींचती हैं? कारण ऐसा है : पीते वक्त हम वक्ष फुलाते हैं और इससे मुँह में हवा विरल (कम) हो जाती है; बाह्य वातावरण के दबाव से द्रव उस स्थान की ओर सिमटता है, जहाँ दबाव कम है और इसप्रकार द्रव हमारे मुँह में खिंचकर आ जाता है। यहाँ वही होता है, जो द्रवयुक्त संचारी बर्तनों में से एक में हवा विरल कर देने से होगाः वातावरा के दबाव के कारण इस बर्तन में द्रव का स्तर ऊँचा हो जाएगा। इसके विपरीत, यदि हम बोतल के मुँह को होठों से पकड़ कर भीतर के पानी को चूसकर खींचने का लाख प्रयत्न करें, कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि बोतल और आपके मुँह में दबाव समान है।

[22] पहली बार इसका वर्णन ईसा पूर्व पहली शती में प्राचीन बाइजेंटीनी भौतिकविद् फिलो ने किया था और उन्होंने इसकी बहुत ही सही व्याख्या दी थी।

अतएव यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हम सिर्फ मुँह से नहीं, फेफड़ों से भी पीते हैं; फेफड़ों का फैलना ही वह कारण है, जिससे पानी मुँह की ओर खिंचने लगता है।

जिन्हें कीप की सहायता से बोतल में द्रव ढालने का मौका मिला है, वे जानते होंगे कि समय-समय पर कीप को थोड़ा ऊपर उठाना चाहिए, अन्यथा कीप में से द्रव नहीं ढलेगा। बोतल में स्थित हवा को बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता, अतः वह अपने दबाव से द्रव को कीप में रोक रखती है। सिर्फ शुरू-शुरू थोड़ा द्रव बोतल में ढलता है और इससे भीतर की हवा कुछ दब जाती है। कम आयतन में सिमटी हवा की प्रत्यास्थता (गद्दापन) इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने आन्तरिक दबाव से कीप में द्रव को सन्तुलित कर दे। जाहिर है कि कीप को उठाकर हम दबी हवा को बाहर निकलने का रास्ता देते हैं और तब द्रव पुनः बोतल में गिरने लगता है।

इसलिए ऐसी कीप अधिक उपयोगी होगी, जिसके संकरे भाग की बाहरी दीवार पर अनुतीर नाले बने हों। इससे कीप बोतल का मुँह अच्छी तरह नहीं बन्द कर सकेगी और हवा बिना रोक-टोक के बोतल से बाहर निकल सकेगी।

एक टन लकड़ी और एक टन लोहा

इस मजाकिया प्रश्न से सभी परिचित होंगे : क्या अधिक भारी है - एक टन लकड़ी या एक टन लोहा? अक्सर लोग बिना सोचे-समझे उत्तर देते हैं कि एक टन लोहा अधिक भारी होगा। सुनने वाले प्यार से हँसते हैं।

शरारतियों को और जोर की हँसी आएगी, यदि उन्हें कहा जाए कि एक टन लकड़ी एक टन लोहे से अधिक भारी होगी। यह जवाब और भी बेढब है, पर यदि सच पूछें, तो यह अधिक सही है।

आर्कमेडिज का नियम सिर्फ द्रवों पर ही नहीं, गैसों पर भी लागू होता है। हवा में हर वस्तु उतना भार "खोती" है, जितना उसके द्वारा विस्थापित हवा का भार होता है।

लकड़ी और लोहा भी हवा में अपने भार का कुछ अंश खोते हैं; उनके भार में कमी आ जाती है। उनका वास्तविक भार ज्ञात करने के लिए इस कमी की पूर्ति करनी होगी। अतः हमारे प्रश्न में लकड़ी का यथार्थ भार बराबर होगा कि एक टन अ लकड़ी के आयतन के तुल्य हवा का भार; लोहे का : एक टन अ लोहे के आयतन के तुल्य हवा का भार।

पर एक टन लकड़ी कहीं अधिक व्योम छेंकती है, बनिस्बत कि एक टन लोहे के (करीब 15 गुना अधिक)। इसलिए एक टन लकड़ी का यथार्थ भार एक टन लोहे के यथार्थ भार से अधिक होगा। यदि और सही अभिव्यक्ति ढूँढी जाए, तो हमें कहना चाहिएः हवा में एक टन भार वाली लकड़ी का यथार्थ भार हवा में एक टन भार वाले एक टन भार वाली लकड़ी का यथार्थ भार हवा में एक टन भार वाले लोहे के यथार्थ भार से अधिक होता है।

चूंकि एक टन लोहे का आयतन $\frac{1}{8}m^3$ होता है और लकड़ी का करीब $2m^3$, तो उनके द्वारा विस्थापित हवा के भारों में अन्तर करीब 2.5 किलो होगा। एक टन लकड़ी वास्तविकता में एक टन लोहे से इतनी ही अधिक भारी होती है।

भारहीन आदमी

बहुतों को बचपन से ऐसी कल्पना लुभावनी लगती होगी कि वेरूई के फाहे क्या, हवा से भी हल्के हो गए हैं[23] और गुरुत्व की भारी जंजीरों को तोड़कर आकाश में जहाँ चाहें, उन्मुक्त उड़ सकते हैं। पर वे अक्सर एक बात भूल जाते हैंः लोग पृथ्वी पर स्वतंत्र रूप से चल सकते हैं सिर्फ इसलिए कि वे हवा से भारी हैं। दरअसल "हम वातावरण रूपी सागर के तल पर रहते हैं" - टोरीसेली ने कहा था। यदि हम अचानक हवा से भी हल्के हो जाएं, तो इस हवाई सागर की सतह पर उपलाने लगेंगे। हमारे साथ वही होता, जो पुश्किन रचित कविता के घुड़सवार सैनिक के साथ हुआ थाः "पूरी बोतल पी गया; और विश्वास नहीं होगा तुम्हें, अचानक रूई के फाहे की तरह ऊपर उड़ गया"। हम कुछेक किलोमीटर ऊपर उड़ आते, जहाँ विरल हवा का घनत्व हमारे शरीर के घनत्व के बराबर होता। पहाड़ियों

---

[23] प्रचलित विचार के विपरीत, फाहा हवा से हल्की नहीं होती बल्कि उससे सैकड़ों गुनी भारी होती है। हवा में यह इसलिए उड़ती है कि उसकी कुल सतह काफी बड़ी होती है; इतनी बड़ी कि हवा द्वारा उसकी गति में प्रतिरोध उसके भार से अधिक हो जाता है।

और घाटियों पर उन्मुक्त मण्डराने का सपना राख की तरह हवा में बिखर जाता, क्योंकि गुरुत्व के बन्धन से निकल कर हम दूसरे बल - वातावरण की संवहन धाराओं - की कैद में आ जाते।

लेखक वेल्स ने ऐसी ही असाधारण स्थिति को अपनी एक विज्ञान-गल्प का कथानक बनाया है। एक काफी मोटा व्यक्ति अपनी मुटाई कुछ कम करना चाहता था। कथाकार के पास एक आश्चर्यजनक चीज़ें देखने को मिलती हैं :

"दरवाजा देर तक कोई खोल नहीं रहा था। मैंने सुना कि किसी ने ताली घुमाई और पीक्राप्ट (यह मोटे का नाम था) के स्वर ने कहा :

अन्दर आ जाइए।

मैंने हैंडिल घुमाया और दरवाजा खोला। स्वाभाविक था कि मैं पीक्राफ्ट को देखने की उम्मीद कर रहा था।"

आप जानते हैं, - वह नहीं था। कमरा अस्त-व्यस्त था : किताबों, कलम-दावात आदि के बीच जूठी प्लेटें पड़ी थीं। कुछेक कुर्सियाँ उल्टी हुई थीं। पीक्राफ्ट नहीं था...

- भई, मैं यहाँ हूँ। दरवाजा बन्द कर लजिए, - उसने कहा। तब मुझे वह नजर आया।

- वह दरवाजे के निकट कोने में ठीक कार्निस से लटका हुआ था, मानों उसे किसी ने छत से चिपका रखा हो। उसका चेहरा गुस्से से भरा था और उस पर भय की छाप थी।

- यदि कुछ फिसला, तो पीक्राफ्ट, आप गिर जाएंगे और अपनी गर्दन तोड़ लेंगे, - मैंने कहा।

- बहुत खुशी होगी मुझे, - उसने बताया।

- आपकी उम्र में ऐसी कसतें नहीं करनी चाहिए... लेकिन, आप लटके किस चीज़ के सहारे हैं? - मैंने पूछा।

तब मुझे दिखा कि वह लटक नहीं रहा है, बल्कि ऊपर तैर रहा है, जैसे गैस से भरा बैलून हो।

उसने थोड़े हाथ-पैर मारे, ताकि छत से अलग होकर दीवार के सहारे मेरी ओर रेंग सके। उसने नक्काशी की किनारी पकड़ी, पर वह टूट गई और वह पुनः छत की ओर उड़ गया। जब वह छत से टकराया, तब मेरी समझ में आयी कि उसके शरीर के उभरे हुए भागों पर चूना क्यों लगा है। वह पुनः काफी सावधानी के साथ चिमनी के सहारे उतरने की कोशिश करने लगा।

चित्र 71. मैं यहां हूँ, दोस्त! पीक्राफ्ट ने कहा।

यह दवा, -हाँफते हुए उसने बताया, - कुछ ज्यादा ही असरदार निकली। भार का लोप लगभग पूर्ण है।

अब मैं सब समझ गया।

-पीक्राफ्ट! - मैंने कहा। - आपको मुटापा कम करने की दवा चाहिए थी और आप हमेशा कहते थे कि भार कम करनाहै... रूकिए, मैं आपकी मदद करता हूँ, - बेचारे का हाथ पकड़ कर नीचे खींचते हुए मैंने कहा।

वह किसी चीज़ पर दृढ़ता से खड़े होने की कोशिश में नाचने लगा। दृश्य मज़ेदार था! जैसे मैं तेज हवा में पाल वाली नाव रोक कर रखने की कोशिश कर रहा हूँ।

- यह टेबुल काफी मजबूत और भारी है। -बेचारे पीक्राफ्ट ने नाच से थककर कहा। - यदिप आप किसी तरह मुझे उसके नीचे घुसा सकें...

- मैंने यही किया, पर टेबुल के नीचे भी वह इस तरह हिल-डुल रहा था, जैसे हवाई बैलून बँधा हुआ हो। एक मिनट के लिए भी स्थिर नहीं था।

- सिर्फ एक बात साफ है, जो आपको किसी भी हालत में नहीं करनी चाहिए। - मैंने उससे कहा। - यदि कहीं आप घर से बाहर निकल गए, तो ऊपर की ओर उड़ते चले जाएंगे, रूकेंगे नहीं ...

- मैंने सलाह दी कि अपने को इस नई स्थिति के अनुकूल बनाने की कोशिश करनी चाहिए। मैंने इशारा किया कि छत पर हाथों के सहारे चलना सीखने में उसे कठिनाई नहीं होगी।

- मैं सो नहीं सकता, - उसने शिकायत के स्वर में कहा।

- उसके लिए कमरे में, सीढ़ी रेखा गई और खाना किताब की आलमारी पर लगाया जाने लगा। हमने एक सुन्दर हल सोच निकाला, जिसकी सहायता से पीक्राफ्ट जब चाहे फर्श पर उतर आ सकता थाः हल यही था कि "ब्रिटेन विश्वकोश" खुली आलमारी के ऊपरी खन्दे में रखा था। मोटू ने झट उसके दो खण्ड उठाऐ और हाथ में पकड़े हुए फर्श पर उतर आया।

- मैंने उसकी फ्लैट में पूरे दो दिन बिताए। हाथ में हथौड़ा और बरमा लेकर उसके लिए सभी सम्भव जुगतियाँ फिट करता रहाः तार लगाया, ताकि वह घण्टी बजा सके, आदि आदि।

- उस दिन मैं अँगीठी के पास बैठा था और वह अपने प्रिय कोने में लटका छत में तुर्की कालीन ठोक रहा था, जब मेरे दिमाग में यह विचार आया ;

- ऐ, पीक्राफ्ट! - मैंने लगभग चीखते हुए कहा। इन सब चीज़ों की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। कपड़ों के नीचे सीसे का अस्तर चाहिए, और कुछ नहीं।

- पीक्राफ्ट खुशी से रो पड़ा।

- सीसे के चदरे, - मैंने कहा, - खरीद लीजिए और कपड़ों के नीचे फिट कर लीजिए। जूतों में सीसे के तल्ले लगवा लीजिए और हाथ में सीसे का सूटकेस पकड़े रहिए, और बात खत्म। आप यहाँ कैद में नहीं रहेंगे; विदेश जा सकते हैं, यात्रा कर सकते हैं। आपके लिए जहाज डुबने से भी कोई खतरा नहीं है : अपने कपड़ों में से कुछ या सारा उतार लेंगे और हवा में उड़ने लगेंगे।

- ऊपरी तौर पर देखने से यहाँ सब कुछ भौतिकीय नियमों के अनुसार ही लगता है। पर कहानी की कुछ बातों से सहमत होना असम्भव है। सबसे गम्भीर आपत्ति यह है कि मोटूराम अपने शरीर का भार खोकर भी छत तक नहीं उड़ सकते थे।

- आर्कमेडीज के नियम के पीक्राफ्ट सिर्फ उसी हालत में छत की ओर उपलाता, जब उसके कपड़ों, जेबी सामग्रियों आदि का कुल भार उसके स्थूल काय द्वारा विस्थापित हवा के भार से कम होता। हिसाब लगाना कठिन नहीं होगा, यदि आप स्मरण करें कि आपके शरीर का भार लगभग उसी आयतन वाले पानी के भार के बराबर होता है। हमारा भार 60 किलोग्राम है, हमारे शरीर के बराबर आयतन वाले पानी का भार लगभग इतना ही होगा। साधारण घनत्व वाली हवा समान आयतन वाले पानी से 770 गुनी हल्की होती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि हमारे शरीर के आयतन के बराबर आयतन वाली हवा का भार होगा 80 ग्राम। मिस्टर पीक्राफ्ट कितने भी मोटे क्यों न रहे हों, उनका वजन 100 किलो से अधिक शायद ही रहा होगा और इसलिए 130 ग्राम से अधिक हवा विस्थापित नहीं कर सके होंगे। पीक्राफ्ट के शरीर पर कपड़े, जूते, मनी-बैग आदि जो सामान थे, क्या उनका कुल भार 130 ग्राम से भी कम था? यह असम्भव है; इतने सारे सामान का कुल भार कहीं अधिक होगा। और यदि ऐसी बात है, तो पीक्राफ्ट को फर्श पर ही रहना चाहिए था। यह सच है कि उनकी स्थिति काफी अस्थिर होती, पर "डोरी से बँधे बैलून" की तरह छत की ओर नहीं उड़ते। सिर्फ अपने शरीर से सारा कुछ उतार कर ही वे हवा में उपला सकते थे। कपड़ों में उनकी हालत वैसी ही होती, जैसी छलाँगबाजी के बैलून से बँधे आदमी की होती है; पेशियों की हल्की कोशिश से भी वे काफी ऊँची छलाँग लगाते और शान्त हवा में मन्द तैरते हुए जमीन पर उतरते[24]।

- इस पुस्तक में हम कई मिथ्या "शाश्वत चलित्रों" को देख चुके हैं और यह स्पष्ट कर लिया है कि उनका आविष्कार असम्भव है। अब हम निःशुल्क चलित्रों के बारे में बातें करते हैं। ये ऐसे चलित्र हैं, जो हमारी ओर से बिना किसी देखभाल के अनिश्चित चिर काल तक कार्यशील रह सकते हैं, क्योंकि वे अपने परिवेश के अक्षय ऊर्जा-भण्डारों से आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करते रहते हैं। पारे या धातु का बना बैरोमीटर सब ने देखा होगा। प्रथम प्रकार के बैरोमीटर में पारद-स्तम्भ का स्तर वातावरण के दाब में परिवर्तन के अनुसार ऊपर-नीचे होता रहता है। धात्विक बैरोमीटर में इन्हीं कारणों से सुई इधर-उधर घूमती रहती है।

[24] छलाँगबाजी के बॅलूनों के बारे में मेरी पुस्तक 'मनोरंजक यांत्रिकी' का अध्याय 4 देखें।

अठारहवीं शती के एक आविष्कारक ने बैरोमीटर की इन गतियों का उपयोग घड़ी जैसी मशीन में चाबी भरने के लिए किया। इसप्रकार उसने एक घड़ी बनाई, जो बिना रूके चलती रहती थी और जिसमें चाबी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। विख्यात अंग्रेज यंत्रकार व ज्योर्तिविद पेर्ग्युसन ने इस दिलचस्प आविष्कार को देख और उसके बारे में निम्न पंक्तियाँ लिखीं (1774 ई. में) :

- "मैंने ऊपर वर्णित घड़ी देखी है, जो एक अनूठे बैरोमीटर में पारे के उठने व गिरने के कारण पश्चिमी चलती रहती है। यह सोचना निराधार है कि यह घड़ी कभी रूक जाएगी, क्योंकि उसमें संचित होने वाला गतिकारी बल इतना काफी होता है कि बैरोमीटर हटा देने पर भी घड़ी साल भर तक चलती रह सकती है। इस घड़ी को विस्तारपूर्वक जान लेने के बाद मैं खुले दिल से कहता हूँ कि अब तक जितने यंत्र मैंने देखे हैं, उनमें यह सबसे अधिक प्रतिभाशाली है; इसके मूल विचार और उसके कार्यान्वयन - दोनों ही के अनुसार।"

- खेद की बात है कि यह घड़ी सुरक्षित नहीं रही; वह चोरी हो गई थी और अब कहाँ है, किसी को पता नहीं। वैसे, वक्त ज्योतिर्विद द्वारा बनाया गया उसका आरेख अभी भी है, इसलिए उसका पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

- इस घड़ी की बनावट में एक बहुत बड़ा पारद-बैरोमीटर आता है। फ्रेम द्वारा लटके काँच के घड़े और उसमें खड़े लम्बे कीप में करीब 150 किलोग्राम पारा है। दोनों ही बर्तन एक दूसरे के सापेक्ष गतिमान हो सकते हैं। उत्तोलकों की सुन्दर प्रणाली की सहायता से वात-दाब बढ़ने पर कीप नीचे उतरता है और घड़ा ऊपर उठता है, दाब घटने पर इसका उल्टा होता है। दोनों ही गतियाँ एक दंति-चक्र को हमेशा एक ही दिशा में घुमाती हैं। चक्र सिर्फ तभी स्थिर रहता है, जब वातावरण का दाब बिल्कुल स्थिर रहता है। चक्र के रूके रहने पर घड़ी मुग्दरों की पहले से संचित अभिपातन ऊर्जा से चलती है। यह कोई आसामन काम नहीं है कि मुग्दर साथ-साथ ऊपर उठें और गिरते वक्त घड़ी चलाएं। पर पुराने घड़ीसाज इस समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त प्रतिभाशाली थे। उन्होंने कुछ इस प्रकार यंत्र बनाया कि वात-दाब में उतार-चढ़ाव की ऊर्जा आवश्यकता से अधिक सिद्ध होती थी, अर्थात मुग्दर अधिक तेजी से उठते थे, पर गिरते थे धीरे-धीरे। इसके लिए ऐसी विशेष युक्ति लगानी पड़ी कि जब मुग्दर उच्चतम बिन्दु पर पहुँच जाते थे, तो कुछ समय के लिए वहीं रूके रहते थे।

- इस जैसे "निःशुल्क" चलित्रों और "शश्वत चलित्रों के बीच यह महत्वपूर्ण सैद्धांतिक अन्तर स्पष्ट है। निःशुल्क चलित्रों में ऊर्जा शून्य से नहीं मिलती, जिसका सपना शाश्वत चलित्रों के आविष्कारक देखते थे' वह यंत्र के बाहर से आती है। हमारे उदाहरण में यंत्र को ऊर्जा बाह्य वातावरण से मिलती है, जहाँ वह सौर-किरणों द्वारा संचित होती है। व्यवहारतः निःशुल्क चलित्र उतने ही लाभकर हाते, जितने कि सच्चे "शाश्वत" चलित्र, यदि उनकी बनावट उनके द्वारा प्राप्त ऊर्जा की तुलना में अत्यंत महँगी नहीं होती (जैसा कि अधिकतर होता है)।

- कुछ आगे चलकर हम अन्य प्रकार के निःशुल्क चलित्रों के साथ आपका परिचय कराएंगे और उदहारण समेत दिखाएंगे कि उद्योग में इस प्रकार के यंत्रों का प्रयोग नियमतः बिल्कुल लाभहीन क्यों होता है।

अध्याय 6

तापीय संवृत्तियाँ

अक्टूबर रेल-पथ[25] कब अधिक लम्बा है -गर्मियों में या जाड़े में?

"अक्टूबर रेल-पथ कितना लम्बा है"- प्रश्न का उत्तर किसी ने इस प्रकार दिया :

- औसतन छः सौ चालीस किलोमीटर; जाड़ों की अपेक्षा गर्मियों में करीब तीन सौ मीटर अधिक।

यह आशातीत उत्तर इतना निरर्थक नहीं है, जितना कि लगता है। यदि संतत एकाश्म रेल-पथ के बारे में पूछा जाए, तो सचमुच इसकी लम्बाई गर्मियों में अधिक होनी चाहिए, बनिस्बत कि जाड़ों में। पर यह न भूलें कि गर्म होने पर पटरियों की लम्बाई बढ़ती है - हर सेन्टीग्रेड तापक्रम की वृद्धि से उसकी लम्बाई में 100 000 वें अंश की वृद्धि होती है। अच्छी-खासी गर्मी के दिन पटरियों का तापक्रम $30\text{-}40^0$ से भी अधिक हो जाता है; कभी-कभी धूप में पटरियाँ इतनी गर्म हो जाती हैं कि छूने से हाथ जलता है। जाड़ों में वे -25^0 से भी कम तापक्रम पर होती हैं। यदि जाड़े और गर्मियों के तापक्रमों में अन्तर औसतन 550 ही मान लें, तो पथ की कुल लम्बाई 640 किमी में 0.00001 और 55 से गुणा करने पर करीब ? किमी. प्राप्त होगा। ज्ञात होता है कि मास्को और लेनिनग्राद को मिलाने वाला रेल-पथ सचमुच ही जाड़ों की अपेक्षा गर्मियों में तिहाई किलोमीटर अर्थात् करीब 300 मीटर अधिक लम्बा होता है।

बेशक, यहाँ पथ की लम्बाई नहीं बढ़ती। बढ़ती है सिर्फ सभी पटरियों की कुल लम्बाई। ये दोनों बातें एक नहीं हैं और इसलिए पटरियों को कभी भी एक दूसरे से बिल्कुल सटाकर नहीं रखा जाताः उनके बीच कुछ खाली जगह छोड़ दी जाती है, ताकि गर्म होने पर पटरियाँ स्वतंत्र रूप से प्रसारित हो सकें[26]। हमारा कलन दिखाता है कि सभी पटरियों की कुल लम्बाई में वृद्धि उनके बीच के रिक्त स्थानों की कुल लम्बाई में ही सिमटी होती है; भयंकर शीत में पटरियों की कुल लम्बाई की अपेक्षा गर्मियों में उनकी कुल लम्बाई में करीब 300 मी. की वृद्धि होती है। इस प्रकार, अक्टूबर रेल-पथ का लौह भाग गर्मियों में सचमुच 300 मीटर अधिक लम्बा है, बनिस्बत की जाड़ों में।

चोरी की सजा नहीं

लेनिनग्राद-मास्को लाइन पर हर जाड़े में कुछेक सौ मीटर टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार गायब हो जाते हैं, पर कोई इसकी चिन्ता नहीं करता, यद्यपि तार महँगा होता है और चोर कानाम सब जानते हैं। यह काम ठण्ड का है। जो कुछ रेलों के बारे में कहा जा चुका है, तार पर भी लागू होता है। फर्क सिर्फ इतना है कि गर्मी से ताँम्बे का तार लोहे की अपेक्षा 1.5 गुना अधिक लम्बा हो जाता है। लेकिन तारों के टुकड़ों के बीच खाली जगह नहीं होती, अतः हम बिना किसी हिचकिचाहट के कह सकते हैं कि लेनिनग्राद-मास्को टेलीफोन लाइन गर्मियों की अपेक्षा जाड़ों में करीब 500 मी. छोटा होता है। ठण्ड हर जाड़े में लगभग आधा किलोमीटर तार चोरी कर लेती है और उसे कोई सजा नहीं मिलती। वैसे, इस चोरी से टेलीफोन या टेलीग्राफ के कार्य पर कोई असर नहीं पड़ता और, इसके अतिरिक्त, गर्मियों में चोरी का माल पूरी तरह वापस भी तो हो जाता है!

लेकिन इस तरह का संकुचन जब तारों में नहीं पुलों में होने लगता है तो परिणाम बुरे हो सकते हैं। 1927 की दिसम्बर में इसतरह की एक खबर अखबारों में आई थी :

---

[25] मास्को-लेनिनग्राद रेल-पथ का नाम। अनु.

[26] यदि पटरियों की लम्बाई 8 मी. हो, तो जोड़ों पर 6 मिमी. लम्बा स्थान (0^0 पर) छोड़ना चाहिए। इस खाली स्थान के पूर्ण रूप से बन्द होने के लिए पटरियों का तापक्रम 65^0C होना चाहिए। तकनीकी कारणों से ट्राम की पटरियों के बीच जगह नहीं छोड़नी चाहिए। इससे अक्सर पटरियाँ टेढ़ी नहीं होतीं, क्योंकि जमीन में गड़ी होने के कारण उनमें तापक्रम का उतार-चढ़ाव नगण्य होता है। उन्हें जोड़ने की विधि भी बगल से टेढ़ी होने में बाधा डालती है। पर बहुत गर्मी पड़ने पर ट्राम की पटरियाँ कुछ टेढ़ी हो ही जाता है। फोटोग्राफी के आधार पर निर्मित चित्र 73 में यह स्पष्टता के साथ दिखाया गया है।
रेलगाड़ी की पटरियों के साथ भी कभी-कभी ऐसा हो जाता है। बात यह है कि ढालू स्थानों पर चलती गाड़ियाँ अपने साथ-साथ पटरियों को भी (कभी-कभी आधार समेत) घसीट ले जाती हैं; फलस्वरूप ऐसे स्थानों पर पटरियों के सिरे एक दूसरे से बिल्कुल सट जाते हैं।

चित्र 73. अत्यधिक गर्मी के कारण ट्राम की लाइनों का टेढ़ा हो जाना।

पेरिस की मीनार कितनी ऊँची?

अब यदि आप से पूछा जाए कि पेरिस की मीनार कितनी ऊँची है, तो उत्तर में "300 मीटर" कहने के पहले आप प्रश्न करेंगे :

- किस मौसम में - गर्म या ठण्डे?

लोहे की बनी इतनी बड़ी चीज़ की ऊँचाई हर तापक्रम पर समान नहीं रह सकती। हमें ज्ञात है कि 300 मी. लम्बे लोहे के छड़ का तापक्रम एक डिग्री अधिक होने पर उसकी लम्बाई में 3 मिमी. की वृद्धि होती है। वातावरण के तापक्रम में एक डिग्री की वृद्धि से पेरिस की मीनार में भी करीब इतनी ही वृद्धि होनी चाहिए। पेरिस की जलवायु के अनुसार अच्छे खासे धूप उगे मौसम में मीनार $+40^0$ तक गर्म हो सकती है पर ठण्डे बरसाती मौसम में उसका तापक्रम $+10^0$ तक नीचे आता है। जाड़ों में उसका तापक्रम 0^0 से -10^0 तक हो सकता है (पेरिस में इससे अधिक ठण्ड अक्सर नहीं पड़ती)। अतः तापक्रम में परिवर्तन करीब 40^0 तक सम्भव है और इसलिए पेरिस की मीनार की ऊँचाई में परिवर्तन 3 X 40 = 120 mm या तक 12 cm (इस पंक्ति की लम्बाई से अधिक) हो सकता है।

प्रत्यक्ष मापों से यह भी ज्ञात हुआ कि पेरिस की मीनार तापक्रम में परिवर्तन के प्रति हवा से कहीं अधिक संवेदनशील है। वह अपेक्षाकृत जल्द ठण्डा या गर्म होता है और बदरी के दिन अचानक सूरज उगने पर पहले प्रभावित होता है। पेरिस की मीनार की ऊँचाई में परिवर्तनों की माप विशेष प्रकार के निकले-इस्पात के तार की सहायता से ज्ञात की गई थी। तापक्रम परिवर्तन के कारण निकेल-इस्पात के तार की लम्बाई में परिवर्तन नहीं के बराबर होता है। इस अनूठे मिश्र धातु का नाम "इनवार" (लातीनी = अनित्य) है।

निष्कर्ष यह है कि ठण्डे मौसम की अपेक्षा गर्म मौसम में पेरिस की मीनार की लम्बाई में इस पंक्ति के बराबर लम्बाई वाले लोहे के टुकड़े द्वारा वृद्धि हो जाती है। वैसे लोहे के इतने लम्बे टुकड़ें की कीमत एक सेंटिम भी नहीं होती।

चाय का गिलास और जल-स्तर नापने की नली

अनुभवी गृह स्थित काँच के गिलास में गर्म-चाय डालने के पहले उसमें चम्मच डालना नहीं भूलती, विशेषकर यदि चम्मच चाँदी का बना हो। घरेलू अनुभव के आधार पर बना यह नियम बिल्कुल सही है। आइए, इसकी जाँच करें।

सबसे पहले यह स्पष्ट कर लें कि गर्म पानी से गिलास चटकता क्यों है। गिलास टूटने का कारण है काँच का असमान प्रसारण। गिलास में ढाला गया पानी उसकी दीवारों को एकदम से गर्म नहीं कर देता; पहले दीवारों की भीतरी परत गर्म होती है और बाहरी परतें ठण्डी ही रहती हैं। गर्म होते ही भीतरी परत प्रसारित हो जाती है। बाहरी परत अपरिवर्तित रहती है, उसपर भीतरी प्रसारित परतों का दबाव पड़ता है। दोनों परतें एक दूसरे से अलग होती हैं और काँच चटख जाता है।

यह मत सोचिए कि मोटी दीवारों वाले गिलास खरीद कर अप उनके टूटने वाली मुसीबत से छुट्टी पा जाएंगे। ऐसी स्थितियों में मोटी दीवारों वाले गिलास और भी कमजोर सिद्ध होंगे। यह स्पष्ट भी है : पतली दीवारें जल्द गर्म हो जाती हैं, उनमें तापक्रम समरूपता के साथ जल्द वितरित होता है और इसलिए उनके विभिन्न अंशों का प्रसारण भी समान रूप से होता है; ऐसे नहीं जैसे कि धीरे-धीरे गर्म होने वाली काँच की मोटी परतों में होता है।

पतली दीवारों वाले काँच के बर्तन खरीदते वक्त एक चीज़ नहीं भूलनी चाहिए : सिर्फ दीवारें ही पतली न हों; पेंदे को भी पतला होना चाहिए। गर्म पानी ढालने से मुख्यतः पेंदा ही गर्म होता है। यदि वह मोटा होगा, तो गिलास अवश्य टूटेगा चाहे कितनी भी पतली उसकी दीवारें क्यों न हों। ऐसे गिलास और चीनी-मिट्टी के कप भी आसानी से टूटते हैं, जिनके पेंदे से नीचे की ओर स्तम्भ के रूप में गोल छल्ला लगा होता है।

काँच का बर्तन जितना ही पतला हो, उतना ही निर्भय होकर आप उसे गर्म कर सकते हैं। रसायनज्ञ अत्यंत पतली दीवारों वाले काँच के बर्तन व्यवहार में लाते हैं; वे उन्हें सीधा ज्वालक पर रख देते हैं, बर्तन टूटने का कोई डर नहीं रहता।

इसमें कोई शक नहीं कि आदर्श बर्तन वह होता, जो गर्म करने से बिल्कुल ही प्रसारित नहीं होता। बहुत ही कम प्रसारण करने वाला पदार्थ है स्फटिक या क्वार्टस। इसमें काँच की अपेक्षा 15-20 गुना कम प्रसारण होता है। पारदर्शक स्फटिक का मोटा बर्तन भी जितना चाहें, गर्म कर सकते हैं, वह नहीं टूटेगा। लाल-तप्त क्वार्टस के बर्तन को आप एकदम से ठण्डे पानी में फेंक सकते हैं, टूटने का कोई खतरा नहीं हैं।[27] इसका सम्बन्ध अंशतः इसी से है कि ताप-संवहनाा शीशे की अपेक्षा क्वार्टस में कहीं अधिक है।

गिलास सिर्फ शीघ्र तपन से ही नहीं टूटते। शीघ्र ठण्डा करने से भी टूट जाते हैं। इसका कारण है असमान संकोचन : बाहरी परत ठण्डा हो पर संकोचन की दिशा में खिंचने लगती है और भीतरी परत पर दबाव डालती है। इसलिए गर्म मुरब्बे को ठण्डा करने के लिए काँच के मर्तबान को ठण्डक या ठण्डे पानी में कभी न रखें।

"चाय के गिलास में चम्मच" की समस्या पर लौटें। चम्मच काँच को टूटने से कैसे बचाता है?

दीवारों की बाहरी व भीतरी परतों के तापक्रमों में बहुत ही बड़ा अन्तर सिर्फ तभी होता है, जब आप गिलास में एकदम से खूब गर्म पानी डालते हैं। साधारण गर्म पानी से दोनों परतों के तापक्रमों में इतना बड़ा अन्तर नहीं होता और इसलिए उनके आन्तरिक तनावों में भी गम्भीर फर्क नहीं आता। साधारण गर्म पानी से बर्तन नहीं टूटता। यदि गिलास में चम्मच पड़ा हो, तो क्या होता है? पेंदे पर आकर गर्म द्रव काँच को (जो ताप का बुरा चालक है) पूरी तरह से गर्म कर सकने के पहले अपनी गर्मी का अच्छा-खासा भाग ताप के सुचालक चम्मच को दे देता है; द्रव का तापक्रम कम हो जाता है; बहुत गर्म से वह साधारण गर्म द्रव में परिणत हो जाता है और इसलिए उससे कोई खतरा नहीं रह जाता। द्रव अब और आगे डालने से भी कोई डर नहीं रह जाता, क्योंकि गिलास थोड़ा गर्म हो चुका है।

कहने का मतलब यह है कि चम्मच (विशेषकर यदि वह बड़ा व मोटा है) गिलास के गर्म होने की क्रिया को समरूप कर देता है और काँच को चटकने से बचाता है।

लेकिन यदि चम्मच चाँदी का हो, तो यह और अच्छा क्यों है? क्योंकि चाँदी ताप का बहुत अच्छा संवाहक है; चाँदी का चम्मच पानी की गर्मी ताँबे की अपेक्षा जल्द आत्मसात करता है। स्मरण करें कि गर्म चाय में पड़ा चाँदी का चम्मच छूने से कितना गर्म लगता है; हाथ जलने लगता है। इस गुण के आधार पर आप आँखें बन्द करके बिल्कुल सही-सही बता सकते हैं कि चम्मच ताँबे का है या चाँदी का। गर्म पानी में डाल कर निकालने पर ताँबे के चम्मच से हाथ नहीं जलेगा।

काँच की दीवारों का असम रूप से गर्म होना सिर्फ चाय के गिलास के लिए ही खतरनाक नहीं है। वाष्प क्वथित्र (स्टीम ब्वायलर) के महत्वपूर्ण भाग जलमापी नलियों; जिनसे क्वथित्र में जल का स्तर नापा जाता है, - के लिए भी यह बुरा सिद्ध होता है। वाष्प व गर्म पानी के कारण काँच की इन नलियों में भीतरी परतों का प्रसारण बाही परतों की अपेक्षा अधिक होता है। उत्पन्न आन्तरिक तनाव के अतिरिक्त नली में वाष्प व गर्म पानी का ऊँचा दबाव भी रहता है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से नली और आसानी से टूट सकती है। बचाव के लिए दो भिन्न प्रकार की काँच की परतों से नलियों को बनाया जाता है। भीतरी परत का प्रसार-संगुणक कम होता है और बाहरी का अधिक।

हमाम में जूते

"जाड़ों में दिन छोटे व रातें बड़ी क्यों होती हैं और गर्मी में इसका उल्टा क्यों होता है? सभी दृश्य और अदृश्य पदार्थों की तरह जाड़े का दिन भी ठण्डे से सिकुड़ जाता है। रात लालटेनों आदि से गर्म होती रहती हैं, इसलिए फैल जाती है।"

चेखव की कहानी के पेंसनयाफ्ता कज्जाक सर्जेंट की टुकड़ी में चलने वाले ये तर्क होठों पर बरबस मुस्कुराहट ला देते हैं। पर इसतरह के "विद्वत" तर्क सुनकर हँसने वाले लोग स्वयं ही कभी-कभी ऐसे बेढंगे सिद्धान्त बना दिया करते हैं।

हमाम में जूतों के बारे में सभी ने सुना होगा और पढ़ा भी होगा। कहते हैं कि गर्म वाष्प और पानी में स्नान करने के बाद जूते पहनना मुश्किल होता, है क्योंकि "गर्म होकर पैरों का आयतन बढ़ जाता है"। यह विख्यात उदाहरण क्लासिकल बन गया है, पर इसका कारण बिल्कुल गलत बताया जाता है।

---

[27] प्रयोगशालाओं के लिए स्फटिक के बर्तन इसलिए भी सुविधाजनक हैं कि वे आसानी से नहीं पिघलते' क्वार्टस 1700^0 पर सिर्फ मुलायम होना शुरू करता है।

सर्वप्रथा, हमाम[28] में मानव-शरीर का तापक्रम लगभग नहीं बढ़ता; शरीर के तापक्रम में 1-2^{0}C से अधिक की वृद्धि नहीं होती। मानव-शरीर परिवेश के तापीय प्रभावों के साथ सफलतापूर्वक संघर्ष करता है और अपना तपक्रम एक निश्चित बिन्दु पर स्थिर रखता है।

1-2^0 C तापक्रम अधिक हो जाने से शरीर के आयतन में इतनी नगण्य वृद्धि होती है कि जूते पहनते वक्त आपको इसका पता नहीं लग सकता। मानव-शरीर के कठोर व मुलायम अवयवों का आयतन प्रसार गुणांक दस हजारवें भागों से अधिक नहीं होता। अतः पैर की चौड़ाई में वृद्धि सेंटीमीटर के सौंवे भाग से अधिक नहीं हो सकती। आप सोचत हैं कि जूते 0.01 सेमी तक की शुद्धि से मिलते हैं?

पर तथ्य शंकातीत है : हम्माम के बाद जूते पहनना मुश्किल होता है। इसका कारण शरीर का तापीय प्रसारण नहीं है। पैर फूलते हैं, इसलिए कि परिवेश की आर्द्रता ऊँची होती है; इसका असर चमड़ी पर पड़ता है। रक्त पैरों की ओर काफी बहने लगता है, जिससे रक्तधर घटिकाएं फूल जाती हैं, आदि आदि।

चमत्कार

अलेक्जेंडर हिरोन नामक प्रसिद्ध फव्वारे के बारे में आपने सुना होगा, जो आज भी अपने आविष्कारक का नाम अमर कर रहा है। हिरोन प्राचीन ग्रीस के यंत्रकार थे। उनके कागजातों में धूर्त्तता से भरी दो विधियों का वर्णन मिलता है, जिनकी सहायता से मिस्र के पुजारी लोगों को धोखा दिया करते थे, ताकि जनसाधारण में चमत्कारों पर विश्वास बना रहे।

चित्र 74 में आप होम के लिए धातु के बने एक खोखले अग्नि-कुण्ड को देखते हैं। इसके नीचे मन्दिर के दरवाजे खोलने के लिए विशेष उपकरण छिपा है। अग्नि-कुण्ड मन्दिर के बाहर होता था। जब आग जलाई जाती थी, कुण्ड के भीतर की हवा गर्म होकर बर्तन में स्थित पानी पर दबाव डालती थी। पानी नली द्वारा बर्तन से निकल कर बाल्टी में गिरता था; और बाल्ट पानी के भार से नीचे जाने लगती थी और साथ ही रस्सी द्वारा दरवाजे खींचकर खोल देती थी (चित्र 75)। इस धूर्त्तता से अनभिज्ञ आश्चर्यचकित दर्शक समझते थे कि उनके सामने चमत्कार हो रहा है : आग की ज्वालाएं उठती हैं और "पुजारी की प्रार्थना से" द्वार स्वयं खुल जाते है...

चित्र 74. मिस्त्री पुजारियों के चमत्कार की पोल : मन्दिर के द्वार होमाग्नि के प्रभाव से खुलते हैं।

चित्र 75. वेदी में अग जलने पर स्वयं खुलने वाले द्वारों की बनावट का आरेख (चित्र 74 से तुलना करें)।

चित्र 76. एक और प्राचीन चमत्कार : होमाग्नि में अपने आप घी का ढलना।

पुजारियों द्वारा प्रयुक्त एक और मिथ्या चमत्कार चित्र 76 में दिखाया गया है। जब कुण्ड में आग लहकने लगती है, नीचे के हौज में स्थित घी गर्म हवा के दबाव से नलियों में उठकर कुण्ड में गिरने लगता है; नलियाँ पुजारियों की प्रतिमा में छिपी हैं। जब मुख्य पुजारी हौज के बीच में लगी ठेपी निकाल लेता था, तो घी कुण्ड में नहीं गिरता था (क्योंकि हौज की हवा फैल कर इस छेद से निकल जाया करती थी)। यह चमत्कार कभी-कभी दिखाया जाता था; जब लोग बहुत कम पूजा चढ़ाने लगते थे।

बिना चाबी की घड़ी

बिना चाबी की एक घड़ी का वर्णन हम कर चुके हैं (पृष्ठ 117)। यह कहना गलत होगा कि उसमें चाबी की जरूरत नहीं थी; उसमें चाबी आदमी द्वारा नहीं, वातावरण के दबाव में परिवर्तनों से पड़ती रहती थी। इसी तरह की एक और खुद चाबी भरी जाने वाली घड़ी का वर्णन करते हैं जिसका आधार तापीय प्रसारण है।

इस घड़ी का यंत्र चित्र 77 में दिखाया गया है। इसके मुख्य पुर्जे हैं - छड़ Z_1 व Z_2 जो एक विशेष प्रकार के अत्यधिक बड़े प्रसार गुणांक वाले धातु-मिश्र से बने हैं। छड़ Z_1 चक्के X से इसप्रकार टिका है कि गर्मी से होने

[28] जहाँ 60-80^{0}C पर गर्म वाष्प में स्नान करते हैं। - अनु.

वाले इस छड़ के रैखिक प्रसार के कारण दंति-चक्र थोड़ा घूम जाया करता है। छड़ Z_1 को दंतिचक्र Y के दाँत में इस प्रकार फँसाते हैं कि ठण्ड से छड़ Z_2 में होने वाले रैखिक संकोचन के कारण चक्का Y उसी दिशा में थोड़ा सा घूम जाता है। दोाों दंति-चक्र एक ही अक्ष W_1 पर लगे हैं, जिसके घूमने से बड़ा चक्का घूमने लगता है। बड़े चक्के में लगी कलछियाँ नीचे के बर्तन से पारा उठाकर ऊपर एक नालिका में ढाल देती हैं, जहाँ से बहकर पारा बाएं चक्के की कलछियों में ढलता है। इस क्रिया के कारण बायां चक्का भी घूमने लगता है और चेन KK के सहारे चक्के K_1 (जो उसी के अक्ष पर लगा है) और चक्के K_2 को घुमाने लगता है; आखिरी चक्का K_2 व ही स्प्रिंग को मरोड़ता है और चाबी पड़ती रहती है।

पारा बायें चक्के की कलछियों में गिरने के बाद कहाँ जाता है? वह ढालू रखे बर्तन R_1 में बहता हुआ पुनः दायें चक्के के पास आ जाता है, ताकि फिर से अपनी यात्रा आरम्भ कर सके। स्पष्ट है कि ऐसा यंत्र तब तक चलता रहेगा, जब तक छड़ Z_1 व Z_2 छोटे-बड़े होते रहेंगे। और इसके लिए आवश्यक है कि हवा का तापक्रम बढ़ता-घटता रहे। पर यही तो हमारे प्रयत्न के बिना खुद-ब-खुद होता रहता हैः परिवेश की हवा के तापक्रम में कोई भी परिवर्तन हो, छड़ छोटे या बड़े होते रहेंगे और घड़ी की स्प्रिंग धीमे-धीमे ही सही, पर निरन्तर ऐंठन खाती रहेगी।

इस घड़ी को हम "शाश्वत" चलित्र कह सकते हैं? बेशक नहीं। घड़ी अनिश्चित लम्बे काल तक चलती रहेगी, जब तक कि उसके पुर्जे घिसपिट नहीं जाएंगे। पर इसकी ऊर्जा का स्रोत परिवेशी हवा का ताप है। यह घड़ी नन्हें अंशों में तापीय प्रसारण से प्राप्त कार्य संचय करती रहती है, ताकि उसे घड़ी की सुइयों को निरन्तर घुमाते रहने में खर्च कर सके। यह "निःशुल्क" चलित्र है, क्योंकि इसे अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए हमारी देख-भाल और हमारी ओर से ऊर्जा खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर वह "कुछ नहीं" से ऊर्जा नहीं प्राप्त करता : उसकी ऊर्जा का स्रोत अंततः सूरज का ताप है, जिससे पृथ्वी गर्म होती है।

इसी तरह की बनावट वाली घड़ी का एक और नमूना चित्र 78 व 79 में दिखाया गय है। इसमें भी चाबी खुद-ब-खुद पड़ती रहती है। इसमें मुख्य भूमिका ग्लिसरिन की होती है, जो हवा के तापक्रम बढ़ने पर फैलता है और एक बोझ को ऊपर उठाता है। बोझ नीचे वापस आते वक्त घड़ी को चलाता है। चूँकि ग्लिसरिन — 30^0C पर जमता है और $+290^0C$ पर खौलना शुरू करता है, इसप्रकार के यंत्र चौराहों आदि जैसे खुले स्थानों के लिए उपयुक्त हैं। 2^0C का तापक्रम परिवर्तन भी इस घड़ी के चलने के लिए पर्याप्त है। ऐसी एक घड़ी का साल भर तक परीक्षण किया गया था। घड़ी ठीक-ठाक चलती रही, हाँलाकि पूरे साल भर तक किसी ने उसे हाथ नहीं लगाया।

ऐसे ही सिद्धान्त पर अधिक बड़ चलित्रों का निर्माण लाभप्रद होगा या नहीं? पहली नज़र में लगता है कि ऐसे निःशुल्क चलित्र काफी मितव्ययी होंगे, पर कलन कुछ और ही बताते हैं। साधारण घड़ी को 24 घण्टों तक चलाने के लिए सिर्फ 1/7 किलोग्राम-मीटर के करीब ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। एक सेकेण्ड में व्यय होने वाली ऊर्जा एक किलोग्राम मीटर का 600000 वां भाग होगी। चूँकि एक अश्व-शक्ति 75 किलोग्राम मीटर प्रति सेकेण्ड के बराबर होती है, एक घड़ी की शक्ति एक अश्वशक्ति के 45000000 वें भाग के बराबर होती है। अतः यदि पहली प्रकार की घड़ियों में फैलने वाले छड़ों या दूसरी प्रकार की घड़ियों में व्यवह्त युक्ति की कीमत सिर्फ एक कोपेक ही आँकी जाए, तो एक अश्व शक्ति वाले ऐसे चलित्र की कीमत होगी।

1 कोपेक x 45000000 उ 450000 रूबल।

एक अश्व शक्ति के लिए लगभग पाँच लाख रूबल - 'निःशुल्क' चलित्र के लिए कुछ ज्यादा ही महँगा है...

शिक्षादायक सिगरेट

डिब्बी पर जलती सिगरेट रखी है (चित्र 80)। उसके दोनों सिरों से धुआँ निकल रहा है। पर जलते सिरे से निकलता धुँआ ऊपर की ओर प्रवृत्त हो रहा है और पिछले सिरे से निकलने वाला धुँआ नीचे बैठ रहा है। क्यों? आखिर दोनों सिरों से एक ही प्रकार का धुँआ निकल रहा है।

चित्र 78. एक और स्वकुच्यक घड़ी का आरेख

चित्र 79. स्वकुंच्यक घड़ी; स्तम्भ के भीतर ग्लिसरिन की नली
छिपी है।

चित्र 80. धुँआ सिगरेट के एक सिरे से निकल कर ऊपर
उठता है और दूसरे से निकलकर नीचे बैठता हैट क्यों?

हाँ, धुँआ दोनों जगह एक ही है, पर जलते सिरे के ऊपर हवा की ऊर्ध्वमुखी संवहन धाराएं हैं, जो धुँए के कणों को अपने साथ ऊपर ले जाती हैं। पिछले सिरे से धुँए के साथ निकलने वाली हवा ठण्डी हो जाती है और ऊपर की ओर प्रवृत्त नहीं होती, धुँए के कणों को ऊपर नहीं ले जाती। और चूँकि धुँआ हवा से भारी होती है, नीचे बैठने लगता है।

बर्फ का टुकड़ा, जो खौलते पानी में भी नहीं पिघलता

एक परख नली में पानी भर लें और उसमें बर्फ का टुकड़ा डुबा दें। वह ऊपर नहीं तैर आए (बर्फ पानी से हल्की होती है), इसके लिए उस पर सीसे या ताँबे की भारी गोली डाल दें। सिर्फ इस बात का ध्यान रखें कि बर्फ पानी से बिल्कुल अलग ही न हो जाए; पानी को उस तक पहुँचते रहना चाहिए। अब नली के समीप स्पिरिट ज्वालक इस प्रकार रखें कि लौ परख नली के सिर्फ ऊपरी भाग को लगे (चित्र 81)। शीघ्र ही पानी खौलना शुरू कर देगा और भाप निकलने लगेगी। पर आश्चर्य की बात यह होगी कि पेंदे पर पड़ी बर्फ नहीं पिघलेगी। यह एक छोटा-सा चमत्कार ही है - खौलते पानी में भी नहीं पिघलने वाली बर्फ...

रहस्य यह है कि परख नली के पेंदे पर पानी नहीं खौलता, वह ठण्डा ही रहता है। पानी सिर्फ ऊपर खौलता है। बर्फ "खौलते पानी में" नहीं है, बर्फ "खौलते पानी के नीचे" है। गर्मी से फैलकर पानी हल्का हो जाता है और वह पेंदे की ओर नहीं जाता, परखनली के ऊपरी भाग में ही रह जाता है। गर्म पानी की संवहन धाराएं परखनली के ऊपरी भाग तक ही सीमित रहेंगी, पानी की परतों का स्थनांतरण भी ऊपरी भाग तक सीमित रहेगा और नीचे की अधिक घनी परतों को स्पर्श नहीं करेगा। नीचे के भाग में पानी सिर्फ ताप-सुचालकता के कारण गर्म हो सकता है, पर पानी की तापचालकता अत्यंत कम है।

बर्फ पर या बर्फ के नीचे?

पानी गर्म करने के लिए पानी से भरे बर्तन को हम लौ के ऊपर रखते हैं, उसके बगल में नहीं। है। बिल्कुल सही करते हैं, क्योंकि आग की लपटों द्वारा गर्म होकर हवा हल्की हो जाती है और सब तरफ से ऊपर की ओर उठती हुई बर्तन को घेर लेती है।

अतः गर्म किए जाने वाले पिण्ड को आग के ऊपर रखकर हम स्रोत की ऊर्जा का अधिकतम उपयोग करते हैं।

लेकिन यदि किसी पिण्ड को बर्फ की सहायता से ठण्डा करना हो, तो पिण्ड कहाँ रखना चाहिए? बहुत से लोग आदतवश पिण्ड को बर्फ के ऊपर ही रखते हैं, - बहुत से लोग आदतवश पिण्ड को बर्फ के ऊपर ही रखते हैं, जैसे दूध, का घड़ा बर्फ की सिल्ली पर। यह विधि उत्तम नहीं कही जा सकती, क्योंकि बर्फ के ऊपर की हवा ठण्डी होकर नीचे बैठ जाती है और उसका स्थान पुनः गर्म हवा ले लेती है। इससे व्यावहारिक निष्कर्ष निकला है : यदि पेय पदार्थ या खाना ठण्डा करना चाहते हैं, तो उसे बर्फ के ऊपर नहीं, बर्फ के नीचे रखिए।

और सविस्तार समझाने की कोशिश करते हैं। यदि पानीसे भरा बर्तन बर्फ पर रख दिया जाए, तो द्रव की सिर्फ सबसे निचली परत ठण्डी होगी। पानी का बाकी भाग उसी हवा से घिरा रहेगा, जो अभी ठण्डी नहीं हुई है। इसके विपरीत, यदि बर्फ का टुकड़ा बर्तन के ऊपर ढक्कन पर रख दिया जाए, तो भीतर की वस्तु शीघ्र ठण्डी होगी। द्रव की ऊपरी परतें ठण्डी होकर नीचे जाएंगी और नीचे की परतें ठण्डी होने के लिए ऊपर उठेंगी। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक बर्तन का सारा द्रव ठण्डा न हो जाए।[29] इसके अतिरिक्त, बर्फ के इर्द-गिर्द की हवा भी ठण्डी होकर नीचे बैठ जाएगी और बर्तन को सब ओर से घेर लेगी।

बन्द खिड़की से क्यों हवा बहती है?

जाड़ों में जब काफी ठण्ड पड़ती है, खिड़कियों को अच्छी तरह से बन्द करना पड़ता है, ताकि ठण्डी हवा के घुसने के लिए कोई दरार न रह जाए। पर अक्सर ऐसी खिड़कियों से भी हवा बहती है। यह विचित्र सा लगता है, पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

---

[29] शुद्ध जल इस तरह 00क तक नहीं, सिर्फ —4^0C तक ठण्डा होगा, क्योंकि इस तापक्रम पर उसका घनत्व अधिकतम होता है। पर व्यवहार में पेय पदार्थों को शून्य तापक्रम तक ठण्डा करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

कमरे में हवा कभी भी स्थिर नहीं रहती; उसमें अदृश्य धाराएँ बहती रहती हैं और इसका कारण हवा का गर्म व ठण्डा होते रहना। गर्म होकर हवा विरल हो जाती है और इसलिए हल्की हो जाती है; ठण्डी होने पर वह इसके विपरीत घनी हो जाती है, अतः और भारी हो जाती है। कमरे में स्थित तापदायक उपकरणों के कारण गर्म व हल्की हवा ठण्डी हवा द्वारा छत की ओर विस्थापित होती रहती है। खिड़की व दीवारों से ठण्डी होने वाली हवा नीचे फर्श पर बैठती जाती है।

कमरे में ये पवन-धाराएँ गैस वाली बैलून की मदद से दिख सकती हैं, यदि बैलून के साथ कोई थोड़ी भारी वस्तु बाँध दी जाए, ताकि वह ऊपर छत से नहीं अड़े; स्वतंत्र रूप से कमरे में उड़ता रहे। ताप के स्रोत के पास छोड़ने पर बैलून कमरे में हवा की अदृश्य धाराओं के साथ खिंचता हुआ यात्रा करता रहेगा; चूल्हे से खिड़की की ओर छत के सहारे और वहाँ से फर्श की ओर और फिर चूल्हे की ओर, ताकि अपनी यात्रा पुनः शुरू कर सके।

इसी कारणवश जाड़ों में हमें लगता है कि खिड़की से हवा बह रही है, यद्यपि खिड़की के दरवाजे अच्छी तरह बन्द है और बाहर से हवा दरारों से होकर भी भीतर नहीं आ सकती।

रहस्मयी घिरनी

महीन हल्के कागज को काटकर एक आयत बना लीजिए। इसे मध्य रेखाओं पर मोड़ने से आपको पता चल जाएगा कि इसका गुरुत्व केन्द्र (मध्य-रेखाओं का कटान बिन्दु) कहाँ है। खड़ी सुई की नोक पर इस आकृति को इस प्रकार रखें कि सुई ठीक इसी बिन्दु पर टेक लगाए।

कागज का टुकड़ा सन्तुलन में रहेगा, क्योंकि वह गुरुत्व केन्द्र के सहारे टिका हुआ है। पर हवा के हल्के झोंके से भी वह चक्कर खाना शुरू कर देगा।

यहाँ तक इस उपकरण में कुछ भी रहस्मय नहीं लगता। लेकिन आप चित्र 82 की भाँति अपना हाथ इसके निकट लाएं; धीरे-धीरे, सावधानी से, ताकि हवा के झोंके से कागज उड़ न जाए। आप एक विचित्र चीज देखेंगे; कागज घिरनी की तरह घूमने लगता है - पहले धीमे और बाद में तेजी से। हाथ हटा लीजिए - घूमना बन्द हो जाएगा। हाथ निकट लाइऐ - फिर घूमने लगेगा।

पिछली शती के सत्तरवें वर्ष के आस-पास कई लोग सोचते थे कि इस विचित्र घूर्णन का कारण हमारे शरीर का कोई अलौकिक गुण है। आध्यात्मवाद के प्रेमियों को इस प्रयोग में अपने ढीले-ढाले अस्पष्ट सिद्धान्तों की पुष्टि नजर आती थी; उन्हें लगता था कि मानव शरीर से सचमुच कोई रहस्मयी शक्ति निकलती है। पर कागज के घूमने का कारण बहुत ही सरल एवं पूरी तरह से लौकिक है : आप के हाथ से गर्म होकर नीचे की हवा ऊपर उठती है और कागज से टकराते हुए उसे घूमने पर विवश कर देती है। यह वैसा ही कुछ है, जैसी लैंप की गर्मी से घूमने वाली कागज की ऐंठन भरी पट्टियाँ होती हैं, क्योंकि आपने भी कागज को उसकी मध्य रेखाओं पर मोड़कर उसके भिन्न हिस्सों को हल्का झुकाव दे रखा है।

ध्यान से देखने वाले को पता चलेगा कि ऊपर वर्णित घिरनी एकमात्र कलाई से ऊँगलियों की दिशा में घूमती है। इसका कारण यह है कि हथेली की तुलना में ऊँगलियों के सिरे अधिक ठण्डे होते हैं। इसलिए हथेली के समीप हवा की अधिक सशक्त ऊर्ध्वमुखी संवहन धाराएँ बनती हैं और ऊँगलियों के ताप से उत्पन्न धाराओं की अपेक्षा कागज पर अधिक शक्ति से चोट करती हैं।[30]

चित्र 82. कागज का टुकड़ा घिरनी की तरह क्यों घूमने लगता है?

क्या पर कोट गर्म करता है?

आप उस आदमी को क्या कहेंगे, जो आपको विश्वास दिलाना चाहता है कि फर-कोट गर्म नहीं करता? आप शायद सोचेंगे कि वह मजाक कर रहा है। और यदि वह अपनी बात प्रयोगों के आधार पर सिद्ध करने लगे तो? उदाहरणार्थ एक ऐसा प्रयोग करें। थर्मोमीटर में देख लें कि वह कितना तापक्रम बता रहा है और उसे फर-कोट में

---

[30] आप यह भी देख सकते हैं कि ज्वर में या अधिक ताप की स्थिति में घिरनी और तेजी से घूमती है। कई लोगों को चक्कर में डालने वाले इस ज्ञानदायक प्रयोग पर एक छोटा-मोटा शोध कार्य भी लिखा गया था, जो 1876 में मास्को की चिकित्सा समाज के समक्ष पढ़ा गया (नि. प. नेचायेव, हाथ की गर्मी के कारण हल्के पिण्डों में घूर्णन)।

लपेटकर रख दें। कुछेक घण्टे बाद उसे निकाल कर देखें। आपको विश्वास हो जाएगा कि वह चौथाई डिग्री तक भी नहीं गर्म हुआ है : पारा जहाँ का तहाँ रूका है; थर्मोमीटर जितना तापक्रम पहले बता रहा था, उतना ही अब भी बता रहा है। यही प्रमाण है कि फर-कोट गर्म नहीं करता। यह भी शंका की जा सकती है कि फर-कोट ठण्डा करते हैं। दो शीशियों में थोड़ा-थोड़ा बर्फ लें। एक को कमरे में खुला छोड़ दें और दूसरी को फर-कोट में लपेट दें। जब खुली शीशी में बर्फ पिघल जाए, फर-कोट से दूसरी शीशी निकालें : आप देखेंगे कि इसमें बर्फ ने पिघलना शुरू भी नहीं किया है। इसका अर्थ है कि फर-कोट गर्म तो क्या करेगा, उल्टा ठण्डा करता है, जिससे बर्फ का पिघलना मन्द हो जाता है।

क्या आपत्ति कर सकते हैं आप? इन तर्कों को कैसे काटा जा सकता है? किसी भी तरह नहीं। फर-कोट सचमुच में गर्म नहीं करता, यदि "गर्म करने" का अर्थ ताप देना माना जाए। बल्ब गर्म करता है, चूल्हा गर्म करता है, मानव-शरीर भी गर्म करता है, क्योंकि ये वस्तुएँ ताप के स्रोत हैं। पर इस अर्थ में फर-कोट बिल्कुल गर्म नहीं करता। वह अपनी ओर से ताप नहीं देता, वह हमारे शरीर से ताप के निकलने में बाधा भर डालता है। इसलिए उष्णरक्ती जीव, जिनका शरीर स्वयं ही ताप का स्रोत होता है, फर-कोट में अधिक गर्म महसूस करेंगे, बनिस्बत कि उसके बगैर। पर थर्मोमीटर खुद ताप को जन्म नहीं देता, और इसलिए उसे फर-कोट में लपेटने पर उसका ताप नहीं बढ़ता। फर-कोट में लपेटा गया बर्फ अपना कम तापक्रम देर तक सुरक्षित रख सकता है, क्योंकि फर-कोट ताप का बहुत ही बुरा चालक है और इसलिए कमरे में स्थित हवा के तापक्रम को बर्फ तक आसानी से नहीं पहुँचने देता।

फर-कोट की तरह बर्फ भी इसी अर्थ में पृथ्वी को गर्म करती है; सभी भुरभुरी वस्तुओं की तरह बर्फ भी ताप का कुचालक होती है और जमीन को ढककर उसके अन्दर की गर्मी निकलने से रोकती है। बर्फ की परत से ढकी जमीन में थर्मोमीटर अक्सर दस डिग्री तक अधिक तापक्रम दिखाता है, बनिस्बत कि ऐसी जमीन में जो बर्फ से ढकी न हो।

अतः यदि पूछा जाए कि फर-कोट गर्म करता है या नहीं, उत्तर देना चाहिए कि फर-कोट हमें अपने आपको खुद गर्म रखने में सहायक होता है। और भी सही होगा, यदि कहेंगे कि हम फर-कोट को गर्म करते हैं, न कि वह हमें।

पैरों तले कौन-सी ऋतु?

जब पृथ्वी की सतह पर ग्रीष्म ऋतु हो, तीन मीटर की गहराई पर कौन-सी ऋतु होगी?

आप सोचते हैं कि वहाँ भी ग्रीष्म होगी? गलत हैं आप। पृथ्वी के तल पर और जमीन के अन्दर गहराई में समान ऋतु नहीं होती। जमीन ताप का बहुत ही बुरा चालक है। लेनिनग्राद में जब सब कुछ जमा देने वाली कड़ी सर्दी पड़ती है, तब भी वहाँ दो मीटर की गहराई में तल पर होने वाले तापक्रम-परिवर्तन जमीन में बहुत धीरे-धीरे प्रसारित होते हैं और भिन्न गहराइयों तक पहुँचने में भिन्न समय लगाते हैं। उदाहरण के लिए, लेनिनग्राद क्षेत्र के एक स्थान स्लूत्स्का में ली गई प्रत्यक्ष मापों से ज्ञात हुआ कि वहाँ जमीन में तीन मीटर की गहराई पर वर्ष का सबसे गर्म क्षण 76 दिन देर से पहुँचता है और सबसे ठण्डा क्षण - 108 दिन देर से। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पृथ्वी पर सबसे गर्म दिन 25 जुलाई को था, तो तीन मीटर की गहराई में सबसे गर्म दिन 9 अक्टूबर का होगा। यदि 15 जनवरी को सबसे ठण्डा दिन था, तो उक्त गहराई पर यह दिन मई में आएगा। अधिक गहराई पर जाने से ये कालान्तर और भी बड़े होंगे।

गहराई में तापक्रम परिवर्तन सिर्फ देर से ही नहीं पहुँचते, अपनी प्रचण्डता भी खो बैठते हैं। कुछ विशेष गहराईयों पर इन परिवर्तनों का पता ही नहीं लगता; वे बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं। ऐसी जगहों पर शताब्दियों तक एक स्थिर तापक्रम बना रहता है, जो दिए हुए स्थान के लिए वार्षिक औसत होता है। पेरसि की वेधशाला के नीचे 28श्र की गहराई पर डेढ़ सौ साल से एक थर्मोमीटर रखा हुआ है, जिसमें पारा इतने अर्सों में अपने स्थान से हिला भी नहीं है और सदा एक ही तापक्रम (+11_7^{0}C) दर्शाता है। इस थर्मोमीटर को वहाँ लेवुजिए ने रखा था।

इसप्रकार जमीन के भीतर, जिस पर हम खड़े हैं, वह ऋतु कभी नहीं होती, जो उसकी सतह पर होती है। जब जमीन के ऊपर जाड़े का मौसम होता है, तीन मीटर की गहराई पर पतझड़ ही रहता है। बेशक यह वैसा पतझड़ नहीं है, जैसा जमीन के ऊपर था। इसमें तापक्रम थोड़ा और नीचे होता है। जब जमीन के ऊपर ग्रीष्म होती है, गहराई में कड़क जाड़े के क्षीण होते स्वर पहुँच रहे होते हैं।

इसबात को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, जब जमीन के अन्दर रहने वाले जन्तुओं और पौधों के भूगत अवयवों के जीवन की परिस्थितियों के बारे में बात चलती है। उदाहरणतया, हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होनी चाहिए कि हमारे यहाँ के वृक्षों और जड़ों की कोशिकाओं का प्रजनन वर्ष के शीतार्द्ध में ही होता है और तथाकथित कैबियल रेशों की सक्रियता पूरी गर्मियों के लिए समाप्त हो जाती है। जमीन के ऊपर तने में ठीक इसका उल्टा होता है।

कागज की पतीली

चित्र 83 पर नजर डालिए : कागज के दोने में अण्डा उबल रहा है। आप कहेंगे, - "कागज जल जाएगा और पानी लालटेन को बुझा देगा"। आप खुद ऐसा प्रयोग करके देखें। इसके लिए चिमड़े कागज के एक टुकड़े से दोना बना लें और तार के गोल घेरे में ठीक से रख लें, ताकि गिरे नहीं। आप देखेंगे कि कागज को आगसे कोई क्षति नहीं होती। इसका कारण यह है कि खुले बर्तन में पानी 100^0C से अधिक तापक्रम तक गर्म नहीं किया जा सकता। सौ डिग्री पानी का क्वथनांक है। इसलिए कागज में खौलाया जाने वाला पानी, जिसकी तापग्राहिता बहुत ही अधिक है, आग से कागज को मिले अतिरिक्त ताप को अपने में सोखता रहता है और कागज को 100^0C से अधिक गर्म नहीं होने देता; और यह तापक्रम इतना काफी नहीं है कि कागज जलने लगे। (चित्र 84 में दर्शित कागज को डिब्बे की आकृति देकर काम में लाना अधिक सुविधाजनक होगा)।

चित्र 84. पानी खौलने के लिए कागज का डिब्बा।

इसीतरह की परिघटना से सम्बन्धित एक और प्रयोग है, जिसे अन्य मनस्क लोग अनजान में किया करते हैं और जिसका परिणाम नुकसानदेह होता है : बिना पानी रखे सोमवार या केटली को गर्म करने से उनके झलैया द्वारा जुड़े भाग अलग हो जाते हैं। कारण स्पष्ट है। जिस धातु से झलैया की जाती है, वह आसानी से पिघलने वाला होता है, पर पानी उसके तापक्रम को खतरे के निशान से आगे नहीं करना चाहिए। पुराने मशीन-गन "मक्सिम" में पानी खुद गर्म होकर हथियर को पिघलने से बचाता था।

आप सीसे के टुकड़े को ताश के पत्तों से बनी डिब्बी में पिघला सकते हैं। इसके लिए शर्त यही है कि आग की लौ कागज के उसी स्थान पर लगनी चाहिए, जहाँ कागज सीसे को स्पर्श करता है। धातु ताप का अपेक्षाकृत अच्छा संवहक होता है, अतः वह तुरन्त कागज से गर्मी ले लेता है और उसे अपने गलनांक अर्थात 335^0 से अधिक से अधिक गर्म नहीं होने देता। यह तापक्रम कागज के जलने के लिए पर्याप्त के लिए है।

निम्न प्रयोग भी आसानी से किया जा सकता है (चित्र 85) : मोटी सी कील या लोहे की (बेहतर है - ताँबे की) छड़ पर कागज का पतला फीता पेंच की तरह कसकर लपेट लें। इसके बाद छड़ को लौ पर रखें। आग कागज को लपेट लेगी, कालिख से काला कर देगी, पर उसे तब तक नहीं जला सकेगी, जब तक कि छड़ गर्म होकर लाल न हो जाए। इसका रहस्य धातु की तापीय सुचालकता में है; काँच की छड़ी के साथ ऐसा प्रयोग सम्भव नहीं है। चित्र 86 में चाबी पर कसकर लपेटे गए "अग्निसह" धागे के साथ प्रयोग दिखाया गया है।

बर्फ फिसलदार क्यों है?

साधारण फर्श की अपेक्षा चिकने फर्श पर फिसलना आसान है। इस हिसाब से ठोस बर्फ पर भी यही होना चाहिए : खुर्दरी बर्फ की अपेक्षा समतल चिकनी बर्फ को अधिक फिसलदार होनी चाहिए।

पर यदि आपको बर्फ पर फिसलकर चलने वाली छोटी स्लेज गाड़ी पर सामान रखकर खुर्दरे बर्फ की तसह पर खींचने का अवसर मिलता, तो आप जान गए होते कि आशा के बावजूद गाड़ी चिकनी बर्फ की अपेक्षा रूखड़ी बर्फ पर अधिक आसानी से फिसलती है। दर्पण की तरह चिकनी चौरस बर्फ की अपेक्षा रुखड़ी बर्फ अधिक फिसलनदार होती है। इसका कारण यह है कि बर्फ का फिसलदान होना उसके चिकनेपर पर नहीं बल्कि बिल्कुल ही दूसरी बात पर निर्भर करता है। रहस्य यह है कि दबाव के बढ़ने पर बर्फ का गलनांक कम हो जाता है।

पहले देखा जाए कि हम स्लेज पर या स्केटिंग के जूते पहनकर फिसलते हैं, तो क्या होता है। स्केटिंग के जूते बर्फ से ढकी जमीन को कुछेक वर्ग मिलीमीटर क्षेत्र पर ही स्पर्श करते हैं। हमारे शरीर का सारा भार इसी छोटे-से क्षेत्र को दबाता है। यदि आपको अध्याय 2 की बातें याद हों, तो आप फौरन समझ जाएंगे कि स्केटिंग-सवार आदमी बर्फ को काफी बड़े बल से दबाता है। अधिक बड़े दबाव के कारण बर्फ कम तापक्रम पर ही पिघल जाती है।

उदाहरण के लिए, यदि बर्फ का तापक्रम -5^0 है और स्केटिंग के जूते के कारण बर्फ पर पड़ने वाला दबाव उसके गलनांक को पाँच डिग्री से भी अधिक नीचे कर देता है, तो स्केट के नीचे बर्फ पिघल जाएगी।[31] इससे क्या होती है? स्केट और बर्फ के बीच पानी की पतली सी परत बन जाती है और स्केट-सवार फिसलने लगता है। उसके पैर जहाँ-जहाँ पड़ेंगे, यही होगा। हर जगह स्केट के नीचे की बर्फ पानी की पतली परत में परिणत हो जाएगी। सभी ज्ञात पिण्डों में एकमात्र बर्फ ही यह गुण रखती है, इसलिए एक सोवियत भौतिकविद् ने बर्फ को "प्रकृति में एकमात्र फिसलनदार वस्तु" की उपमा दी है। बाकी पिण्ड चिकने हैं, पर फिसलनदार नहीं हैं।

चित्र 85. अग्नि सह कागज।

चित्र 86. अग्नि सह धागा।

अब हम अपने प्रश्न पर लौट सकते हैं कि कौन अधिक फिसलदान है - चिकनी बर्फ या रूखड़ी। हमें ज्ञात है कि कोई बोझ उतनी ही अधिक शक्ति से दबाता है, जितना कम उसके आधार का क्षेत्र होता है। आदमी किस स्थिति में आधार पर अधिक दबाव डालता है : जब वह बर्फ की आइने सी चिकनी सतह पर खड़ा होता है या रूखड़ी सतह पर? स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति में, क्योंकि इसमें आदमी रूखड़ी सतह के चन्द उभरे स्थलों पर ही टिका है। इन स्थलों का कुल क्षेत्रफल काफी कम होगा, अतः इन पर दबाव काफी अधिक होगा। बर्फ पर जितना ही अधिक दबाव पड़ेगा, उतना ही अधिक द्रवण होगा और इसलिए बर्फ उतनी ही फिसलदान होगी (यह उस स्थिति के लिए सत्य है, जब स्केट का जमीन को स्पर्श करने वाला तल पर्याप्त चौड़ा होता है; काफी संकीर्ण स्पर्श-तल होने की वजह से बर्फ के उभरे भाग फँसने लगते हैं और अधिकाँश शक्ति इनको काटने में खर्च होने लगती है)।

अधिक दबाव के कारण बर्फ का गलनांक कम हो जाता है - इस तथ्य से दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं को समझाया जा सकता है। इसी खूबी के कारण बर्फ के टुकड़ों को आपस में जोर से दबाने पर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। बच्चे जब मुठ्ठी भर भुरभुरे बर्फ को हाथ में रखकर दबाते हैं, तो वे अनजाने में इसी गुण का उपयोग करते हैं : दबाव बढ़ाकर हिम-कणों के बीच के स्थान में द्रवण किया आरम्भ कर देते हैं। इससे प्राप्त द्रव दबाव दूर होने पर सभी हिम-कणों को एक-साथ जोड़ता हुआ पुनः जम जाता है और भुरभुरे बर्फ की जगह बर्फ का एकाश्म गोला प्राप्त होता है। बर्फ की प्रतिमा बनाने के लिए जब हम-रेणुका पर बर्फ का लोंद लुढ़काना शुरू करते हैं, तो हम यहाँ भी इसी गुण का उपयोग करते हैं : लोंदे के भार से उसके नीचे पड़ी हिम-रेणुका की सतह पर द्रवण-क्रिया शुरू हो जाती है। प्राप्त द्रव लोंदे के साथ चिपकता हुआ जम जाता है (दबाव समाप्त होने पर) और लोंदे को बड़ा करता जाता है। अब आप समझते होंगे कि बहुत कड़क सर्दी में बर्फ की प्रतिमा गढ़ना क्यों मुश्किल होता है। बर्फ के धूल-कण आपस में चिपकते नहीं; इसके लिए बहुत अधिक दबाव की आवश्यकता पड़ती है। सड़क पर गिरे मुलायम बर्फ के फाहे चलने वालों के भार से दब-दब कर पत्थर की तरह कड़ी परत बना देते हैं -यह भी इसी कारण से।

बर्फ की चुटिया[32]

बर्फ की चुटिया कैसे बनती होगी? किस प्रकार के मौसम में वह बन सकती है : जब तापक्रम शून्य से थोड़ा ऊपर होता है, या जब वह शून्य से नीचे होता है? यदि तापक्रम शून्य से अधिक हो, तो पानी जमकर बर्फ में परिणत नहीं हो सकता। यदि तापक्रम शून्य से कम था, तो फिर छप्पर पर से चूने के लिए पानी कहाँ से आया? और अंत में, यह भी सम्भव नहीं है कि पहले गर्मी थी और छप्पर पर से ठीक पानी चूने के क्षण हठात कड़क सर्दी पड़ने लगी और चूने को तैयार पानी क्षण भर में जम कर बर्फ की चुटिया में परिणत हो गया।

बर्फ की चुटिया बनने के लिए आवश्यक है कि एक साथ ही दो भिन्न तापक्रम विद्यमान हों - प्रथमतः शून्य से अधिक, ताकि बर्फ गल सके और दूसरे, शून्य सेकम, ताकि पानी जम कर बर्फ में परिणत हो सके।

---

[31] सैद्धान्तिक कलन किया जा सकता है कि बर्फ का गलनांक 1^0C कम करने के लिए उस पर 130 kg/cm^2 का दबाव डालना चाहिए। स्लेज या स्केट बर्फ पर इतना बड़ा दबाव डाल सकते हैं? यदि स्केट-सवार के पूरे भार को स्केट व जमीन के स्पर्श-क्षेत्र पर समान रूप से वितरित किया जाए, तो काफी कम दबाव प्राप्त होगा। यह सिद्ध करता है कि स्केट का तल समान रूपसे जमीन पर नहीं सटारहता; उसका एक छोटा भाग ही जमीन से सटा होता है और बर्फ पर दबाव डालता है।

[32] आपने बरसात में छप्पर की ओरी से गिरते हुए पानी की धार देखी होगी। आप कल्पना करें कि धार जैसे ही गिरना शुरू करती है, जमकर बर्फ में परिणत हो जाती है और छव्पर की ओरी से शीशे की पारदर्शक चुटिया की तरह ज्यों-कि-त्यों लटकी रह जाती है। इसे बर्फ की चुटिया कह सकते हैं। ठण्डी जलवायु के देशों में जाड़े के दिनों छप्परों के चारों ओर बर्फ की अनेक चुटियाँ लटकी रहती हैं। -अनु.

वास्तविकता में यही होता भी है : छप्पर के नत-तल पर सूर्य-किरणें बर्फ को शून्य से अधिक तापक्रम तक गर्म करती हैं, जिससे वह पानी की नन्हीं बूँदों में परिणत होने लगती है। बूँदें जब वहाँ से बहकर छप्पर की किनारी से चूने की तैयारी करने लगती हैं, जमने लगती हैं, क्योंकि यहाँ तापक्रम शून्य से कम है। बूँद के बाद बूँद आ-आ कर जमती जाती हैं और प्राप्त होती है शीशे सी पारदर्शक बर्फ की लम्बी चुटिया।

निम्न स्थिति की कल्पना करें। आकाश साफ है। वातावरण का तापक्रम-1 या -2 डिग्री है। सूर्य किरणों की वर्षा हो रही है। पर सूर्य की तिरछी किरणें धरती को इतना गर्म नहीं करतीं की बर्फ पिघल सके। सूरज की ओर वाले नत छप्पर पर किरणें इतनी तिरछी नहीं पड़तीं, जितनी तिरछी जमीन पर पड़ती है। नत छप्पर पर किरणें लम्ब की ओर अधिक झुकी होती हैं (चित्र 87)। हमें ज्ञात है कि जिस तल पर किरणें गिरती हैं, उस तल के साथ किरणें जितना ही बड़ा कोण बनाएंगी, तल को उतना ही अधिक प्रकाश व ताप प्राप्त होगा। (किरणों का प्रभाव इस कोण के ज्या का समानुपाती होता है; चित्र 87)। हमें ज्ञात है कि जिस तल पर किरणें गिरती हैं, उस तल के साथ किरणें जितना ही बड़ा कोण बनाएंगी, तल को उतना ही अधिक प्रकाश व ताप प्राप्त होगा। (किरणों का प्रभाव इस कोण के ज्या का समानुपाती होता है; चित्र 87 में दिखाई स्थिति में क्षैतिज तल की अपेक्षा छप्पर के नत-जल को 2.5 गुनी अधिक गर्मी प्राप्त होती है, क्योंकि 20^0 कोण की ज्या की तुलना में 60^0 कोण की ज्या 2.5 गुनी अधिक बड़ी है।) यही कारण है कि छप्पर की ढलान अधिक गर्म होती है और उस पर की बर्फ पिघल सकती है। पिघला हुआ पानी ढलान पर बहता है और बूँदों के रूप में चूने की तैयारी करता हुआ किनारी से नीचे की ओर लटकता है। पर यहाँ छप्पर के नीचे तापक्रम शून्य से कम है, अतः बूँद जम जाती है (उसे ठण्डा करने में वाष्पीकरण का भी हाथ होता है)। जमी बूँद पर दूसरी बूँद लुढ़क आती है और वह भी इसीप्रकार जम जाती है। इसी प्रकार धीरे-धीरे बर्फ का एक उभार सा बन जाता है। अगली बार जब ऐसाही मौसम आता है, तो ये उभार कुछ और लम्बे हो जाते हैं और अंत में चुटिया का रूप धारण कर लेते हैं। इस विधि से उन घरों के छप्परों पर बर्फ की चुटिया बनती हैं, जिनमें कोई तापदायक प्रणाली नहीं लगी होती।

यही कारण[33] हमारी आँखों के समक्ष कहीं अधिक बड़ी संवृत्तियों को जन्म देता है : जलवायवीय कटिबंधों व ऋतुओं में जो भिन्नता होती है, इसका कारण मुख्यतः सूर्य-किरणों के आपतन कोणों का परिवर्तन ही है। सूरज हम से जाड़ों में लगभग उतनी ही दूरी पर होता है, जितनी गर्मियों में; ध्रुवों और विष्वक रेखा से भी उसकी दूरियाँ समान ही हैं (इन दूरियों में अन्तर इतना कम है कि उसकी उपेक्षा कर सकते हैं)। पर सूर्य-किरणों के झुकाव का कोण विष्वक के पास कहीं अधिक बड़ा है, बनिस्बत कि ध्रुवों के पास; गर्मियों में यह कोण बड़ा होता है, बनिस्बत की जाड़ों में। इसी कारण से दैनिक तापक्रमों में काफी अन्तर रहता है और इसलिए प्रकृति के पूरे जीवन में भी भिन्नता आ जाती है।

चित्र 87. सूर्य किरणें क्षैतिज धरातल की अपेक्षा नत छप्परों को अधिक गर्म करती हैं (संख्याएँ कोणों की माप बता रही हैं)।

[33] यह एक मुख्य कारण है, पर सर्वेसर्वा नहीं है। दिन की लम्बाई, अर्थात वह अन्तराल, जिसके दरम्यान सूर्य पृथ्वी को गर्म करता है - यह भी एक कम महत्वपूर्ण कारण नहीं है। पर दोनों ही कारण, एक खगोलीय तथ्य से उत्पन्न होते हैं। यह तथ्य है : पृथ्वी द्वारा सूर्य के गिर्द परिक्रमण के तल के साथ पृथ्वी की धुरी का झुकाव।

अध्याय 7

प्रकाश की किरणें

आह, छाया, काली छाया,
किसे तुम नहीं दौड़ाती?
किसे तुम नहीं हराती?
सिर्फ तुम्हे है, काली छाया,
मुश्किल पकड़ना, भरना अंक!

निक्रासव

हमारे पूर्वज छाया को पकड़ना नहीं जानते थे, पर उससे फायदा निकालना जानते थे : वे उसकी सहायता से आदमी का "सिलुएट" या छायाकृति प्राप्त किया करते थे।

फोटोग्राफी के कारण आज हर व्यक्ति अपना या अपने प्रियजनों का चित्र प्राप्त कर सकता है। पर XVIII वीं शती के लोग इतने भाग्यशाली नहीं थे : चित्रकार चित्र बनाने के लिए काफी बड़ी धनराशियाँ वसूला करते थे और अधिक पैसे खर्च करना हरेक के वश की बात नहीं थी। सिलुएट के लोकप्रिय होने का कारण यही था। वे कुछ हद तक आधुनिक फोटोग्राफी का काम करते थे। सिलुएट छाया को कैद कर के जड़ देने से प्राप्त होता है। उसे यंत्रवत प्राप्त किया जाता था और इसलिए वे अपनी प्रतिकूल प्रक्रिया प्रकाश-लेखन (फोटोग्राफी) की याद दिलाते हैं। चित्र बनाने के लिए हम प्रकाश का उपयोग करते हैं और हमारे पूर्वज उसकी अनुपस्थिति - छाया - का उपयोग करते थे।

सिलुएट कैसे बनाया जाता था, यह चित्र 88 से स्पष्ट है। सिर को इस प्रकार घुमा कर रखते थे कि छाया पार्श्व-आकृति देती थी। आकृति की परिरेखा पर पेंसिल घुमाकर चित्र बना लेते थे और उसे काली स्याही से रंग देते थें; सिलुएट तैयार हो जाता था।

चित्र 89. सिलुएटी चित्र को छोटा करना

चित्र 90. शिल्लेर का सिलुएट

आवश्यकता होने पर एक विशेष यंत्र-पैटोग्राफ (चित्र 89) - की सहायता से उसे छोटा भी कर सकते थे।

आप यह न सोचें कि सीधा-सादा काला पुता हुआ चित्र व्यक्ति की विशेषताओं को नहीं व्यक्त कर सकता। इसके विपरीत, अच्छा सिलुएट आदमी को बहुत सही तरह दिखा सकता है।

सरल परिरेखाओं द्वारा मूल से मिलता-जुलता चित्र देने की क्षमता के कारण कई चित्रकार छाया-चित्रण की ओर आकर्षित हुए और पूरे के पूरे प्राकृतिक दृश्यों आदि को भी इसी रूप में चित्रित करने लगे। सिलुएटी चित्रण धीरे-धीरे एक विशेष शैली में परिणत हो गया, जिसे अनेक चित्रकारों ने अपनाया।

"सिलुएट" शब्द का उद्‌भव बहुत ही मजेदार है : XVIII वी शती के मध्य में फ्रांस के वित्त मंत्री एथेन दे सिलुएट थे, जो अपने समकालीनों को मितव्ययता का उपदेश दिया करते थे। उन्हें उच्चवर्गीय लोगों से विशेष शिकायत थी कि वे चित्रों के पीछे बहुत धन बर्बाद करते थे। छाया चित्र के सस्तेपन के कारण कुछ मजाकिया लोग उसे a la Silhouette" ("सिलुएट" का) चित्र कहने लगे।

अण्डे में चूजा

अपने मित्रों को एक मनोरंजक खेल दिखाने के लिए आप छाया के गुणों का उपयोग कर सकते हैं। तिलचट कागज का एक पर्दा बना लीजिए। एक बड़े गत्ते में आयताकार छेदकर के इसमें तिलचट कागज लगा देने से काम

चल जाएगा। पर्दे के पीछे दो लैप रख दीजिए। दर्शक पर्दे की दूसरी ओर बैठेंगे। एक लैंप (उदाहरणार्थ बायां) जलाएं।

जलते लैंप और पर्दे के बीच एक अण्डाकार गत्ता तार से लटका दें या स्तम्भ पर खड़ा कर दें। दूसरी ओर बैठे दर्शकों को पर्देपर अण्डा दिखेगा। (दायां लैंप अभी जला नहीं है।) अब आप मित्रों से कहें कि आप "एक्सरे की मशीन" चालू करने जा रहे हैं, जिससे अण्डे में बैठे चूजे को देखा जा सकेगा। और सचमुच में क्षण भर बाद दर्शक देखते हैं कि अण्डे का सिलुएट किनारियों पर थोड़ा प्रकाशमान हो रहा है और उसके बीचों-बीच चूजे का स्पष्ट सिलुएट दिख रहा है (चित्र 91)।

चित्र 91. मिथ्या एक्सरे-चित्र

जादू का रहस्य क्या हैं? आप दायां लैंप जलाते हैं। उसकी किरणों के पथ पर गत्ते की बनी चूजे की पर्याकृति रखी हुई है, जो पर्दे पर चूजे का सिलुएट देता है। अण्डाकार छाया का कुछ भाग दायें लैंप के कारण प्रकाशमान हो जाता है, पर पर्दे के जिस स्थान पर चूजे का सिलुएट है, वहाँ न बायें लैंप का प्रकाश पड़ता है, न दायें का। इसलिए अण्डा अपनी किनारी पर प्रकाशमान हो उठता है और चूजे का सिलुएट अधिक स्पष्ट (काला) दिखता है। पर्दे की दूसरी ओर बैठे दर्शक, जो आपके कारनामों से अनभिज्ञ हैं, यदि भौतिकी और शरीर क्रिया - विज्ञान का ज्ञान नहीं रखते, तो सोचेंगे कि आप सचमुच अण्डे का एक्स-रे कर रहे हैं।

कार्टूनी फोटोग्राफी

बहुत कम ही लोग जानते होंगे कि फोटो-कैमरा बिना विशालक शीशे (लेंस) का भी होता है। लेंस की जगह सिर्फ छोटे से गोल छेद से भी काम चल जाएगा। इसमें चित्र कुछ कम स्पष्ट मिलते हैं। बिना लेंस वाले कैमरों का एक मनोरंजक रूप है "झिरीदार" कैमरा। इसमें गोल छेद की बजाए एक दूसरे को काटने वाली दो महीन दरारें होती हैं। कैमरे के अग्रभाग में दोहरी दीवार होती है : एक पर झिरी क्षैतिज होती हैं और दूसरी पर इसके अभिलम्ब। जब दोनों दीवारें एक-दूसरी से सटी होती हैं, तो चित्र वैसा ही प्राप्त होता है, जैसा गोल छेद वाले कैमरे से। लेकिन यदि दीवारों के बीच कुछ दूरी हो (उन्हें इस तरह बनाया जाता है कि खिसकायी जा सकें), तो कुछ और ही नजर आता है। चित्र हास्यजनक रूप से विकृत हो उठता है (चित्र 92 वा 93); फोटोग्राफ नहीं, कार्टून प्राप्त हो जाता है।

इस विकृति का कारण है?

चित्र 94 की स्थिति पर गौर करें :क्षैतिज झिरी उदग्र झिरी के आगे है। आकृति D (क्रौस) की उदग्र रेखा से चलती किरणें प्रथम झिरी C को उसी तरह से पार करेंगी, जैसे साधारण छेद को; पीछे की उदग्र झिरी इन किरणों के पथ पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी। अतः दूधिये शीशे ऋ पर उदग्र रेखा के बिम्ब का पैमाना दूधिये शीशे ऋ और दीवार क के बीच की दूरी के अनुरूप होगा।

शीशे पर क्षैतिज रेखा (यदि झिरियों की स्थितियाँ नहीं बदली हैं) कुछ और तरह की होगी। पहली (क्षैतिज) झिरी से किरणें बिना एक दूसरे को काटे निर्बाध पार हो जाएंगी। उदग्र झिरी B को वे उसी तरह पार करेंगी, जैसे छोटे छिद्र को। इससे दूधिये शीशे पर उस पैमाने का बिम्ब मिलेगा, जो A से दीवार B तक की दूरी के अनुरूप होगा।

यदि संक्षेप में कहें, तो उदग्र रेखाओं के लिए मानों सिर्फ अगली (क्षैतिज) झिरी रहती है और क्षैतिज रेखाओं के लिए सिर्फ पिछली (उदग्र। और चूँकि अगली झिरी पिछली की अपेक्षा दूधिये शीशे से कहीं दूर है, इसलिए दूधिये शीशे ऋ पर सभी उदग्र लम्बाइयाँ क्षैतिज लम्बाइयों की तुलना में कहीं बड़ी होंगी : बिम्ब खड़ी या उदग्र दिशा में लमड़ी हुई लगेगी।

इसके विपरीत, यदि उदग्र झिरी आगे हो और क्षैतिज पीछे, तो बिम्ब क्षैतिज दिशा में लमड़ा हुआ मिलेगा (तुलना करें चित्र 92 व 93)।

स्पष्ट है कि यदि झिरियाँ एक दूसरे के सापेक्ष तिरछी हों, तो विकृति कुछ और ही प्रकार की प्राप्त होगी।

ऐसे कैमरों का उपयोग सिर्फ कार्टूनी फोटोग्राफ के लिए नहीं किया जाता। उसे दूसरे आवश्यक व व्यावहारिक कार्यो में भी काम में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, भवनों, कालीनों आदि को सजाने के लिए बेल-बूटों की

लम्बाई-चौड़ाई बदलने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है, ताकि बेल-बूटे किसी खास दिशा में लमड़े या सिकुड़े हुए दिखें।

सूर्योदय से सम्बन्धित प्रश्न

चित्र 92. झिरीदार कैमरे से प्राप्त कार्टूनी फोटोग्राफ। चित्र क्षैतिज लमड़ा हुआ है।

चित्र 93. उदग्र लमड़ा हुआ कार्टूनी फोटोग्राफ (झिरीदार कैमरे से प्राप्त)।

चित्र 94. झिरीदार कैमरा विकृत आकृति क्यों देता है?

माना कि आप 5 बजे सुबह सूर्योदय का अवलोकन कर रहे हैं। ज्ञात है कि प्रकाश का गमन क्षणिक क्रिया नहीं है; स्रोत से प्रेक्षक की आँखों तक आने में वह कुछ समय लगाता है। अतः ऐसा प्रश्न पूछा जा सकता है : यदि प्रकाश का प्रसर क्षणिक होता, तो वही सूर्योदय आप कितने बजे देख सकते?

सूर्य से पृथ्वी तक आने में प्रकाश को कोई 8 मिनट लगते हैं। यदि प्रकाश का प्रसर क्षणिक हो, तो इस हिसाब से सूर्योदय हमें 8 मिनट पहले, अर्थात 4 बजकर 52 मिनट पर दिखना चाहिए।

बहुतों को शायद विश्वास नहीं होगा कि उत्तर बिल्कुल गलत है। सूरज के "उदय होने" का कारण यह है कि पृथ्वी अपनी सतह के नए-नए बिन्दुओं को पहले से प्रकाशमान व्योम की ओर लाती रहती है। अतः प्रकाश के क्षणिक प्रसर के बावजूद भी सूर्योदय आपको उसी क्षण दिखेगा, जिस क्षण अभी, अर्थात प्रकाश के क्रमिक प्रसर की स्थिति में दिखता है। अन्य शब्दों में, सूर्योदय आपको ठीक 5 बजे ही दिखेगा।[34]

यदि आप टेलिस्कोप द्वारा सूर्य की किनारी पर किसी धब्बे या प्रावर्ध के प्रादुर्भाव का प्रेक्षण कर रहे हैं, तो बात दूसरी है : यदि प्रकाश का प्रसर क्षणिक होता, तो ऐसी घटना का अवलोकन आप 8 मिनट पहले करते।

[34] यदि तथाकथित "वातावरणीय अपर्वतन" को ध्यान में रखा जाए, तो परिणाम और भी आशातीत होगा। अपवर्तन हवा में प्रकाश के पथ को मोड़ देता है और इसलिए हम सूरज को उसके ज्यामितीय रूप से क्षितिज के ऊपर उठने के थोड़ा पहले ही देख लेते हैं। पर क्षणिक प्रसर की स्थिति में अपर्वतन सम्भव नहीं है। अपवर्तन तभी हो सकता है, जब भिन्न माध्यमों में प्रकाश का वेग भी भिन्न हो। अपवर्तन की अनुपस्थिति के कारण प्रेक्षक को प्रकाश के खणिक प्रसर की स्थिति में सूर्य कुछ देर से ही दिखेगा, बनिस्बत कि उस स्थिति में, जब प्रकाश का प्रसर क्रमिक होता है। समय का अन्तर प्रेक्षण-स्थान के अक्षांश, वातावरण के तापक्रम तथा अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता और उसका मान दो मिनट से लेकर कुछ दिनों तक (ध्रुववर्ती अक्षांशों पर इससे भी अधिक) होता। आप यहाँ एक दिलचस्प विरोधाभास देख सकते हैं : प्रकाश के क्षणिक (अर्थात अनन्त क्षिप्र) प्रसर से सूर्योदय कुछ देर से दिखता, बनिस्बत कि उसके क्रमिक प्रसर से! इस प्रश्नके बारे में और नई बातें जानने के लिए देखें मेरी पुस्तक "क्या आप भौतिकी जानते हैं?"।

अध्याय 8

प्रकाश का परावर्तन एवं अपवर्तन

दीवार के पार देखना

पिछली शती की नवीं दशब्दी में एक मनोरंजक उपकरण बिका करता था, जिसका नाम था : "एक्सरे उपकरण"। उस समय मैं स्कूल में पढ़ता था और मुझे याद है कि इस धूर्त उपकरण ने किस तरह मुझे चक्कर में डाल दिया था। इसमें एक नली थी, जिसकी सहायता से बिल्कुल अपारदर्शक वस्तुओं के पार भी देखा जा सकता था। इस नली से मैं सिर्फ मोटे कागज ही नहीं, छूरी की मोटी पत्ती के पार भी वस्तुएँ साफ-साफ देख सकता था। ऐसी पत्ती को एक्स-किरणें भी बेधने में असमर्थ हैं। इस खिलौने की सरल बनावट का रहस्य आपके लिए स्पष्ट हो जाएगा, यदि आप चित्र 95 पर एक निगाह डालेंगे। चित्र में उक्त नली का प्रतिरूप दिखाया गया है। 45^0 के कोण पर झुके चार दर्पण किरणों को इस प्रकार परावर्तित करते हैं, कि किरणों का पथ अपारदर्शक वस्तु के नीचे हो जाता है और फिर अपारदर्शक वस्तु के पार स्थित वस्तु तक पहुँच जाता है।

चित्र 95. मिथ्या एक्सरे का उपकरण

चित्र 96. पेरिस्कोप

चित्र 97. पनडुब्बी के पेरिस्कोप का आरेख

युद्ध में ऐसे उपकरणों का उपयोग काफी प्रचलित है। "पेरिस्कोप" (चित्र 96) नामक उपकरण की सहायता से आप खाई में बैठे-बैठे शत्रु की गतिविधि देख सकते हैं; इसके लिए आपको अपना सर बाहर निकालने और दुश्मन की गोली खाने का खतरा मोल नहीं लेना होगा।

पेरिस्कोप में प्रकाश के प्रविष्ट होने की जगह से प्रेक्षक की आँख तक की दूरी जितनी लम्बी होगी, उपकरण द्वारा दिखने वाला क्षेत्र उतना ही सीमित होगा। दृश्य-क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए औप्टिक (प्रकाशीय) शीशों के तंत्र का उपयोग करते हैं। पर शीशे पेरिस्कोप में प्रविष्ट होने वाले प्रकाश के कुछ भाग को अवशोषित कर लेते हैं और इसके कारण दृश्य की स्पष्टता बुरी हो जाती है। ये बातें पेरिस्कोप की ऊँचाई को सीमित कर देती हैं। 20 मीटर से अधिक ऊँचे पेरिस्कोप में दृश्य-क्षेत्र अत्यंत संकुचित हो जाता है और दृश्य बिल्कुल अस्पष्ट सा हो जाता है। बदरी के दिन में अस्पष्टता और भी बढ़ जाती है।

पनडुब्बी के कैप्टेन भी आक्रमक जहाजों को पेरिस्कोप की मदद से ही देखते हैं। यह एक लम्बी नली होती है, जिसका एक सिरा पानी के ऊपर होता है। ये पेरिस्कोप थल पर प्रयुक्त पेरिस्कोपों से कहीं अधिक जटिल होते हैं, पर सिद्धान्ततः दोनों में कोई फर्क नहीं होता : किरणें दर्पण (या प्रिज्म) से परावर्तित होकर नली के भीतर भ्रमण करती हैं और निचले भाग में पुनः परावर्तित होकर प्रेक्षक की आँखों तक पहुँचती हैं (चित्र 97)।

"कटा हुआ" सर कैसे बोलता है

यह चमत्कार अक्सर मीना बाजारों में आदि में दिखाते हैं। रहस्य से अनिभज्ञ व्यक्ति को यह निश्चय ही आश्चर्यचकित कर देता है : आप अपने समक्ष एक छोटा टेबुल देखते हैं जिस पर एक थाल रखा होता है। थाल में होता है... आदमी का जीत-जागता सर, जो पलकें झपकाता है, बोलता है, खाता है। देखने पर लगता है कि टेबुल के नीचे धड़ छिपाने की कोई जगह नहीं है। आपको टेबुल के काफी निकट नहीं आने दिया जाता, टेबुल और आप के बीच रस्सियों का एक घेरा होता है, फिर भी आप स्पष्ट देख सकते हैं कि टेबुल के नीचे कुछ भी नहीं है।

यदि आपको यह चमत्कार देखने का फिर मौका मिले, तो कागज के एक मुड़े-चुड़े टुकड़े को टेबुल के नीचे खाली स्थान में फेंक दीजिएगा। रहस्य तुरन्त खुल जाएगा : कागज टकरा कर गिर जाएगा... आइने से। यदि कागज का टुकड़ा टेबुल तक नहीं भी पहुँचे, तो भी आइने के लिए छिपना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि उसमें कागज का प्रतिबिम्ब दिख जाएगा (चित्र 98)।

टेबुल के पैरों के बीच दर्पण की दीवार लगा देना पर्याप्त रहेगा, ताकि उसके नीचे का व्योम दूर से खाली दिखे। जाहिर है कि कमरे का दृश्य या दर्शक दर्पण में प्रतिबिंबित नहीं होने चाहिए, दीवारें और फर्श एक जैसे रंगे होने चाहिए, उन पर कोई नक्काशी या बेल-बूटे नहीं होने चाहिए और दर्शकों को पर्याप्त दूरी पर रखना चाहिए।

रहस्य इतना सरल है कि हँसी आती है, पर जब तक उसका पता न चल जाए, आदमी आश्चर्य में डूबा रहता है।

कभी-कभी जादू और असरदार तरीके से दिखाया जाता है। जादूगर पहले खाली टेबुल दिखाता है, उसके ऊपर और नीचे कुछ भी नहीं होता। इसके बाद पर्दे के पीछे से बंद डिब्बा लाया जाता है, जिसमें (जादूगर के अनुसार) "बिना धड़ के जिन्दा सर" रखा होता है। पर दरअसल डिब्बे में कुछ भी नहीं होता। जादूगर इस डिब्बे को टेबुल पर रखता है, उसके सामने की दीवार हटा देता है, और.... आश्चर्यचकित दर्शकों के सामने बोलता सर प्रकट हो जाता है। पाठक शायद समझ गए होंगे कि टेबुल के ऊपरी तख्ते पर एक छिपा हुआ ढक्कन सा होता है, जिसे नीचे बैठा आदमी खिसका कर छेद से अपना सर ऊपरनिकाल लेता है। यह सारा कार्य आसानी के साथ सम्पन्न किया जा सकता है, क्योंकि डिब्बे में नीचे से पेंदा नहीं होता। जादू और कई तरीकों से दिखाया जा सकता है, पर उन सभी का वर्णन हम नहीं करेंगे; उन्हें देख कर पाठक उनका रहस्य स्वयं समझ जाएंगे।

आगे या पीछे?

घरेलू सामानों में कई ऐसी चीज़ें हैं, जिनका व्यवहार अनेक लोग उपयुक्त ढंग से नहीं करते। इसके पहले हम बता चुके हैं कि कई लोग ठण्डा करने के लिए बर्फ का उपयोग सही तरीके से नहीं करते : वेवे पेय को बर्फ के ऊपर रखते हैं, जब कि उसे बर्फ के नीचे रखना चाहिए। ज्ञात होता है कि कई लोग साधारण दर्पण को व्यवहार में लाना नहीं जानते। आईने में अच्छी तरह से दिखने के लिए लोग अक्सर ही लैंप अपने पीछे रख देते हैं और "प्रतिबिंब पर प्रकाश पड़े", जबकि उन्हें खुद पर प्रकाश डालना चाहिए। बहुत सी औरतें इसी प्रकार दर्पण का प्रयोग करती हैं। आशा है कि हमारी पाठिकाएं निश्चय ही लैंप अपने ***आगे*** रखा करेंगी।

क्या आप दर्पण को देख सकते हैं?

साधारण आईने को भी अच्छी तरह नहीं जानने का एक और प्रमाणः अधिकाँश लोग शीर्षक में दिए गए प्रश्न का उत्तर गलत देते हैं, यद्यपि आइने में हर दिन देखा करते हैं।

जो लोग सोचते हैं कि दर्पण को देखा जा सकता है, वे गलत हैं। अच्छा और साफ-सुथरा दर्पण अदृश्य होता है। आप दर्पण का फ्रेम देख सकते हैं, उसकी किनारी देख सकते हैं, उसमें प्रतिबिंबित वस्तुओं को देख सकते हैं, पर यदि गंदा नहीं है, तो उसे आप नहीं देख सकते। कोई भी परावर्तक सतह अपने आप में अदृश्य होती है। उसमें और प्रकीर्णक सतहों में यही फर्क है (प्रकीर्णक ऐसी सतह को कहते हैं, जो प्रकाश-किरणों को हर सम्भव दिशा में फेंकती रहती है। बोल-चाल की भाषा में परावर्तक सतह को हम चिकनी, चमकीली या पॉलिश की हुई सतह कहते हैं, और प्रकीर्णक को रूखड़ी, चमकहीन आदि)।

दर्पण का उपयोग करने वाली हाथ की सफाइयाँ, जादू आदि इसी तथ्य पर आधारित हैं कि दर्पण खुद अदृश्य रहता है, दृश्य होती हैं सिर्फ उसमें प्रतिबिंबित वस्तुएँ। बिना धड़ के सर वाला जादू भी इसी तथ्य पर आधारित है।

दर्पण में हम किसे देखते हैं?

"जाहिर है कि खुद अपने को! - बहुत से लोग उत्तर देंगे। दर्पण में हमारा बिंब हमारी खुद की नकल है, हमारा खुद का चित्र है और हर तरह से हमसे मिलता-जुलता होता है"। क्या आप इस सादृश्य को जाँचना चाहेंगे? आप के दाएँ गाल पर एक तिल है। आपकी प्रतिमूर्ति के दाएँ गाल पर कोई निशान नहीं हैं, पर उसके बाएँ गाल पर एक काला धब्बा है, जो आपके बाएँ गाल पर नहीं हैं। आप कंघी दायीं ओर करते हैं, आपका हम शक्ल - बायीं ओर। आपकी दाहिनी भी बायीं की तुलना में कुछ ऊँची और घनी है। उसकी यह भौं कुछ नीची और कम घनी है। आप बंडी की दायीं जेब में घड़ी रखते हैं और बायीं में डायरी रखते हैं। आपके हम शक्ल की आदतें ठीक उल्टी हैंः वह घड़ी बायीं जेब में रखता है और डायरी दायीं जेब में। उसकी घड़ी के डायल पर नजर डालिए। आपके पास ऐसी घड़ी कभी नहीं थी : उसमें अंकों की स्थितियाँ और लिखावट बिल्कुल असाधारण सी हैं; उदाहरणार्थ, अंक आठ दुनिया में कहीं भी इस प्रकार नहीं लिखा जाता - क्ष्क्ष्ग्र, और वह लिखा भी गया है, बारह की जगह पर। बारह उसमें

है ही नहीं, छे के बाद पाँच आता है, आदि आदि। इन सब बातों के अतिरिक्त, आपके हमशक्ल की घड़ी में सुइयाँ उल्टी घूमती हैं।

और अन्त में, आपके दर्पणी हमशक्ल में एक शारीरिक ऐब है, जो, मैं सोचता हूँ, आप में नहीं है : वह वाम-हत्था है; वह लिखने, खाने आदि का कार्य बाएँ हाथ से करता है, और यदि आप उससे हाथ मिलाना चाहेंगे, तो वह अपना बायाँ हाथ बढ़ाएगा।

यह तय करना बिल्कुल कठिन है कि आपका हम शक्ल पढ़ा-लिखा भी है या नहीं। उसके हाथ में पड़ी पुस्तक से आप एक पक्ति भी शायद नहीं पढ़ सकेंगे और जो कुछ वह बाएँ हाथ से लिखता है, उससे आप एक शब्द भी नहीं समझ सकेंगे।

आपके हाथ पूर्ण सादृश्य का दावा रखने वाले आदमी का यही चित्रण है। और आप उसके आधार पर खुद के बारे में अपने खयाल बनाते हैं ...

मजाक बन्द किया जाए : यदि आप सोचते हैं कि आईने में झाँकते वक्त आप खुद को देखते हैं, तो यह आप की गलतफहमी है। अधिकतर लोगों के मुख, धड़, कपड़े आदि पूर्णतया सममित (सिमेट्रिकल) नहीं होते (और इस पर हमारा ध्यान भी नहीं जाता) : शरीर का वामार्ध दक्षिणार्ध के साथ पूर्णतया सादृश्य नहीं रखता। हमारे शरीर के दाएँ अर्ध के गुण दर्पण में वामार्ध के गुणों में परिणत हो जाते हैं और इसके विपरीत वामार्ध के गुण दाएँ अर्ध में चले जाते हैं। इसी कारण दर्पण में हम नहीं, कोई दूसरा ही होता है, जिसके साथ हमारा बहुत कम मेल बैठता है।

दर्पण के समक्ष चित्र बनाना

मूल वस्तु और दर्पण में उसके प्रतिबिंब की असादृश्यता निम्न प्रयोग द्वारा और अच्छी तरह देखी जा सकती है।

टेबुल पर अपने सामने उदग्र रूप से एक दर्पण खड़ा करें। उसके समीप एक सादा कागज रख कर कोई त्रिभुज या समान्तर चतुर्भुज का चित्र बनाएँ। शर्त यही है कि आप कागज व अपना हाथ सीधे न देखें, दर्पण में उनके प्रतिबिंब को देखते हुए काम करें।

जल्द ही आप मान लेंगे कि काम सिर्फ देखने में आसान है, करने में नहीं। वर्षों की लम्बी अवधि के दौरान हमारी दृश्यानुभूतियों व गत्यात्मक संवेदनाओं के बीच एक विशेष प्रकार का मेल बैठ जाता है। दर्पण इस मेल को तोड़ देता है, क्योंकि वह हमारे हाथ की गति हमारी आँखों को सही नहीं, विकृत रूप में दिखाता है। अर्सों से बनी आदत आपकी हर गति का विरोध करेगी : आप दायीं ओर रेखा खींचना चाहेंगे और हाथ बायीं ओर खींचेगा, आदि आदि।

चित्र 99. ऐसी ही घड़ी आपके हमशक्ल के पास है, जिसे आप
आईने में देखते हैं।

चित्र 100. दर्पण में देखकर चित्र बनाना।

आपको और भी आशातीत चिचित्रताएँ देखने को मिलेंगी, यदि आप सरल आकृतियों की बजाए अधिक जटिल चित्र बनाने का प्रयास करेंगे। आईने में देखते हुए कुछ लिखने का प्रयास करना और भी हास्यजनक परिणाम देगा।

स्याही से कुछ लिखकर उसे सोख्ते से दबाएँ। सोख्ते पर प्राप्त छाप भी दर्पणी सममिति का चित्र होता है। आप उस पर उगी लिखावट को पढ़ने की कोशिश करें। यदि वह बिल्कुल स्पष्ट होगी, तो भी आपके पल्ले शायद ही कुछ पड़ेगा : अक्षरों का झुकाव असाधारण होगा वे बायीं ओर को झुके होंगे) और सबसे मुख्य बात यह होगी कि उन लकीरों का क्रम वैसा नहीं होगा, जिसके हम आदी हो चुके हैं। लेकिन सोख्ते के पास लम्ब रूप से दर्पण लाने पर अक्षरों के ऐसे प्रतिबिंब प्राप्त होंगे, जिनके हम आदी हैं। इसमें दर्पण उस चीज का सममित बिंब देता है, जो खुद अपने आप में साधारण लिखावट का सममित चित्र है।

नपी तुली जल्दीबाजी

हमें ज्ञात है कि समरूप माध्यम में प्रकाश सरल रेखा, अर्थात लघुतम मार्ग पर भ्रमण करता है। पर प्रकाश उस स्थिति में भी लघुतम मार्ग चुनता है, जब उसे एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक सीधे नहीं, किसी दर्पण से परावर्तित होने के बाद उस तक पहुँचना होता है।

आइए, उसके मार्ग का अनुसरण करें। माना कि चित्र 101 में A प्रकाश-स्रोत को द्योतित करता है, रेखा MN दर्पण को। भंजित रेखा ABC मोमबत्ती से आँख C तक पहुँचने के लिए किरण का मार्ग है। सरल रेखा KB लम्ब है MN पर।

प्रकाशिकी के नियम से परावर्तन कोण 2 बराबर है आपतन कोण 1 के। इसे जानने के बाद सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि A से दर्पण को छूकर C तक पहुँचने के लिए जितने भी सम्भव पथ हैं, उनमें ABC सबसे छोटा (लघुतम) है। इसके लिए किरण-पथ ABC की तुलना किसी दूसरे पथ ADC के साथ करते हैं (चित्र 102)। MN पर बिन्दु A से लम्ब डालें और उसे बिन्दु F तक बढ़ाएँ, जहाँ वह किरण BC के मार्ग को काटता है। F व D बिन्दुओं को मिला लें। अब आगे कुछ करने के पहले त्रिभुजों ABE व EBF की तुल्यता सिद्ध करें। दोनों ही त्रिभुज समकोण हैं और आधार EB उभयनिष्ठ है। इसके अतिरिक्त, कोण EFB तथा EAB आपस में बराबर हैं, क्योंकि वे क्रमशः कोण 2 व 1 के बराबर हैं। अतः AE = EF। इसीसे समकोण त्रिभुजों AED व EDF की भी तुल्यता सिद्ध की जा सकती है (AE = EF, ED - उभयनिष्ठ है, $<AED = <DEF = 90^0$) जिससे ज्ञात होता है AD = DF।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि पथ ABC व पथ CBF बराबर हैं (क्योंकि AB = FB)। पर इसी तरह से पथ ADC व CDF पथ भी आपस में बराबर हैं। अब यदि CBF लम्बाई की तुलना CDF की लम्बाई से करें, तो जाहिर है कि CBF छोटा है CDF से (CBF सरल रेखा है)। अतः पथ ABC छोटा है पथ ADC से और यही सिद्ध करना था।

यदि परावर्तन कोण आपतन कोण के बराबर हो, पथ ABC पथ से ADC हमेशा छोटा होगा, चाहे बिन्दु D कहीं भी क्यों न चुना जाए। इसका अर्थ यह है कि स्रोत, दर्पण और आँख के बीच सभी सम्भव पथों में से प्रकाश उसी को चुनता है, जो सबसे छोटा हो और जिस पर सबसे शीघ्र पहुँचा जा सके। इस तथ्य की ओर अलेक्जेण्डर हिरोन ने भी ध्यान दिलाया था। वे दूसरी शती के विख्यात ग्रीक यंत्रकार थे।

चित्र 101. परावर्तन कोण बराबर है आपतन कोण के।

चित्र 102. परावर्तन करते हुए प्रकाश लघुत्तम पथ चुनता है।

कौवे की उड़ान

उपरोक्त स्थिति में जिस प्रकार लघुत्तम पथ ढूँढा गया था, इसका ज्ञान अनेक पहेलियों को हल करने में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए एक पहेलीनुमा प्रश्न पेश है :

चित्र 103. कौवे की समस्या : बाड़े तक का लघुत्तम पथ
ढूँढना।

चित्र 104. कौवे की समस्या का हल।

पेड़ की डाल पर एक कौवा बैठा है। नीचे जमीन पर दाने बिखरे हैं। कौवा जमीन की ओर उड़ता है, अनाज का एक दाना उठाता है और सामने के बाड़े पर बैठ जाता है। प्रश्न हैः किस जगह वह दाना उठाए, ताकि उसका पथ सबसे छोटा हो (चित्र 103)।

प्रश्न ठीक वैसा ही है, जैसा हम अभी-अभी देख चुके हैं। इसलिए सही उत्तर देना कठिन नहीं है : कौवे को प्रकाश की किरण का अनुसरण करना चाहिए, अर्थात इसप्रकार उड़ना चाहिए कि कोण । बराबर हो कोण 2 के (चित्र 104)। हम देख चुके हैं कि इस तरह से पथ लघुत्तम होगा।

सुबिंबदर्शी : कल और आज

सुबिंबदर्शी (केलाइडोस्कोप) नामक खिलौने को सभी जानते होंगे : चन्द रंगीन काँच के टुकड़े दो या तीन समतल दर्पण में प्रतिबिंबित होते रहते हैं और सुबिंबदर्शी (या सुबिंबक) के हिलने-डुलने के साथ बदलते रहने वाली

नई-नई अनूठी खूबसूरत आकृतियाँ बनाते रहते हैं। सुबिंबक को सभी जानते हैं, पर किसी को यह सन्देह नहीं होता होगा कि उसकी मदद से कितनी बड़ी संख्या में विभिन्न आकृतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। माना कि आपके सुबिंबक में काँच के 20 टुकड़े हैं और नई-नई आकृतियाँ प्राप्त करने के लिए आप उसे हर मिनट दस बार घुमाते हैं। सारी समभ्व आकृतियों को देखने में आप कितना समय लगायेंगे?

चित्र 103. कौवे की समस्या : बाड़े तक का लघुत्तम पथ
ढूँढना।

चित्र 104. कौवे की समस्या का हल।

चित्र 105. सुबिंबदर्शी

प्रचण्ड से प्रचण्ड कल्पनाशक्ति भी इसका सही उत्तर नहीं दे सकती। सागर सूख जाएंगे और पर्वत घिस जाएंगे, पर सुबिंबक आपको नए-नए बेल-बूटे दिखाता रहेगा। आपके नन्हें से खिलौने के भीतर बेल-बूटों की संख्या इतनी विशाल है कि सबको बनाने में कम से कम पाँच खरब वर्ष लग जाएंगे। सभी बेल-बूटों को देखने के लिए आपको पाँच खरब से अधिक वर्ष तक सुबिंबक को घूमाना पड़ेगा।

सुबिंबक की अनन्त नई-नवेली आकृतियों के साथ सज्जाकारों की दिलचस्पी सदा से रही है, क्योंकि इस उपकरण की सृजनशीलता के साथ उनकी कल्पना शक्ति होड़ नहीं लग सकती। सुबिंबक इतने मोहक बेल-बूटे रचता है कि सजावट में उनका उपयोग हमेशा इष्ट है।

पर आम आदमी में सुबिंबक वैसी रुचि आजकल नहीं उत्पन्न करता, जैसी सौ साल पहले करता था। उस समय वह नया-नया निकला था और उसका यशगान गद्य और पद्य दोनों ही में हुआ करता था।

सुबिंबक का आविष्कार इंग्लैण्ड में 1816 ई. में हुआ था। एक डेढ़ साल बाद ही वह रूस में पहुँचा, जहाँ प्रशंसा के साथ इसका स्वागत हुआ।

नीति कथा के लेखक अ. इज्माइलव ने सुबिंबक के बारे में "वफादार" नामक पत्रिका (जुलाई, 1818) में लिखा :

"सुबिंबदर्शी के बारे में विज्ञापन पढ़ने के बाद मैंने इस अनूठे उपकरण को मँगाया -

देखा - और क्या झिलमिलाया आँखों में?

नानाकृतियों और नैन-सितारों में

नीलम, लाल, पुखराज,

पन्ना औ मुक्ताराज,

और जंबुक, और जवाहरात,

मूँगे-मोती - दिखे हठात!

हिला दूँ बस अपना हाथ -

और नया रूप मेरे साथ!

सुबिंबदर्शी के दृश्यों का वर्णन पद्य क्या, गद्य में भी नहीं किया जा सकता है। हाथ के थोड़ा भी हिलने से आकृतियाँ बदल जाती हैं और उनमें से कोई भी एक दूसरे से मिलती-जुलती नहीं होतीं। और कितने खूबसूरत बेल-बूट बनते हैं। काश कि उन्हें कपड़ों पर बनाया जा सकता। पर इतने चमकीले धागे कहाँ से आएँगे। बोरियत से बचने के लिए कहीं अच्छा काम सुबिंबदर्शी के चित्रों को देखना है।

कहते हैं कि सुबिंबदर्शी XVII वीं शती में ही ज्ञात था। कुछ ही समय पहले इंग्लैण्ड में उसका पुनर्निर्माण हुआ है और वहाँ से दो महीने पहले उसे फ्रांस में लाया गया। वहाँ एक एक धनवान व्यक्ति 20000 फ्रांक के मूल्य का सुबिंबदर्शी बनवा रहा है। उसने कांच की जगह हीरे-जवाहरात उपयोग करने की आज्ञा दी है।"

आगे लेखक सुबिंबक के बारे में एक दिलचस्प चुटकुला सुनाता है और निबन्ध का अन्त करता है एक विषादपूर्ण तथ्य से, जो कृषि-दासता और पिछड़ेपन के युग के लिए सामान्य बात थी :

"अपने उत्कृष्ट प्राकाशिकीय उपकरणों के लिए विख्यात दरबारी भौतिकविद् व यंत्रकार रोसपीनी आजकल सुबिंबदर्शी बनाते हैं और 20 रूबल में बेचते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खरीदने वाले बहुत मिल जाएंगे। दुख और आश्चर्य की बात है कि भौतिकी और रसायन पर व्याख्यान देने से कर्त्तव्यनिष्ठ रोसपीनी महाशय को कोई लाभ नहीं हुआ; इन विषयों में किसी को कोई दिलचस्पी नहीं हैं।"

सुबिंबक लम्बी अवधि तक मात्र एक मनोरंजक खिलौना ही बना रहा। सिर्फ आधुनिक समय में बेल-बूटे बनाने के लिए उसका लाभदायक उपयोग हो रहा है। एक उपकरण बनाया गया है, जिसकी मदद से सुबिंबक के बेल-बूटों की फोटोग्राफी की जा सकती है और इस प्रकार सजावट के लिए सभी सम्भव आकृतियाँ यंत्रवत ज्ञात की जा सकती हैं।

माया-महल और मरीचिकाएँ

यदि आप को काँच के टुकड़े जैसा छोटा बनाकर सुबिंबक में डाल दिया जाए, तो आपको कैसा लगेगा? ऐसा प्रयोग सचमुच में किया जा सकता है। सन् 1900 ई. में संगठित पेरिस की विश्व प्रदर्शनी में आए लोगों को इसका सुअवसर मिला था। वहाँ एक तथाकथित "माया महल" था, जो कि काफी लोकप्रिय हुआ। यह और कुछ नहीं, एक विशाल व अचल सुबिंबक था। आप एक षटकोण कक्ष की कल्पना करें, जिसकी दीवारें आदर्श पॉलिश वाले बड़े-बड़े दर्पणों से बनी हैं। इस दर्पण-कक्ष के कोणों पर खम्भों आदि के रूप में वास्तु सज्जा लगे हैं, जो छत में बनी नक्काशी से मेल खाते होते हैं। ऐसे कक्ष में दर्शक अनन्त कक्षों, स्तम्भों व अपने हमशक्लों की भीड़ के बीच अपने को पाकर हतप्रभ सा हो जाता है। वे उसे चारों ओर से घेर लेते हैं, और जहाँ तक वह देख सकता है, सिर्फ कक्ष, स्तम्भ और हमशक्ल ही नजर आते हैं।

चित्र 106 में क्षैतिज लकीरों से भरे कक्ष एक बार परावर्तन से प्राप्त होते हैं; दुबारा परावर्तित होने पर खड़ी रेखाओं से भरे 12 कक्ष प्राप्त होते हैं। आड़ी रेखाओं से भरे 18 कक्ष तीसरे परावर्तन के परिणाम हैं। कक्षों की संख्या हर नए परावर्तन के साथ बढ़ती जाती है और कितने परावर्तन सम्भव हैं, यह दर्पणों के पॉलिश और उनकी समान्तरता की कोटि पर निर्भर करता है। व्यवहारतः वहाँ बारहवें परावर्तन से प्राप्त प्रतिबिंब दिख रहे थे, अर्थात नज़रों के सामने 468 कक्ष थे।

चित्र 106. केन्द्रीय कक्ष की दीवारों के तीन बार परावर्तित
होने से 36 कक्ष मिलते हैं।

इस चमत्कार का रहस्य कोई भी समझ सकता हैं, यदि वह प्रकाश परावर्तन के नियमों को जानता है। यहाँ तीन जोड़े समान्तर दर्पण हैं और दस जोड़े दर्पण कोनों में लगे हैं, फिर इतने अधिक प्रतिबिंब क्यों न मिलें। पेरिस-प्रदर्शनी के तथाकथित "माया महल" में एक और रोचक प्रकाशिकीय प्रभाव था। इस महल के निर्माताओं ने असंख्य छवियों के साथ-साथ पूरे दृश्य के क्षणिक परिवर्तन का कमाल भी दिखाने की कोशिश की थी। ऐसा लगता था, जैसे वे दर्शकों को एक विशाल सुबिंबक में खड़ा कर के भीतर से ही नए-नए दृश्य दिखा रहे हैं।

चित्र 106. केन्द्रीय कक्ष की दीवारों के तीन बार परावर्तित होने से 36 कक्ष मिलते हैं।

चित्र 107 व 108. "माया महल" का रहस्य

"माया महल" में दृश्य परिवर्तन का इंतजाम इस प्रकार किया गया था : दीवार कोनों से कुछ दूर पर ऊँचाई के सहारे कटे हुए थे। ऐसा कहा जा सकता है कि दीवार कुछ छोटे थे और कोने उनसे मिलकर पुरा कक्ष बनाते थे। ये कोने अपनी धुरी पर घूम सकते थे; उनके घूमने से दूसरी तरफ से छिपा कोना कक्ष के भीतर आ जाता था। चित्र 107से स्पष्ट है कि कोना 1, 2 व 3 के अनुरूप तीन दृश्य दिखाए जा सकते थे। अब मान लीजिए कि 1 से इंगित सभी कोने उष्णकटिबंध के जंगलों का दृश्य दिखाते हैं, 2 द्वारा इंगित कोने अरबी सज्जा और 3 द्वारा इंगित कोने भारतीय मन्दिर के दृश्य दिखाते हैं। छिपी युक्ति द्वारा सभी कोने एकबारगी से घूमते हैं और जंगल का दृश्य अरबी सज्जा या मन्दिर के दृश्य में परिणत हो जाता है। पूरे "जादू" का रहस्य प्रकाश-किरणों के परावर्तन जैसी सरल भौतिक संवृत्ति पर आधारित है।

प्रकाश का अपवर्तन क्यों और कैसे होता है?

एक माध्यम से दूसरे में प्रविष्ट होते क्षण प्रकाश के पथ की दिशा बदल जाती है। इस अपवर्तन को कई लोग प्रकृति का नखरा मानते हैं। यह समझ में नहीं आता कि नए माध्यम में प्रकाश अपनी पुरानी दिशा क्यों नहीं आता कि नए माध्यम में प्रकाश अपनी पुरानी दिशा क्यों नहीं बनाए रख सकता, वह नई दिशा में क्यों चल पड़ता है। जो ऐसा सोचते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि प्रकाश-किरण के साथ वही होता है, जो कन्धे-से-कन्धा मिलाकर बढ़ते हुए सैनिकों की पंक्ति के साथ होता है, जब वे किसी सुगम स्थल से निकल कर दुर्गम स्थल की सीमा में प्रविष्ट होते हैं। पिछली शती के विख्यात खगोलशास्त्री व भौतिकविद जोन गेरशेल इसके बारे में लिखते हैं :

"मान लें कि एक टुकड़ी के सैनिक कन्धेसे कन्धा मिलाकर एक पंक्ति में चल रहे हैं। स्थान एक सरल रेखा द्वारा विभक्त है, जिसके एक ओर जमीन समतल है व चलने के लिए सुविधाजनक है, पर दूसरी ओर जमीन ऊबड़-खाबड़ है; उस पर चलना उतना सरल नहीं है। यह भी मान लें कि पंक्ति इस विभाजक रेखा के साथ कोई कोण बनाते हुए चल रही है। अतः सभी सैनिक एक साथ नहीं, बल्कि एक-एक करके इस समी को पार करेंगे। इस स्थिति में हर सैनिक सीमा-रेखा को पार करने के बाद अपनी गति धीमी करेगा, क्योंकि यहाँ जमीन पहले जेसी सुगम नहीं है। वह उन सैनिकों की बराबरी में नहीं चल पाएगा, जो अभी अच्छी जमीन पर ही चल रहे हैं। हर सैनिक इस कठिनाई को महसूस करेगा। अतः पंक्ति का वह भाग, जो दुर्गम जमीन पर आ चुका है, बाकी बचे भाग के साथ उस बिन्दु पर अधिक कोण बनाएगा, जिस पर वह सीमा को काटती है (यदि सैनिक पहले की तरह ही कन्धे से कन्धा मिलाए पंक्तिबद्ध बढ़ रहे हैं, तीतर-बीतर नहीं हो जाते)। कन्धे से कन्धा मिलाए रहने की आवश्यकता के कारण हर सैनिक को नई जमीन पर नई पंक्ति के लम्ब चलना होगा। इस तरह, सीमा पार का पथ नई पंक्ति पर लम्ब होगा और सीमा के पहले वाले पथ के साथ उसका अनुपात कैसा ही होगा, जैसा उनके नए वेग का पुराने वेग के साथ होगा।"

छोटे पैमाने पर आप प्रकाश-अपवर्तन की इस दृश्य-सुगम उपमा को टेबुल पर कार्यान्वित कर सकते हैं। टेबुल के आधे हिस्से पर कोई मोटी दरी बिछा दीजिए। (चित्र 109)। टेबुल को थोड़ा झुकाव देकर उस पर चक्कों के एक जोड़े को लुढ़कने दीजिए, जोएक ही अक्ष के साथ जड़े हुए हैं (यह आप किसी टूटे खिलौने, जैसे इंजर से ले सकते हैं)। यदि चक्कों की गति की दिशा दरी की किनारी के लम्ब है, तो चक्कों के पथ का अपवर्तन नहीं होगा। यहाँ आपको एक प्रकाशिकीय नियम का उदाहरण मिलता है : माध्यमों के विभाजक तल के लम्ब चलती हुई किरण अपवर्तित नहीं होती।

यदि चक्कों की गति की दिशा दरी की किनारी के साथ कोई झुका कोण बनाती है, तो इस किनारी पर, अर्थात भिन्न वेग प्रदान करने वाल दो माध्यमों की विभाजक रेखा पर चक्कों का पथ मुड़ जाएगा।

आसानी से देख सकते हैं कि अधिक वेग वाले भाग (खाली टेबुल) से कम वेग वाले भाग (दरी बिछे स्थान) में प्रविष्ट होने पर पथ ("किरण") आपतन बिन्दु से विभाजक रेखा पर खींचे गए लम्ब की ओर झुकता है। विपरीत स्थिति में वह इस लम्ब से दूर हो जाता है।

चित्र 109. अपवर्तन का कारण सम समझाने वाला एक प्रयोग।

इससे एक और महत्वपूर्ण बात ज्ञात होती है : अपवर्तन का कारण दोनों माध्यमों में वेगों की भिन्नता है। अपवर्तन की सारी संवृत्तियां के मूल में यही तथ्य है। वेगों में अन्तर जितना ही अधिक होगा, अपवर्तन भी उतना ही तथ्य है। तथाकथित "अपवर्तन की सारी संवृत्तियों के मूल में यही तथ्य है। वेगों में अन्तर जितना ही अधिक होगा, अपवर्तन भी उतना ही अधिक होगा। तथाकथित "अपवर्तन गुणांक" और कुद नहीं, इन वेगों का अनुपात भर है। जब आप पढ़ते हैं कि हवा से पानी में संक्रमण के लिए अपवर्तन गुणांक 4/3 है, तो इसके साथ ही आप यह भी जान लेते हैं कि प्रकाश पानी की अपेक्षा हवा में 1.3 गुना अधिक तेज चलता है। इन बातों से प्रकाश-प्रसरण की एक और ज्ञातव्य विशेषता सम्बन्धित है। यदि परावर्तन की स्थिति में प्रकाश लघुत्तम पथ चुनता है, तो अपवर्तन की स्थिति में वह क्षिप्रतम पथ चुनता है : "लक्ष्य" तक किरण को कोई भी दूसरी दिशा उतनी शीघ्रता (क्षिप्रता) से नहीं पहुँचा सकती, जितनी शीघ्रता से उसे यह टूटा (मुड़ा) हुआ पथ पहुँचा सकता है।

छोटे पथ की अपेक्षा बड़ा पथ कब जल्द पार होता है?

क्या टेढ़ा पथ सचमुच में सीधे पथ की अपेक्षा जल्द लक्ष्य तक पहुँचा सकता है? हाँ, यदि पथ के भिन्न टुकड़ों पर क्षिप्रता भिन्न हो। स्मरा करें कि यदि गाँव दो रेल्वे स्टेशनों के बीच में कहीं स्थित हो, तो वहाँ के निवासी क्या करते हैं। दूर वाले स्टेशन तक जाने के लिए पहले घोड़े पर नजदीक वाले स्टेशन की ओर जाते हैं और फिर ट्रेन में बैठ कर लक्ष्य तक पहुँचते हैं। लघुतम पथ तो यही होता, यदि वे घोड़े पर बैठकर सीधे दूर वाले स्टेशन की ओर चल देते। पर वे पसन्द करते हैं घोड़े और ट्रेन वाला पथ, क्योंकि इस पर वे जल्द पहुँचते हैं।

चित्र 110. घुडुसवार की समस्या : A से C तक का क्षिप्रतम पथ ढूँढना।

चित्र 111. घुड़सवार की समस्या का हल। क्षिप्रतम पथ AMC है।

चित्र 112. ज्या क्या है? m और त्रिज्या का अनुपात कोण 1 की ज्या है, n और त्रिज्या का अनुपात - कोण की ज्या है।

एक और उदाहरण की ओर थोड़ा ध्यान दें। घुड़सवार को बिन्दु A से सेनापति के शिविर C तक पत्र के साथ पहुँचता है। बीच में बलुवाही व मैदानी जमीन हैं, जिनकी आपसी सीमा रेखा EF है। मैदान की तुलना में बालू पर घोड़ा दुगुना धीमे चलता है। घुड़सवार को कौन सा पथ चुनना चाहिए कि वह शिविर तक जल्द से जल्द पहुँच सके? प्रथम दृष्टि में प्रतीत होता है कि क्षिप्रतम पथ सरल रेखा AC होगी। पर यह बिल्कुल गलत है और मैं नहीं सोचता कि ऐसा कोई घुड़सवार होगा, जो इस पथ को चुनेगा। बालू पर की धीमी गति उसके मन में सही विचार उत्पन्न करेगा कि बलुवाही भूभाग को वह कम झुके पथ द्वारा पार करे। बेशक, इसके कारण मैदानी भूभाग पर उसका पथ अधिक लम्बा हो जाएगा, पर यहाँ घोड़ा दुगुनी तेज चाल से चलता है। अतः यहाँ कुल मिलाकर घुड़सवार फायदे में ही रहेगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि घुड़सवार का पथ दोनों प्रकार के भूभागों की सीमा पर अपवर्तित हो जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अपवर्तन ऐसा होना चाहिए कि उसका मैदानी पथ विभाजक रेखा EF के लम्ब के साथ अधिक बड़ा कोण बनाए बनिस्बत कि बलुवाही पथ के।

ज्यामिति और विशेषकर पाइथागोरस प्रमेय से परिचित पाठक देख सकते हैं कि ऋतु पथ AC क्षिप्रतम नहीं है; दी गई परिस्थितियों में लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक क्षिप्र पथ भंजित रेखा AEC है (चित्र 111)।

चित्र 110 में दिखाया गया है कि बलुवाही जमीन की चौड़ाई 2 किमी है, मैदानी स्थल की -3 किमी तथा दूरी BC = 7km है। अतः पाइथागोरस साध्य के अनुसार चौड़ाई AC (चित्र 111) बराहर है। $\sqrt{5^2+7^2} = \sqrt{74} =$ 8.60 km बालू पर इस रेखाखण्ड का भाग AN पूरी लम्बाई AC का $2/5$ A अंश अर्थात् 3.44 किमी है। चूँकि मैदान की अपेक्षा बालू पर घोड़ा दुगुना धीरे चलता है, इसलिए बालू पर 3.44 किमी. की दूरी समय के लिहाज से 6.88 किमी. लम्बे मैदानी पथ के बराबर होगी। अतः 8.60 किमी लम्बा मिला जुला पथ AC समय के दृष्टिकोण से समतुल्य है 12.04 किमी लम्बे मैदानी पथ के।

इसी विधि से भंजित पथ AEC को भी मैदान पथ में व्यक्त करें। खण्ड AE = 2 km है और वह 4 किमी मैदानी पथ के समतुल्य होगा। खण्ड $EC = \sqrt{3^2+7^2} = \sqrt{58}$ = 7.61 km है। अतः भंजित पथ AEC समतुल्य है 4 + 7.61 = 11.61km के।

इस प्रकार, 'छोटा' व सीधा पथ मैदानी जमीन पर 12.04 किमी चलने के बराबर है। "अधिक लम्बा" पथ, जैसा कि आप देखते हैं, 12.04 - 11.61 = 0.43 या लगभग आधे किलोमीटर की छूट देता है।

पर अभी तक हमने क्षिप्रतम पथ नहीं दिखाया। नियमानुसार क्षिप्रतम पथ वह होगा, जिसमें (यहाँ हमें त्रिकोणमिति की सहायता लेनी पड़ेगी) कोण C की ज्या व कोण C की ज्या का अनुपात बराबर होगा मैदान व बालू पर की क्षिप्रताओं के अनुपात अर्थात 2:1 के। दूसरे शब्दों में, दिशा इस प्रकार चुननी चाहिए कि sin a से sin b दुगुना हो। इसके लिए भूपट्टियों की विभाजक रेखा को ऐसे बिन्दु M पर पार करनी चाहिए, जो E से एक किलोमीटर दूर स्थित हो, ताकि

$$Sinb = \frac{6}{\sqrt{3^2 + 6^2}} = Sina = \frac{1}{\sqrt{1+2^2}}$$

अनुपात $\frac{Sinb}{Sina} = \frac{6}{\sqrt{45}} : \frac{1}{\sqrt{5}} = \frac{6}{3\sqrt{5}} = \frac{1}{\sqrt{5}} = 2$ दोनों क्षिप्रताओं का अनुपात है।

और कितने लम्बे मैदानी पथ के समतुल्य होगा यह पथ? कलन करें : AM = $\sqrt{2^2 + 1^2}$ और यह 4.47 किमी लम्बे मैदानी पथ के समतुल्य होगा। MC = $\sqrt{45}$ = 6.71 km पूरे पथ की दूरी 4.47 + 6.71 = 11.18 अर्थात् ऋजु पथ से 860 मी. कम होगा (हमें ज्ञात है कि AC = 12.04 km किमी के समतुल्य है)।

आप देख रहे हैं कि दी हुई स्थितियों में घुमावदार पथ चुनने से कितना लाभ है। प्रकाश किरणें इसी प्रकार से क्षिप्रतम पथ चुनती हैं, क्योंकि प्रकाश के अपवर्तन का नियम समस्या के गणितीय हल की शर्तों को ठीक-ठीक पूरा करता है : अपवर्तन कोण की ज्या व आपतन कोण की ज्या का अनुपात बराबर होता है नए व पुराने माध्यमों में प्रकाश-वेगों के अनुपात के। माध्यमोंका अपवर्तन सूचकांक (अपवर्तनांक) भी इसी अनुपात के बराबर होता है।

परावर्तन व अपवर्तन दोनों के गुणों को एक नियम में बाँधने के लिए हम कह सकते हैं कि प्रकाश हर स्थिति में क्षिप्रतम पथ पर गमन करता है, अर्थात वह उस नियम का पालन करता है, जिसे भौतिकविद् "क्षिप्रतम आगमन का नियम" (फेर्मा नियम) नाम से पुकारते हैं। यदि माध्यम सर्वत्र समरूप नहीं है और उसका अपवर्तक गुण एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु की ओर धीरे-धीरे बदलता है (जैसे पृथ्वी के वातावरण में), तो क्षिप्रतम आगमन का नियम इस स्थिति में भी पालित होता है। पृथ्वी के वातावरण में प्रविष्ट होकर प्रकाश की किरणें हल्की सी वक्रित हो जाती हैं। इस घटना को खगोलशास्त्रियों की भाषा में "वातावरणीय अपवर्तन" कहते हैं और इसका कारण भी उक्त नियम ही है। वातावरण में, जो नीचे की ओर क्रमशः अधिक घना होता जाता है, प्रकाश-किरण इस प्रकार नमती (झुकती) है कि उसकी अवतलता जमीन की ओर बनती है। इसके कारण किरण ऊपरी परतों में देर तक चलती रहती है। वहाँ उसकी गति वातावरण द्वारा इतनी क्षीण नहीं होती, जितनी नीचे। निचली परतों में वह कम समय तक चलती है, क्योंकि उसमें चलना कठिन होता है। मिला-जुला कर वह लक्ष्य तक शीघ्र ही पहुँचती है, बनिस्बत कि यदि वह सरल रेखा पर चलती।

क्षिप्रतम आगमन का सिद्धान्त (फेर्मा का नियम) सिर्फ प्रकाशीय संवृत्तियों (घटनाओं) के लिए ही सत्य नहीं है : इसका अनुसरण ध्वनि भी करती है। यह नियम सभी तरंगी गतियों के लिए सामान्य है, चाहे तरंगों की प्रकृति कुछ भी क्यों न हो।

पाठक निश्चय ही तरंगी गतियों के इस गुण का कारण जानना चाहते होंगे। इस प्रश्न पर विख्यात आधुनिक भौतिकविद् श्रेडिंगर के शब्द प्रकाश डाल सकते है।[35]

उन्होंने भी आगे बढ़ती फौज का उदाहरण लिया है, पर वे ऐसे माध्यम में प्रकाश की गति को समझाना चाहते हैं, जिसका घनत्व क्रमानुगत रूप से धीरे-धीरे बदलता है।

"मान लें, - वे लिखते हैं, - पंक्ति को बिल्कुल सीधी बनाए रखने के लिए सैनिकों को एक लम्बा डंडा दिया गया है। सभी सैनिक उसे हाथों से पकड़े हुए कन्धे से कन्धा मिलाए चल रहे हैं। हुक्म मिलता है : यथाकथित तेज दौड़ों! यदि जमीन की विशेषताएं धीरे-धीरे बदलती हैं, तो पहले दाएँ भाग के (उदाहरणार्थ) और फिर बायीं ओर के सैनिक अधिक तेजी से भागने लगेंगे और पंक्ति की गतिदिशा स्वयं मुड़ जाएगी। यहाँ हम पाएंगे कि तय किया गया पथ सीधा नहीं, बल्कि वक्र है। कारण आसानी से समझा जा सकता है : दी गई विशेषताओं वाले भूभाग पर यह पथ लक्ष्य तक पहुँचने के लिए समय के लिहाज से लघुतम (अर्थात क्षिप्रतम) होगा।"

नए रौबिंसन

आप बेशक जानते होंगे कि जूल वेर्न के उपन्यास "रहस्मय द्वीप" के पात्रों ने निर्जन स्थल में कैसे बिना माचिस या चकमक के आग प्राप्त की थी। रौबिंसन की सहायता आकाश से गिरी बिजली ने की थी, जिससे एक वृक्ष जलने लगा था। जूल वेर्न के नए रौबिंसनों को विद्वान इंजीनियर के प्रत्युत्पन्नमतित्व व भौतिकीय नियमों के ठोस ज्ञान

---

[35] नोबेल प्राइज प्राप्त करते वक्त (1933 ई. में) यह उन्होंने अपने प्रतिवेदन में पढ़ा था।

ने मदद की। आपको याद होगा कि भोले-भाले नाविक पेनक्रोफ ने जब शिकार से लौटकर इंजीनियर व जर्नलिस्ट को लहकते अलाव के पास बैठे देखा, तो कितना आश्चर्यचकित हुआ।

"किसने आग जलाई? - नाविक ने पूछा।

- सूरज ने, - स्पिलेट ने जवाब दिया।
- जर्नलिस्ट मजाक नहीं कर रहा था। आग सचमुच में सूरज ने दी थी, जिससे नाविक इतना खुश हो रहा था। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था और वह आश्चर्य में इतना डूबा हुआ था कि इंजीनियर से कुद पूछ भी न सका।
- मतलब कि आपके पास जलाने वाला काँच था? - हरबर्ट ने इंजीनियर से पूछा।
- और उसने दिखाया कि कैसे लेंस बनाया जा सकता है। उसके पास दो साधारण शीशे थे, जिसे उसने अपनी और स्पिलेट की घड़ी से निकाल रखा था। उसने उनकी किनारी सटाकर उसमें पानी भर लिया और किनारी गीली मिट्टी से चिपका दी। यह आग जलाने वाले असली लेंस की बराबरी कर सकता था। इसी की सहायता से इंजीनियर ने सूर्य-किरणों को सूखी घास पर संकेन्द्रित करके आग जलाई थी।"

शायद पाठक के मन में यह प्रश्न उठे कि घड़ी के शीशों के बीच पानी भरने की क्या आवश्यकता थी। क्या हवा से भरा दो पार्श्वों से उत्तल बर्तन किरणों को संकेन्द्रित नहीं कर सकता?

घड़ी का काँच बाहरी व भीतरी दो समान्तर (समकेन्द्रीय) वक्र तलों द्वारा घिरा होता है। भौतिकी के अनुसार ऐसे तलों द्वारा घिरे माध्यम में प्रविष्ट होते वक्त किरणें अपनी दिशा नहीं बदलतीं। दूसरा शीशा भी ऐसा ही है और उसे पार करते वक्त भी वे अपनी दिशा में परिवर्तन नहीं लातीं। यही कारण है कि वे नाभि पर इकत्रित नहीं होतीं। एक बिन्दु पर किरणों को संकेन्द्रित करने के लिए शीशों के बीच के स्थान में कोई ऐसा पारदर्शक द्रव्य होना चाहिए, जो किरणों को हवा की तुलना में अधिक अपवर्तित कर सके। जूल वेर्न के उपन्यास का इंजीनियर यही करता है।

आग जलाने वाले लेंस का काम शीशे की साधारण सुराही भी कर सकती है, यदि उसका आकार गोल हो। इस बात को लोग प्राचीनकाल से ही जानते हैं। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया था कि इससे सुराही का पानी गर्म नहीं होता, ठण्डा ही रहता है। कभी-कभी ऐसा होता था कि खुली खिड़की पर रखी पानी की ऐसी सुराही पर्दे में आग लगा देती थी, मेज की सतह को झुलसा देती थी, आदि। प्राचीन दवाफरोश अपनी दुकान सजाने के लिए गोल बोतलों में रंगीन पानी रखा करते थे और यह परम्परा कभी-कभी बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं का कारण बन जाया करती थी; विशेषकर उस स्थिति में, जब सुराही के निकट कोई ज्वलनशील वस्तु रखी होती थी।

पानी भरे गोल फ्लास्क की सहायता से घड़ी की काँच में रखा पानी खौलाया जा सकता है। इसके लिए 12 सेमी व्यास वाला छोटा फ्लास्क भी काफी रहेगा। यदि फ्लास्क का व्यास 15 सेमी हो, तो नाभि (फोकस) पर तापक्रम 120^0C तक उठ सकता है। फ्लास्क की सहायता से सिगरेट सुलगाना उतना ही सरल है, जितना काँच के लेंस से, जिसके बारे में लोमोनोसोव ने "काँच के लाभ" नामक कविता में लिखा था :

प्रमथ्यु से क्या कम हैं हम,

काँच से सूर्य की अग्नी

धरती पर लाते हैं।

गपोड़-शंखों को गाली दे हम,

निष्पाप स्वर्गानल से

बीड़ी सुलगाते हैं।

यहाँ यह बता देना आवश्यक होगा कि पानी वाले लेंस काँच के लेंसों की तुलना में काफी क्षीण होते हैं, क्योंकि, प्रथमतः पानी में काफी कम अपवर्तन होता है और, दूसरे पानी गर्मी देने वाली अवरक्त किरणों को बहुत बड़ी मात्रा में सोख लेता है।

आश्चर्य की बात है कि शीशे के लेंस का अग्निदायक गुण प्राचीन यूनानवासियों को चश्मों व दूरबीनों की खोज के हजारों साल पहले से ही ज्ञात था। उदाहरणार्थ, लेंस का नाम अरिस्तोफानके विख्यात हास्यक (कामेडी) "बादल" में आता है। सुकरात पूछता है स्त्रोप्तियाद से :

"यदि कोई तुम पर पाँच तालांतोन के कर्ज का दावा करें और तुम्हारे खिलाफ अर्जी लिखे, तो उसे कैसे नष्ट करोगे?

स्त्रेप्तियाद - हाँ, मिल गया, अर्जी नष्ट करने का तरीका; और वह भी ऐसा कि तुम प्रशंसा किए बगैर नहीं रहोगे! दवाफरोशों के यहाँ तुमने एक सुन्दर पारदर्शक पत्थर तो देखा ही होगा; उससे आग जलाते हैं।

सुकरात - आग जलाने वाला शीशा?

स्त्रेप्तियाद - बिल्कुल।

सुकरात - फिर?

स्त्रेप्तियाद - जब तक वकील लिखेगा, मैं उसके पीछे से अर्जी पर सूरज की किरणें भेज कर अक्षरों को पिघला दूँगा... "

स्पष्टता के लिए याद दिला दूँ कि अरिस्तोफान के समय यूनानवासी मोम की परत चढ़े तख्तों पर लिखा करते थे। लिखावट धूप में सचमुच पिघल कर लुप्त हो सकती थी।

बर्फ से अलाव सुलगाना

दोनों पार्श्वों से उत्तल वीक्ष (लेंस) बर्फ से भी बनाया जा सकता है और इसलिए आप बर्फ से भी आग सुलगा सकते हैं; शर्त यही है कि वह पर्याप्त पारदर्शक हो। बर्फ धूप में पिघलेगी नहीं, क्योंकि किरणों को अपवर्तित करने से वह गर्म नहीं होती। पानी और बर्फ के अपवर्तन गुणांकों में अधिक का अन्तर नहीं है। इसलिए यदि पानी से आग जलाई जा सकती है, तो यही काम बर्फ से भी किया जा सकता है।

बर्फ का लेंस, अच्छा काम आया था जूल वेर्न लिखित "कैप्टेन हेटरास की यात्रा" की में। चकमक पत्थर खो चुका था और - 48^0C की भयानक ठण्ड में कहीं से आग मिलने की गुंजाईश नहीं थी। सोच में पड़े यात्रियों को इस स्थिति से मुक्ति दिलाई डा. क्लाबोनी ने :

"- यह दुर्भाग्य की बात है, - हेटरास ने कहा।

- हाँ, - डाक्टर ने छोटा सा उत्तर दिया।
- हमारे पास दूरबीन भी नहीं है कि उसका लेंस निकाल कर आग जलाएं।
- जानता हूँ, - डॉक्टर ने कहा, - और बहुत ही अफसोस की बात है। यहाँ सूरज कितना तेज चमक रहा है; सूखी घास बहुत जल्द सुलग जाती।
- अब करना क्या है, भालू के कच्चे माँस से भूख मिटानी होगी, - हेटरास ने कहा।
- हाँ, - डाक्टर कुछ सोचते हुए बड़बड़ाया, - जब कोई उपाय नहीं रहेगा। पर क्यों न...
- आपने कुछ सोच निकाला ग्या है? - हेटरास ने जिज्ञासा की।
- मेरे मन में एक विचार आया है...
- विचार? -कर्णधार ने खुश होते हुए कहा। यदि आपके दिमाग में विचार आया है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं रह जातीं; हम बच गए।
- लेकिन यह कहाँ तक सम्भव है, कुछ कहा नहीं जा सकता, - डॉक्टर ने हिचकिचाते हुए कहा।
- क्या सोचा है आपने? हेटरास ने पूछा।
- हम लेंस बना सकते हैं।

- कैसे? -कर्णधार ने उत्सुकता दिखाई।
- बर्फ के टुकड़े से।
- क्या आप सचमुच सोच रहे हैं कि ...
- और नहीं तो क्या! आखिर सूर्य-किरणों को एक बिन्दु पर जमा ही तो करना है; और इसके लिए बर्फ अच्छे से अच्छे शीशे की बराबरी कर सकता है। लेकिन मैं मीठे पानी से जमे बर्फ को अधिक पसन्द करूँगा, क्योंकि वह अधिक कड़ा व पारदर्शक होता है।"
- वहाँ देखिए! यदि मैं गलत नहीं हूँ, तो हमें इसी की जरूरत है। बर्फ के उस टीले का रंग देखिए; वह मीठे पानी से जमा है।
- आपका कहना सही है। कुल्हाड़ी लें और चलें।
- तीनों मिल कर उक्त टीले की ओर चल पड़े। बर्फ सचमुच मीठे पानी का था।
- चित्र 113. "डाक्टर ने सूखी घास पर सूर्य-किरणों को सन्केन्द्रित किया।"

डाक्टर ने करीब एक फीट व्यास वाले बर्फ के टुकड़े को काटने के लिए कहा। इसके बाद उसने कुल्हाड़ी से उसे समतल सा किया; फिर चाकू से काट-छाँट की, लेंस के आकार में तराशा और हथेली से रगड़-रगड़ कर उसे चिकना कर लिया। लेंस तैयार था और अच्छे से अच्छे काँच के लेंस से टक्कर ले सकता था। सूरज पर्याप्त तेजी से चमक रहा था। डाक्टर ने लेंस को किरणों के पथ पर रखा और सूखी घास पर उन्हें सन्केन्द्रित किया। घास कुछ ही क्षणों में जल उठी।"

चित्र 114. बर्फ का लेंस बनाने के लिए कटोरी।

जूल वेर्न का किस्सा इतना काल्पनिक नहीं है : बर्फ के लेंस से आग जलाने का प्रयोग पहली बार इंग्लैंड में किया गया था। 1763 ई. में वहाँ बर्फ के काफी बड़े लेंस से एक पेड़ में आग लगाई गई थी। तब से यह प्रयोग कई बार सफलतापूर्वक दुहराया जा चुका है। यह बात दूसरी है कि बर्फ का पारदर्शक लेंस कुल्हाड़ी, चाकू और खाली हाथ (-48^0C की भयानक ठण्ड में!) जैसे औजारों से बनाना कठिन है। पर बर्फ का लेंस बनाने के लिए सरल विधि भी है : अनुरूप कटोरी में पानी ढालकर फ्रीज में जमा लीजिए और फिर बर्तन को हल्का सा गर्म करके तैयार लेंस निकाल लीजिए।

सूर्य-किरणों से सहायता

ऐसे लेंस का उपयोग करते वक्त यह न भूलें कि खिड़की के शीशे से आने वाली धूप में आप कुछ भी जला नहीं पाएंगें। शीशा सूर्य-किरणों की ऊर्जा को काफी बड़ी मात्रा में अवशोषित कर लेता है, और बची-खुची ऊर्जा इतनी पर्याप्त नहीं होती कि किसी चीज को जलाने लायक गर्मी दे सके। बेहतर है खुले स्थान पर किसी ऐसे दिन प्रयोग करें, जब वातावरण का तापक्रम शून्यसे नीचे हो।

एक और प्रयोग करें, जो सर्दियों में सरलापूर्वक सम्पन्न हो सकता है। धूप के दिन बाहर पड़ी बर्फ पर एक नाप के दो कपड़े के टुकड़े - एक काला और एक सफेद - रख दें। एक घण्टे बाद आप देखेंगे कि काला कपड़ा बर्फ में कुछ नीचे धँस गया है, पर सफेद उसी ऊँचाई पर है। कारण ढूँढ़ना कठिन नहीं है : काले कपड़े के नीचे बर्फ जल्द पिघलता है, क्योंकि काले धागे सूर्य-किरणों के बड़े भाग को सोख लेते हैं। सफेद कपड़ा उल्टा उन्हें प्रकीर्णित कर देता है और इसलिए काले कपड़े की तुलना में बहुत कम गर्म होता है।

यह शिक्षाप्रद प्रयोग पहली बार संयुक्त राज्य के स्वतंत्रता सेनानी बेंजामीन फ्रैंकलिन ने किया था। उनका नाम तड़ित-चालकके आविष्कार के लिए अमर है। अपने प्रयोग का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं : "एक बार मैं दर्जी की दूकान से कपड़ों के कई टुकड़ों ले आया। हर टुकड़े का रंग अलग-अलग था : काला, गाढा नीला, हल्का नीला, हरा, गुलाबी, सफेद। और भी कई दूसरे रंग थे; उनके आभ भी अलग-अलग थे। एक दिन, जब काफी अच्छी धूप उगी हुई थी, मैंने इन टुकड़ों को बाहर बर्फ पर बिछा दिया। काला कपड़ा कुछ ही घण्टों बाद इतना गर्म हो गया कि बिल्कुल ही बर्फ में धँस गया। सूर्य की किरणें अब उस तक नहीं पहुँच रही थीं। गाढ़ा नीला कपड़ा भी उतना ही

धँसा हुआ था, जितना काला। हल्का नीला काफी कम धँसा था; अन्य रंग के कपड़े उतना ही कम धँसे थे, जितना हल्का उनका आभ था। सफेद टुकड़ा बिल्कुल नहीं धँसा था।"

"सिद्धान्त बेकार होता, यदि उससे कोई व्यावहारिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। - आगे वे कहते हैं। - क्या हम इस प्रयोग से यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि गर्म जलवायु वाले देश में, जहाँ सूरज काफी तेज चमकता है, सफेद की तुलना में काला कपड़ा अधिक गर्मी देता है, अतः कम फायदेमंद है? यदि शरीर की उन गतियों पर ध्यान दिया जाए, जो शरीर को खुद-ब-खुद गर्मी देती हैं, तो काला कपड़ा और भी बेकार है; वह शरीर को अतिरिक्त गर्मी देता है। क्या वहाँ स्त्री-पुरूषों की टोपियाँ सफेद नहीं होनी चाहिए, जो लू लगाने वाली गर्मी से बचाव करती हैं?... काले रंग से पुती दीवारें दिन भर में इतनी गर्मी अवशोषित नहीं कर सकतीं कि रात को भी कुछ हद तक गर्म बनी रहें और फल आदि को जमने से बचा सकें? क्या ध्यान से प्रेक्षण करने वाला व्यक्ति अनेक दूसरी छोटी-बड़ी बातों से दूसरे प्रकार के लाभ नहीं प्राप्त कर सकता?"

ये निष्कर्ष कैसे हैं और कहाँ तक उनका व्यावहारिक उपयोग सम्भव है - यह जर्मनी के जहाज "हौंस्स" से पता चलता है, जो 1903 में दक्षिणी ध्रुव के अभियान पर निकला था। जहाज जमे बर्फ के बीच फँस गया था और उसे मुक्त करने के सारे तरीके नाकामयाब साबित हो रहे थे। बारूद से लेकर आरी तकका उपयोग किया जा चुका था, कुछेक सौ घन मीटर बर्फ तोड़ी जा चुकी थी, पर जहाज जहाँ का तहाँ फँसा रहा। अन्त में सूर्य-किरणों का उपयोग करने का निश्चय किया गया। साजे और कोयले को बर्फ पर फैलाकर एक पट्टी बनाई गई, जो करीब 2 किमी लम्बी और दसके मीटर चौड़ी थी। वह जहाज को निकटत सुरक्षित स्थान तक ले जाने वाली थी। ध्रुव पर उस समय गर्मी का मौसम था। दिन लम्बे और साफ थे और सूर्य-किरणें वह करने में सफल हो गयीं, जो डिनामाइट भी नहीं कर सका था। पट्टी के नीचे बर्फ पिघल कर चूर हो गई और जहाज उसके शिंकजे से निकल गया।

मरीचिकाओं के बारे में नई-पुरानी बातें

साधारण मरीचिका का भौतिक कारा सबको पता होगा। मरूभूमि के तप्त बलुवाही तल में दर्पणी गुण इसलिए आ जाते हैं, क्योंकि उसके निकट स्थित हवा की परत का घनत्व कम होता है। दूरस्थ वस्तु से नत प्रकाश किरणें हवा की इस परत तक आने के बाद अपना पथ पर इस प्रकार वक्रित कर देती हैं कि आगे चलकर वे प्रेक्षक की आँखों तक पहुँच जाती हैं। लगता है जैसे वे बहुत बड़ा आपतन कोण बनाती हुई बालू से परवर्तित हो रही हों। इसलिए प्रेक्षक को भ्रम होता है कि मरूभूमि में सब तरफ पानी ही पानी है, जो तटवर्ती वस्तुओं को अपनी सतह पर प्रतिबिंबित करता है (चित्र 115)।

अधिक सही होगा कि यह कहना कि हवा की तप्त परत किरणों को दर्पण की तरह नहीं, जलीय तल की तरह परावर्तित करती है, यदि जलीय तल को गहराई में से देखा जाए। यहाँ साधारण परावर्तन नहीं होता; यहाँ वह होता है, जिसे भौतिकविद्, "आन्तरिक परावर्तन" कहते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि प्रकाश की किरण हवा की परत को अत्यन्त न्यून झुकाव पर बेधे। यह झुकाव इससे कहीं कम होना चाहिए, जितना सरलीकृत चित्र 115 में दिखाया गया है। यदि ऐसा नहीं होगा, तो किरणों का आपतन "चरम कोण" को पार नहीं कर सकेगा और इसके बिना आन्तरिक परावर्तन नहीं हो सकता।

चित्र 115. मरूभूमि में मरीचिकाकी उत्पत्ति। पाठ्य पुस्तकों में अक्सर इस चित्र को दिखाया जाता है। इसमें प्रकाश किरणों के पथ को अतिशयोक्ति के साथ झुकाकर दिखाया गया है।

चित्र 116. कोलतार वाली सड़क पर मरीचिका।

चलते-चलते इस सिद्धान्त के एक और पक्ष पर गौर कर लें। उपरोक्त व्याख्या के अनुसार अधिक घनत्व वाली परतों को ऊपर होनी चाहिए और कम घनत्व वालीको - नीचे। पर हम जानते हैं कि घनी व भारी हवा नीचे की ओर प्रवृत्त होती है और वहाँ से हल्की गैसों को ऊपर विस्थापित कर देती है। फिर मरीचिका के लिए आवश्यक स्थिति - कि घनी हवा की परतें ऊपर रहें और विरल हवा की नीचे- कैसे प्राप्त हो सकती हैं?

बात इतनी सी है कि परतों की आवश्यक स्थिति निश्चल हवा में नहीं, बल्कि निरन्तर गतिमान हवा में प्राप्त होती है। जमीन द्वारा तप्त हवा जमीन पर ही नहीं पड़ी रहती; वह निरन्तर उठती है और उसका स्थान दूसरी कम गर्म हवा लेती रहती है। इस निरन्तर विस्थापन के कारण तप्त रेत के ऊपर विरल हवा की एक परत सदा विद्यमान

रहती है। यह सही हैकि यह परत नई-नई हवा से बनती रहत है, पर किरणों के प्रसरण पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

जिस मरीचिका के बारे में हम बात कर रहे हैं, वह प्राचीन काल से ही ज्ञात है। आधुनिक मौसम विज्ञान में इसे "निम्न" मरीचिका कहते हैं ("उच्च" मरीचिका तब उत्पन्न होती है, जब प्रकाश किरणें वातावरण के ऊपरी भागों में स्थित विरल वायु परतों से परावर्तित होती हैं)। अधिकांश लोगों का विश्वास है कि मरीचिका का यह क्लासिकल रूप सिर्फ दक्षिणी देशों की मरूभूमियों में ही दृष्टिगोचर होता है। पर यह गलत है। "निम्न" मरीचिका हमारे अक्षांशों पर भी दिखती है। हमारे यहाँ ये संवृत्तियाँ गर्मियों में विशेष कर कोलतार की सड़कों पर दिखती हैं, जो काली होने के कारण धूप में बहुत अधिक गर्म हो जाती हैं। इस स्थिति में सड़ककी रूखड़ी सतह दूर से ऐसी लगती हैं, मानों उस पर पानी फैला हो और उसमें दूरस्थ वस्तुएँ प्रतिबिंबित हो रही हों। ऐसी मरीचिकाओं को बनाने वाला किरण-पथ चित्र 116 में दिखाया गया है। यदि ध्यान से ढूँढा, जाए, तो ऐसी संवृत्तियाँ कहीं अधिक बार अवलोकित हो सकती हैं।

एक दूसरे प्रकार की मरीचिका है - पार्श्विक मरीचिका, जिसकी विद्यमानता का शायद बहुतों को आभास भी नहीं है। यह गर्म उदग्र दीवार से परावर्तन है। इस प्रकार के दृश्य का वर्णन एक फ्रांसीसी लेखक नेकिया है। किले के नजदीक आने पर उसने देखा कि कंक्रीट की दीवार हठात दर्पण की तरह चमकदार हो गई और उसमें परिवेश का कुछ भाग प्रतिबिंबित होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी ने रूखड़ी गन्दी सतह को अचानक पॉलिश करके चमका दिया हो। उनके दर्पणी गुण का रहस्य यही था कि दीवारें गर्म धूप में काफी तप्त हो गई थीं। चित्र 117 में किले की दीवारों की स्थितियाँ (F व F') तथा प्रेक्षण स्थल (A व A') दिखाए गए हैं। पता चला कि मरीचिका हर बार दिखती थी, जब दीवारें सूर्य-किरणों से पर्याप्त गर्म हो जाती थीं। इस संवृत्ति का फोटो भी खींचा जा चुका है।

चित्र 118 में किले की दीवार F दिखाई गई है, जो पहले रूखड़ी व चमकहीन थी (बाएँ) और बाद में दर्पण सी चमकदार हो गई (दायँ)। ये चित्र बिन्दु A' से लिए गए हैं। बाएँ चित्र में साधारण चमकहीन कंक्रीट की दीवार है, जिसमें पास खड़े दो सैनिकों की आकृतियाँ प्रतिबिंबित नहीं हो रही हैं। दाएँ वही दीवार हैं, जिसमें दर्पण का काफी कुछ गुण आ चुका है और उसमें निकटवर्ती सैनिक का सममित प्रतिबिंब दिख रहा है। स्पष्ट है कि यहाँ प्रतिबिंब दीवार की सतह द्वारा नहीं बन रहा है, वह दीवार के सहारे खड़ी गर्म हवा की परत द्वारा बन रहा है।

प्रचण्ड गर्मी के दिनों में बड़े विशाल भवनों की सूर्य से तप्त दीवारों पर ध्यान देना चाहिए; हो सकता है कि मरीचिका दिख जाए। यदि ध्यानपूर्वक खोज व प्रेक्षण किया जाए, तो मरीचिका के बनने वाली स्थितियों की संख्या बढ़ सकती है।

चित्र 117. किले का आरेख, जिसमें मरीचिका दृष्टिगोचर होती है। बिन्दु A से देखने पर दीवार F दर्पण की तहर दिखती है और बिन्दु A से दीवार F।

चित्र 118. गन्दी सी रूखड़ी दीवार (बाएँ) हठात दर्पण की तरह पॉलिश की हुई चमकदार दिखने लगती है (दायँ)।

"आपने सागर पार क्षितिज पर अस्त होते हुए सूर्य का कभी अवलोकन किया है? कभी आपने उस क्षण तक रूककर देखने की कोशिश की है, जब सूर्य के गोले की ऊपरी किनारी क्षितिज को स्पर्श करने लगती है और फिर लुप्त हो जाती है? शायद हाँ। पर क्या आपने इस घटना का अवलोकन किया है, जब देदीप्यमान प्रकाश स्रोत अपनी अन्तिम किरण छोड़ता है और उस समय आकाश बिल्कुल साफ व पारदर्शक होता है? शायद नहीं। कभी ऐसा अवसर मिले; तो छोड़ें नहीं : आपकी आँखों पर लाल किरणों का प्रहार नहीं होगा; आप हरा रंग देखेंगे, दीव्य हरा रंग, जैसा दुनिया में एक भी चित्रकार अपनी कूची से नहीं रच सकता; स्वयं प्रकृति भी इसे पुनर्जन्म नहीं दे सकती, न तो बहुआभ वनस्पति जगत में, न स्वच्छतम सागर जल के रंगों में।"

जूल वेर्न के उपन्यास "हरी किरण" की नायिका किसी अंग्रेजी समाचर-पत्र में ऐसा एक निबन्ध पढ़कर अपनी आँखों से हरी किरण देखने को लालायित हो उठती है और इसी एकमात्र अभिलाषा से प्रेरित होकर लम्बी समुद्रयात्रा पर निकल पड़ती है। उपन्यासकार के अनुसार यह स्कॉटलैण्ड वाला इस प्राकृतिक दृश्य को ढूँढ़ने में असफल रही, पर इस दृश्य की वास्तविकता व विद्यमानता पर कोई शक नहीं किया जा सकता। हरी किरण कोई किस्से की बात

नहीं है, पर उसके साथ अनेक किस्से जुड़े हैं। यह ऐसा दृश्य है, जिसे देखकर कोई भी प्रकृति प्रेमी मोहित हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन उसे ढूँढने और देख सकने के लिए काफी धीरज चाहिए।

हरी किरण क्यों प्रकट होती है।

कारण स्पष्ट हो जाएगा, यदि आप स्मरण करेंकि काँच के प्रिज्म से देखने पर वस्तुएँ कैसी नजर आती हैं। एक प्रयोग करें : कागज पर पन्ना दीवार पर लटका कर उसे प्रिज्म से देखें; प्रिज्म का चौड़ा पार्श्व (आधार) नीचे व क्षैतिज होना चाहिए। पहली बात आप देखेंगे कि कागज अपनी वास्तविक स्थिति से कुछ ऊपर उठ आया है और, दूसरे, ऊपर बैगनी-नीली पट्टी दिखेगी और नीचे पीली-लाल। कागज का ऊपर उठना प्रकाश के अपवर्तन पर निर्भर करता है और वर्ण-पट्टियों का बनना शीशे के प्रकीर्णक गुण, अर्थात् भिन्न रंगों की किरणों को भिन्न प्रकार से अपवर्तित करने के गुण पर निर्भर करता है। बैंगनी और नीला वर्ण सबसे अधिक अपवर्तित होते हैं, इसलिए बैंगनी-नीली पट्टी ऊपर नजर आती हैं; सबसे कम अपवर्तन होता है लाल वर्ण का, अतः लाल पट्टी सबसे नीचे बनती है।

आगे कही गई बातों को अच्छी तरह से समझने के लिए वर्ण-पट्टियों की उत्पत्ति का कारण जानना आवश्यक है। प्रिज्म कागज के श्वेत वर्ण को सभी स्पेक्ट्रमी वर्णों में विघटित कर देता है। इसके कारण कागज के एक नहीं, अनेक चित्र प्राप्त होते हैं, और हर चित्र किसी एक वर्ण का होता है। पर ये चित्र वर्णों की अपवर्तनशीलता के अनुसार एक के ऊपर एक चढ़े होते हैं। एक पर एक चढ़े रंगीन चित्रों के सम्मिलित प्रभाव के कारण वे सफेद दिखते हैं। पर ऊपर और नीचे इन्द्रधनुषी पट्टी दिखती है, क्योंकि कागज के विभिन्न चित्र पूरी तरह से एक पर एक नहीं चढ़े होते। हर चित्र दूसरे से थोड़ा ऊपर या नीचे खिसका हुआ होता है और इसलिए हर चित्र की ऊपरी व निचली किनारी दूसरे चित्रों के रंगों के प्रभाव से मुक्त होती है। यह प्रयोग विख्यात जर्मन कवि गेटे ने भी किया था, पर वे इसका अर्थ नहीं समझ सके। फलस्वरूप उन्होंने न्यूटन के वर्ण-सिद्धान्त को गलत करार कर दिया और वे अपना एक अलग "वर्ण सिद्धान्त" बनाने में लग गए, जो लगभग पूरी तरह गलत-सलत धारणाओं पर आधारित था। आशा है कि हमारे पाठक महान कवि की भूल नहीं दुहराएंगे और प्रिज्म से सभी वस्तुओं को पूरी तरह से दूसरे रंगों में रंगने की माँग नहीं करेंगे।

पृथ्वी का वातावरण हमारी आँखों के लिए एक विराट प्रिज्म ही है, जिसका आधार नीचे की ओर है। क्षितिज पर स्थित सूर्य को हम गैस के बने प्रिज्म से देखते हैं। सूर्य की ऊपरी किनारी पर नीली व हरी पट्टी होती है और निचली किनारी पर लाल-पीली। लेकिन उदय व अस्त होने के क्षण, जब सूर्य लगभग पूरी तरह क्षितिज के नीचे छिपा होता है, ऊपरी किनारी पर नीली पट्टी दिख सकती है। वह द्विवर्णी होती है - नीचे से नीले व हरे वर्णों के मिलने के कारण आसमानी और ऊपर से सिर्फ नीली होती है। जब क्षितिज के निकट हवा बिल्कुल शुद्ध व पारदर्शक होती है, हम नीली पट्टी ("नीला रंग") देखते हैं। पर अक्सर नीला रंग वातावरण द्वारा प्रकीर्णित हो जाता है और सिर्फ हरी पट्टी बच जाती है। यही "हरी किरण" का अवतरण कहलाता है। यदि हवा साफ व पारदर्शक नहीं हो, तो हरे व नीले दोनों ही वर्णों के किरणों का प्रकीर्णन हो जाता है और कोई भी पट्टी नहीं दिखती; सूरज अरूणाभ गोले के रूप में अस्त हो जाता है।

पुल्कोव्स्की के खगोलशास्त्री गे. आ. तीखोव ने "हरी किरण पर जो विशेष अन्वेषण किया है, उसके आधार पर हरी किरण दिखेगी या नहीं, इसके लक्षण बताए जा सकते हैं। यदि अस्त होते समय सूर्य का रंग लाल है और उसे नंगी आँखों से सरलतापूर्वक देखा जा सकता है, तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि हरी किरण नहीं दिखेगी।" कारण स्पष्ट है : सूर्य का लाल रंग वातावरण द्वारा नीली व हरी किरणों, अर्थात् ऊपरी पट्टियों के तीव्र प्रकीर्णन का द्योतक है। "इसके विपरीत, - खगोलशास्त्री लिखता है, -यदि सूरज का साधारण श्वेता भी पीला रंग लगभग ज्यों का त्यों रह जाता है और अस्त होते वक्त भी उसकी रोशनी काफी तेज रहती है (अर्थात वातावरण उसके प्रकाश को बहुत कम मात्रा में अवशोषित करता है - या. पे.), तो हरी किरण के दिखने की कहीं अधिक सम्भावना है। पर यहाँ महत्वपूर्ण बात यह भी है कि क्षितिज रेखा स्पष्ट हो; जंगल, मकान आदि के कारण कटी-छँटी न हो। ऐसा उत्तम स्थान सिर्फ सागर तल पर ही हो सकता है। यही कारण है कि नाविक लोग हरी किरण की संवृत्ति से अधिक परिचित होते हैं।"

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि "हरी किरण" देखने के लिए सूर्य का अवलोकन उस समय करना चाहिए, जब वह उदय या अस्त हो रहा हो। दक्षिणी देशों में क्षितिज के पास आकाश अधिक साफ व पारदर्शक होता है। इसलिए वहाँ, "हरी किरणों के दिखने की सम्भावना अधिक होती है। पर हमारे यहाँ भी इसकी कम सम्भावना नहीं है। जो लोग सोचते हैं कि हमारे यहाँ ऐसी संवृत्तियों का दर्शन अत्यन्त विरल है, वे शायद जूल वेर्न के उपन्यास से काफी

प्रभावित हुए हैं। यदि धैर्यपूर्वक प्रयत्न करेंगे, तो यह सुन्दर दृश्य कभी न कभी दिख ही जाएगा। कभी-कभी दूरबीन द्वारा हरी किरण दिख जाया करती है। एजेशिया के दो खगोलशास्त्री इस दृश्य का निम्न वर्णन देते हैं :

"...सूर्यास्त के ठीक एक मिनट पहले जब गोले का पर्याप्त बड़ा भाग दिखता रहात है, उसकी स्पष्ट, पर लहराती आगे-पीछे फिसलती गोल सीमा-रेखा एक हरी पट्टी द्वारा घिरी होती है। यह पट्टी नंगी आँखोंसे तब तक नहीं दिखती, जब तक कि सूर्य पूरी तरह छिप नहीं जाता। सूरज के पूर्णतया" छिपने पर ही वह दिखती है। यह कहना अधिक सही होगा कि वह सूरज के पूर्णतया छिपने के क्षण ही दिखती है। यदि बहुत शक्तिशाली दूरबीन से देखा जाए (जो दूरस्थ वस्तुओं को सौ गुनी बड़ी दिखा सकती हो), तो पूरी घटना को सविस्तार देखा जा सकता है : हरी पट्टी 10 मिनट पहले से दिखनी शुरू हो जा सकती है। वह सूरज की ऊपरी सीमा से शुरू होती है। सूर्य मण्डल की निचली किनारी के पास लाल पट्टी होतीहै। हरी पट्टी की चौड़ाई आरम्भ में काफी कम होती है (आँखों पर मात्र कुछेक सेकेण्ड का कोण बनाती है।), पर सूरज के डूबने के साथ-साथ बढ़तीजाती है। कभी-कभी उसकी चौड़ाई आँख पर आधे मिनट तक का कोण बना लेती है।

हरी पट्टी की ऊपरी किनारी पर हरे रंग के उभरे हुए भाग भी होते हैं, जो सूर्य के अस्त होने के साथ-साथ स्वयं भी नीचे फिसलते रहते हैं। कभी-कभी वे टूटकर पट्टी से अलग हो जाते हैं और कुछ सेकेण्डों तक स्वतंत्र चमकते रहते हैं; फिर लुप्त हो जाते हैं" (चित्र 119)।

पर बहुधा यह दृश्य एक-दो सेकेण्ड तक ही दिखता है। कुछ विशेष स्थितियों में यह अवधि काफी लम्बी हो जा सकती है। एक बार तो "हरी किरण" पाँच मिनट तक दिखती रही थी! सूरज सुदूर पर्वत के पार डूब रहा था। तेज चलते पथिक को लग रहा था कि सूरज अपने हरे तेज में पहाड़ की ढलान पर फिसल रहा है (चित्र 119)।

सूर्योदय के समय भी, जब उसकी ऊपरी किनारी थोड़ी-थोड़ी दिखने लगती है, "हरी किरण" का दृश्य कम रोचक नहीं होता। यह इस धारणा का खण्डन करता है कि हरी किरण मात्र प्रकाशिकीय भ्रम है, जो डूबते सूर्य की चमक से थकी आँखों को दिख जाती है।

सूर्य कोई एकमात्र नक्षत्र नहीं है, जो "हरी किरणें" भेजता है। अस्त होते शूक्र ग्रह से भी उत्पन्न "हरी किरणें" अवलोकित हुई हैं।

अध्याय 9

दृष्टि-शक्ति : एक आँख की और दो आँखों की

जब फोटोग्राफी नहीं थी

फोटोग्राफी हमारे दैनिक जीवन में बिल्कुल घुल-मिल गया है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि हमारे हाल के पूर्वज कैसे इसके बिना काम चलाते थे। सौ साल पहले इंग्लैण्ड के सरकारी विभागों में, लोगों का चित्र कैसे लिया जाता था, इसका एक रोचक वर्णन डिकेंस के "पिकविक क्लब की डायरी" में मिलता है। दृश्य कर्ज नहीं चुका सकने वाले लोगों के लिए बने जेल का है, जहाँ पिकविक को लाते हैं।

पिकविक से बैठने के लिए कहा जाता है, ताकि उसका चित्र उतारा जा सके।

"-मेरा चित्र उतारेंगे! - खुश होकर मि. पिकविक ने कहा।

- आपका रूप और रंग, सर, - मोटे जेलर ने कहा। आपको मालूम देर नहीं लगेगी कि आपका चित्र तैयार हो जाएगा। आराम से बैठिए, सर; अपना ही समझिए।
- आमंत्रण मानकर मि. पिकविक बैठ गए। सैमुएल (उनके नौकर) ने उनके कान में फुसफुसा कर कहा कि यहाँ "चित्र उतारने" का मतलब कुछ और ही है :
- इसका मतलब है, सर, कि जेलर कुछ समय तक गौर से आपकी शक्ल देखेंगे, ताकि मिलने आए लोगों में आपकी पहचान हो सके।
- "चित्र उतारने" का कार्य शुरू हो गया। एक तरफ मोटा जेलर बेशर्मी से आँखें फाड़े मि. पिकविक को देख रहा था और दूसरी तरफ उसका साथी एक नए कैदी पर टकटकी लगाए बैठा था। एक तीसरे सज्जन ठीक मि. पिकविक की नाक के पास तैनात होकर उनकी शक्ल से उतार-चढ़ाव व दूसरी विशेषताओं का अध्ययन करने लगे।

अन्त में चित्र उतर गया और मि. पिकविक को कैद खाने में बन्द कर दिया गया।"

यह यादाश्त में चित्र उतारने की विधि थी। इसके और पहले लोग सिर्फ हुलिया याद रखते थे। पुश्किन के "बरिस गदुनोव" में ग्रिगोरी अतरेपेव की हुलिया सरकारी कागजातों में इसप्रकार बयानथी : "कद का छोटा, छाती चौड़ी, एक हाथ दूसरे से कुछ छोटा, आँखें नीली, बाल भूरे-लाल, गाल व ललाट पर मस्से।" आज के जमाने में एक फोटोचित्र से ही काम चल जाता है।

बहुतों को नहीं आता

फोटोग्राफी हमारे यहाँ पिछली शती की चौथी दशाब्दी में आयी। उस समय इसे डागेरोटाइप कहते थे।[36] उसे कागज पर नहीं धातुई पत्तरों पर उतारा जाता था। इस प्रकाश-लेखन में एक असुविधा थी - फोटो खिंचाने वाले को दसियों मिनटों तक बैठकर पोज देना पड़ता था।

"मेरे दादा,' - लेनिनग्राद के एक भौतिकविद्, प्रो. वेइनवेर्ग याद करते हैं, - सिर्फ एक फोटो प्राप्त करने के लिए, जिसकी दूसरी प्रति भी नहीं बन सकती थी, कैमरे के सामने 40 मिनट तक बैठे रहे!"

फिर भी, बिना चित्रकार के चित्र प्राप्त करने का विचार इतना नया था कि लोग इसके आदी नहीं हो पा रहे थे। 1845 ई. की एक रूसी पत्रिका में इससे सम्बन्धित एक रोचक घटना छपी थी।

---

[36] इस विधि के आविष्कारक डागेर थे।

"बहुत से लोग अभी भी विश्वास करना नहीं चाहते कि डागेरोटाइप स्वयं तस्वीर उतारता है। एक बड़े आदमी अपनी चित्र बनवाने आए। मालिक (अर्थात फोटोग्राफर। - या. पे.) ने उसे बैठा दिया, लेंस ठीक किया, पीछे से तख्ता फिट कर दिया, घड़ी देखी और बाहर निकल गया। जब तक मालिक कमरे में था, ये बड़े आदमी बिना हिलेडुले अपनी जगह पर बैठे रहे; पर जैसे ही वह कमरे से निकला, तस्वीर खिंचाने वाले साहब ने बैठे रहने की कोई जरूरत नहीं समझी।

वे खड़े हो गए, तम्बाकू सूंघी, और कैमरे के चारों ओर घूम-घूम कर उसका निरीक्षण करने लगे; शीशे में झाँकने के बाद बड़बड़ाए- अजीब चीज है; और फिर कमरे में चहलकदमी करने लगे।

मालिक जब लौटा, आश्चर्यचकित रह गया। उसने पूछा :

- आप क्या कर रहे हैं? मैंने जो आपसे कहा था कि बिना हिले-डुले बैठे रहिए!
- बैठा तो था ही; पर आप चले गए, फिर मैं बैठकर क्या करता?
- मेरे जाने के बाद ही तो बैठना था।
- पर यह तो बेकार का बैठना होता!"

पाठकों को शायद लगता हो कि अब हम फोटोग्राफी से सम्बन्धित ऐसी गलतफहमियों से बहुत दूर हो चुके हैं। पर हमारे समय में भी अधिकांश लोग फोटोग्राफी से इतना परिचित नहीं हैं और बहुत कम ही लोग ऐसे हैं, जिन्हें फोटो-चित्र देखना आता हो। आप सोचते होंगे कि इसमें आने न आने का क्या सवाल है : हाथ में तस्वीर ली और देख ली। पर काम इतना सीधा नहीं है। प्रकाश-लेखन से प्राप्त चित्र ऐसी चीज है, जो हमारे दैनिक जीवन में बिल्कुल घुल-मिल गई है, फिर भी हम इसे अच्छी तरह नहीं जानते। अधिकतर फोटोग्राफर भी (शौकिए और पेशेवर) फोटो-चित्रों को वैसे बिल्कुल नहीं देखते, जैसे देखना चाहिए। फोटोग्राफी की कला के जन्मे करीब सौ साल हो गए हैं, फिर भी बहुतसे लोग नहीं जानते कि इसके चित्रों को कैसे देखना चाहिए।

फोटो-चित्र देखने की कला

बनावट के अनुसार फोटो-कैमरा एक बहुत बड़ी आँख के समान हैं : दूधिए शीशे पर बनने वाला चित्र लेंस और वस्तु के बीच की दूरी पर निर्भर करता है। फोटो-कैमरा कागज पर उस परिप्रेक्षी दृश्य को जड़ देता है, जो हमारी आँख को (ध्यान दें - सिर्फ एक आँख को!) दिखता, यदि उसे लेंस की जगह रख देते। इससे यह निष्कर्ष निकलता हैं कि यदि हम चित्र से वैसी ही अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं, जैसी वास्तविकता से मिलती हैं, तो हमें चाहिए -

(1) चित्र को सिर्फ एक आँख से देखना और

(2) चित्र को आँख से आवश्यक दूरी पर रखना।

समझना कठिन नहीं है, कि दोनों आँखों से देखने पर हमें सिर्फ समतली चित्र मिलेगा, जिसमें कोई परिप्रेक्षी (व्यौम) गहराई नहीं होती। यह हमारी दृष्टि के गुणों का आवश्यक परिणाम है। जब हम कोई ठोस वस्तु को देखते हैं, हमारे दृष्टि-पटलों पर दो असमान चित्र बनते हैंः बायीं आँख को बिल्कुल वही नहीं दिखता, जो दाईं आँख को दिखता है (चित्र 120)। चित्रों की यह असमानता ही वह मुख्य कारण है, जिसके चलते हमें वस्तुएँ ठोस लगती हैं, चौरस नहीं : हमारी चेतना दोनों ही संवेदनाओं को एक व्यौमधर्मी चित्र में मिला लेती है (व्यौमदर्शी की बनावट इसी पर आधारित है)। यदि हमारे सामने कोई चौरस समतली वस्तु (जैसे दीवार) होती, तो दूसरी बात होती। दोनों आँखों को बिल्कुल समान संवेदनाएं मिलतीं; इस समानता के कारण ही हमारी चेतना वस्तु को चौरस रूप में देखती है।

अब स्पष्ट हो गया कि दोनों आँखों से फोटो-चित्र देखने पर हम कैसी गलती करते हैं; दोनों आँखों से देखकर हम चेतना को दो समान संवेदना चित्र भेजते हैं, जिससे उसे विश्वास हो जाता है कि उसके सामने समतली दृश्य है, व्योम दृश्य नहीं। जो चित्र एक आँख के लिए बनाया गया है, उसे दोनों आँखों से देखने के कारण हमें वह नहीं मिलता, जो फोटोग्राफी दे सकती है। फोटोग्राफी द्वारा इतना अच्छा बनाया गया भ्रम हमारी छोटी सी गलती के कारण नष्ट हो जाता है।

फोटो किस दूरी से देखना चाहिए?

दूसरा नियम - कि चित्र को आँख से एक विशेष दूरी पर रखना चाहिए - भी इतना ही महत्वपूर्ण है। इसकी अवहेलना करने पर सही परिप्रेक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकता।

कितनी दूरी से देखना चाहिए?

चित्र 120. चेहरे से कुछ ही दूरी पर ऊँगली बाईं व दाईं आँखों से कैसी दिखती है।

दूरी इतनी होनी चाहिए कि चित्र आँख पर उतना ही बड़ा कोण बनाए, जितना बड़ा वस्तु लेंस पर बना रही थी (जब फोटो खींचा जा रहा था), या दूधिए शीशे पर का बिंब लेंस पर बना रहा था। (चित्र 121)।

इससे ज्ञात होता है कि चित्र को आँख से उस दूरी पर रखना चाहिए, जो लेंस से वस्तु की दूरी से उतनी ही गुनी कम है, जितनी गुनी वास्तविक वस्तु चित्र से बड़ी है। संक्षेप में, चित्र को आँख से उस दूरी पर रखना चाहिए, जो लगभग लेंस की नाभिकीय दूरी के बराबर है।

यदि आप यह ध्यान में रखें कि अधिकतर शौकिया फोटोग्राफी के कैमरों में नाभिकीय दूरी 12-15 सेमी. है[37], तो समझ जाएंगे कि हम कभी भी चित्रों को सही दूरी से नहीं देखते : साधारण दृष्टि वाले लोग 25 सेमी, तो समझ जाएंगे कि हम कभी भी चित्रों को सही दूरी से नहीं देखते : साधारण दृष्टि वाले लोग 25 सेमी से कम की दूरी पर नहीं देख पाते। दीवार पर लटका हुआ फोटो-चित्र और भी चौरस लगता है, क्योंकि वह और भी दूर से देखा जाता है।

चित्र 121. फोटो कैमरे में कोण 1 बराबर है कोण 2 के।

सिर्फ निकट दृष्टि वाले लोग, जो कम दूरी पर भी अच्छी तरहसे देख सकते हैं (और बच्चे भी, जो काफी निकट से देखने की क्षमता रखते हैं), उस प्रभाव का रसास्वादन कर सकते हैं, जो एक साधारण फोटो-चित्र दे सकता है। आँख से 12-15 सेमी की दूरी पर फोटो-चित्र रखकर वे चौरस दृश्य नहीं देखते, बल्कि व्यौम दृश्य देखते हैं, जिसमें निकटवर्ती वस्तु दूरस्थ वस्तुओं से स्पष्टतः अलग दिखती है, जैसा कि व्योमदर्शी में।

आशा है कि अब पाठक इस बात से सहमत हो जाएंगे कि अधिकांशतः हम सिर्फ अपनी अज्ञानता के कारण ही फोटो-चित्रों का पूरा आनन्द नहीं ले पाते और बेकार ही उन्हें निर्जान की संज्ञा देते हैं। बात सिर्फ इतनी है कि हम फोटो को आँखों से आवश्यक दूरी पर नहीं रखते और एक आँख के लिए बने चित्र को दो आँखों से देखते हैं।

विशालक शीशे का एक विचित्र गुण

हम समझा चुके हैं कि निकट दृष्टि के लोग साधारण फोटो-चित्रों को आरामसे व्यौम चित्रों के रूप में देख सकते हैं। पर साधारण दृष्टि वाले लोगों को क्या करना चाहिए? वे चित्र को आँखों के बहुत निकट नहीं ला सकते, पर उनकी मदद विशालक शीशा कर सकता है। दुगुनी परिवर्धक शक्ति वाले विशालक की सहायता से वे बिना आँखों पर जोर डाले निकट दृष्टि वाले आदमी की तरह देख सकते हैं कि कैसे फोटो-चित्र में उभार व गहराईयां उत्पन्न हो जाती हैं। इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि एक आँख से देखने और दोनों आँखों से देखने में काफी बड़ा अन्तर है। एक आँख से देखने पर साधारण फोटो-चित्र में व्यौम गुणों का दर्शन हो सकता है।

यह तथ्य सर्वविदित है, पर इसका कारण, जो हमारे लिए स्पष्ट हो चुका है, बहुत कम लोग जानते हैं।

"मनोरंजक भौतिकी" के एक समीक्षक ने मुझे लिखा था :

"पुस्तक के अगले प्रकाशन में निम्न प्रश्न पर ध्यान दें : साधारण विशालक में देखने पर फोटो-चित्र उभारयुक्त क्यों लगता है? मेरा ख्याल है कि व्यौमदर्शी की जटिल व्याख्याएं आलोचना के सामने नहीं टिकतीं। व्योमदर्शी में एक आँख से देखने की कोशिश करें: सिद्धान्तों के बावजूद भी व्यौम दृश्य नष्ट नहीं होता।"

पाठकों को तो स्पष्ट हो गया होगा कि व्योमदर्शी का सिद्धान्त इस तथ्य से गलत सिद्ध नहीं होता।

खिलौनों की दूकानों में बिकने वाले "पैनोरमा" इसी रोचक प्रभाव पर आधारित हैं। इन नन्हें उपकरणों में लोगों के ग्रुप या किसी भूदृश्य का चित्र विशालक शीशे द्वारा एक आँख से देखा जाता है। व्यौम दृश्य की प्राप्ति के लिए

[37] पुस्तक में उन्हीं कैमरों की बात चल रही है, जो इसकी रचना-काल में प्रचलित थे। - संपादक।

यह काफी है। इस भ्रम को और प्रभावी बनाने के लिए चित्र में से निकट की वस्तुओं को काटकर आँख के कुछ निकट रख देते हैं। हमारी आँखें निकटवर्ती वस्तुओं के व्यौम सम्बन्धों के प्रति बहुत संवेदनशील है, पर दूरस्थ वस्तुओं के प्रति नहीं।

चित्र 121. फोटो कैमरे में कोण 1 बराबर है कोण 2 के।

फोटो-चित्र का परिवर्धन

क्या ऐसा फोटो-चित्र नहीं बनाया जा सकता कि उसे साधारण आँख भी बिना किसी विशालक के सही-सही देख सकें? यह पूरी तरह से सम्भव है; इसके लिए कैमरों में अधिक नाभिक दूरियों वाले लेंसों का उपयोग करना चाहिए। पहले कही गई बातों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि 25-30 सेमी. लम्बी नाभिक दूरी वाले लेंस से प्राप्त फोटोचित्र को एक आँख द्वारा साधारण दूरी से देखा जा सकता है; वह उभारयुक्त नजर आएगा।

ऐसी तस्वीर भी बनाई जा सकती हैं, जिन्हें दोनों आँखों व बड़ी दूरियों से देखा जा सकता है। हम कह चुके हैं कि जब दोनों आँखें किसी वस्तु की दो बिल्कुल समान तस्वीरें देती हैं, तो हमारी चेतना उन्हें मिलाकर समतली चित्र में परिणत कर देती है। पर दूरी बढ़ने पर चेतना कीयह प्रवृत्ति क्षीण होती जाती है। 70 सेमी लम्बी नाभिक दूरी वाले लेंस से खींचे गए चित्र को व्यावहारिकतः दोनों आँखों से देखा जा सकता है; परिप्रेक्ष्य खराब नहीं होगा।

पर अधिक नाभिक दूरी वाले कैमरे-लेंसों का प्रयोग असुविधाजनक है, अतःएक दूसरी विधि बताई जा सकती हैः साधारण लेंस वाले कैमरे से तस्वीर खींचकर उसे डेवेलपर द्वारा परिवर्धित कर देते हैं। इससे वे दूरियाँ भी बढ़ जाती हैं, जिनसे चित्र को देखना चाहिए। यदि 15 सेमी नाभिक दूरी वाले लेंस से खींचे गए फोटो को 4 या 5 गुना बड़ा कर लिया जाए, तो इष्ट प्रभाव प्राप्त करने के लिए यह काफी रहेगाः इस चित्र को 60-75 सेमी की दूरीसे दोनों आँखों द्वारा देखा जा सकता है। चित्र में थोड़ी अस्पष्टता रहेगी, पर यह व्योमानुभूति में बाधक नहीं बनेगी। उभार व परिप्रेक्ष्य के दृष्टिकोण से चित्र बेशक फायदे में रहेगा।

सिनेमा हाल में उत्तम स्थान

सिनेमा के प्रेमियों ने ध्यान दिया होगा कि कुछ चित्रों में वस्तुओं की उभार व गहराई असाधारण रूप से स्पष्ट होती हैं। पृष्ठभूमि की तुलना में आगे की आकृतियाँ इतनी उत्तल होती हैं कि आप भूल जाते हैं कि पर्दे पर देख रहे हैं या वास्तविकता में।

चित्र के व्यौम गुण फिल्म की कोटि पर ही निर्भर नहीं करते, जैसा कि अक्सर सोचा जाता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि आप हौल में कहाँ बैठे हैं। चल-चित्र अत्यन्त लघु नाभिक-दूरी वाले कैमरों द्वारा लिए जाते और पर्दे पर अत्यधिक परिवर्धित रूप में दिखाए जाते हैं - करीब 100 गुना अधिक। अतः उन्हें दोनों आँखों व बड़ी दूरियों (10 cm x 100 = 10 m) से देखा जा सकता है। चित्र के व्यौम गुण अधिकतम स्पष्ट होते हैं, जब वह आँखों से इतना दूर होता है कि उसके द्वारा हमारी आँख पर बनाया गया कोण चित्र खींचते वक्त लेंस पर वस्तु द्वारा बनाए गए कोण के बराबर होता है। सिर्फ इस स्थिति में चित्र वास्तविक परिप्रेक्ष्य का भान कराता है।

लेकिन किस स्थान से चित्र हमारी आँखों पर ऐसा कोण बना सकेगा? प्रथमतः स्थान ऐसा होना चाहिए कि आप वहाँ से सीधा चित्र के बीच में देख सकें और, दूसरे, पर्दे से आपकी दूरी और चित्र की चौड़ाई का अनुपात लेंस की नाभिक दूरी व फिल्म-रील की चौड़ाई के अनुपात के बराबर हो।

चल-चित्रों के लिए उपयुक्त लेंसों की नाभिक दूरियाँ आवश्यकतानुसार 35 mm, 50 mm, 75mm 100 mm तक की होती हैं। फिल्म की मानक चौड़ाई 24 mm होती है। 75 mm की नाभिक दूरी के लिए (उदाहरणतः) हमें अनुपात मिलता हैः

इष्ट दूरी   फिल्म की चौड़ाई   75

चित्र की चौड़ाई   नाभिक दूरी   24 3.

अतः इस स्थिति में पर्दे पर चित्र की चौड़ाई से लगभग तिगुनी दूरी पर बैठना चाहिए। यदि पर्दे पर चित्र की चौड़ाई 6 डेग है, तो ऐसे चित्रों को देखने के लिए उत्तम स्थान पर्दे से 18 कदम की दूरी पर होगा।

चल-चित्रों को व्यौम-गुण प्रदान करने के लिए आविष्कृत विधियों की जाँच करते वक्त उपरोक्त बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए : ऐसा भी हो सकता है कि चित्र के व्योमदर्शीय गुणों का कारण अभी-अभी बताई गई बातें हों, जब कि आविष्कारक इसे अपनी विधि की देन मानता हो।

पत्रिकाओं में चित्र देखना

पुस्तकों व पत्रिकाओं में छपे फोटो चित्रों में वे ही गुण होते हैं, जो मूल फोटो चित्रों में : विशेष दूरी से एक आँख द्वारा देखने पर वे भी व्यौमधर्मी प्रतीत होते हैं। पर पत्रिकाओं के सारे चित्र एक ही लेंस द्वारा नहीं खींचे गए होते हैं, अतः आवश्यक दूरी टटोल-टटोल कर ज्ञात करना पड़ता है। इसके लिए एक आँख बन्द करके चित्र को हाथ में इस प्रकार रखें कि चित्र आँख से यथासम्भव महत्तम दूरी पर हो और उसका मध्य आँख की सीध में हो। अब चित्र को धीरे-धीरे आँखों के समीप लायें और साथ-साथ उसे देखते भी रहें। आप आसानी से जान लेंगे कि किस दूरी पर चित्र के व्यौमगुण अपनी पराकाष्ठ पर होते हैं।

बहुत से चित्र, जो साधारणतः अस्पष्ट तथा समतली लगते हैं, उपरोक्त विधि से देखने पर स्पष्ट व व्यौम-धर्मी दिखने लगते हैं। इस प्रकार से देखने पर पानी की चमक स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं तथा इससे दूसरे व्यौमदर्शीय प्रभाव भी नजर आने लगते हैं।

आश्चर्य होता है कि इतने साधारण तथ्यों को भी बहुत कम लोग जानते हैं कि जबकि यहाँ जो कुछ कहा गया है, कोई पचास एक साल पहले ही सरल व लोकप्रिय पुस्तकों में लिखा जा चुका है। "बुद्धि की कतृती के आधार" में उसके लेखक वी. कार्पेटर फोटो चित्र देखने की विधि के बारे में लिखते हैं :

"ध्यान देने योग्य है कि फोटो-चित्र देखने की इस विधि से (जो ऊपर बताई जा चुकी है)" वस्तु की सिर्फ व्यौम विशेषताएं ही स्पष्ट नही हो जातीं; दूसरी विशेषताएं भी सजीव हो उठती हैं और वास्तविकता का भ्रम बढ़ जाता है। फोटो-चित्रों का सबसे कमजोर पक्ष है स्थिर पानी दिखा सकना। यदि पानी का चित्र दोनों आँखों से देखा जाए, तो उसकी सतह मोम से घिसी हुई लगती है। पर यदि उसे एक आँख से देखा जाए, तो उसमें आश्चर्यजनक पारदर्शिता व गहराई नजर आने लगती है। यही बात अन्य परावर्तक सतहों के साथ भी है। दोनों आँखों से देखने पर आप भिन्न सतहों में फर्क नहीं ज्ञात कर सकते, पर एक आँख से देखकर आप काँसे और हाथी-दाँत की सतहें पहचान सकते हैं। तात्पर्य यह है कि वस्तु किस द्रव्य की बनी है, इसका निर्माण आप चित्र के आधार पर तभी कर सकते हैं, जब उसे एक आँख से देखें, न कि दोनों आँखों से।"

एक और परिस्थिति पर ध्यान दें। यदि फोटो-चित्रों को परिवर्धित करने पर वे सजीव हो उठते हैं, तो उन्हें छोटा करने पर उनकी निर्जीवता बढ़ जाती है। यह बात दूसरी है कि फोटो-चित्र छोटा बनाने पर वह अधिक स्पष्ट होता है। पर साथ ही वह अधिक समतली दिखने लगता है और उसमें वस्तुओं के व्यौम गुण नजर नहीं आते। इसका कारण उपरोक्त बातों से स्पष्ट है : फोटो चित्रों को छोटा करने से उसमें "परिप्रेक्षी दूरियाँ" (वस्तुओं के व्यौम गुणों को दर्शाने वाली दूरियाँ), जो वैसे ही छोटी हैं, और भी छोटी हो जाती हैं।

चित्र देखना

जो कुछ फोटो-चित्रों के बारे में कहा गया है, वह कुछ हद तक चित्रकार के हाथ से बनाए चित्रों के लिए भी सही है : उन्हें भी एक विशेष दूरी से देखना चाहिए, तभी आप परिप्रेक्ष्य (चित्र में वस्तु के व्यौम गुणों की अभिव्यक्ति, अर्थात वस्तु की लम्बाई व चौड़ाई, उसकी गहराई और उभार, आगे व पीछे के बिन्दुओं में अन्तर, आदि) को अनुभव कर सकेंगे। सिर्फ इसी स्थिति में चित्र आपको सपाट नहीं लगेगा; उसमें आप वास्तविक दृश्य का दर्शन कर सकेंगे। इन चित्रों को भी एक आँख से देखना अधिक लाभप्रद रहेगा, विशेषकर यदि उनका आकार काफी बड़ा नहीं है।

"बहुत पहले से ही ज्ञात है, - उसी पुस्तक में इस प्रश्न के बारे में अंग्रेज मनोवैज्ञानिक कारपेंटर लिखते हैं, - कि यदि चित्र में परिप्रेक्षी गुण, वस्तुओं के प्रकाशमान व छायेदार भागों और उनके स्थान क्रम आदि वास्तविकता के अनुरूप हैं, तो उसे भी एक आँख से देखना चाहिए, दोनों से नहीं। एक आँख से देखने पर चित्र और भी सजीव हो उठता है। सजीवता का प्रभाव और बढ़ाया जा सकता है, यदि हम उसे किसी नलिका द्वारा देखें, जिससे चित्र के सिवा और कुछ नहीं दिखे। इस तथ्य को पहले बिल्कुल गलत तरीके से समझाया जाता था : 'हम दो आँखों की बजाए एक आँख से अधिक अच्छा देखते हैं, - बेकन का कहना है, - क्योंकि इससे जीवन-शक्ति एक स्थान पर जमा हो जाती है और अधिक प्रभावशाली हो उठती है'।

पर वास्तविकता में यहाँ बात कुछ और ही है। जब हम साधारण दूरी से चित्र को दोनों आँखों से देखते हैं, तो उसमें अंकित दृश्य को सपाट मानने पर विवश हो जाते हैं। पर जब हम उसे एक आँख से देखते हैं, हमारी बुद्धि परिप्रेक्ष्य, प्रकाश व छाया आदि के भ्रमों में अधिक आसानी से विश्वास कर लेती है। अतः जब हम काफी देर तक गौर से चित्र देखते हैं, वह जल्द ही मूर्त्त हो उठता है, उसमें वस्तुओं के वास्तविक व्यौम गुण प्रकट हो जाते हैं। भ्रम का प्रभावशाली होना इस बात पर निर्भर करता है कि चित्रकार ने कितनी सच्चाई से वास्तविकता को समतल कागज पर प्रक्षिप्त किया है। एक आँख से देखने पर यह लाभ होता है कि हमारी बुद्धि चित्र की मनचाही व्याख्या करने को स्वतंत्र होती है; चित्र में अंकित दृश्य को सपाट (समतली) मानने के लिए उसे कोई विवश नहीं करता।"

बड़े-बड़े चित्रों की फोटोग्राफी से प्राप्त छोटे चित्रों में वस्तुओं के व्यौम गुण और अधिक उभर आते हैं। यह समझने में कठिनाई नहीं होगी, यदि आप स्मरण करेंगे कि चित्रों को छोटा करने पर अक्सर वह दूरी भी कम हो जाती है, जिस पर से उसे देखना चाहिए, और इसलिए चित्र कम दूरी से ही व्यौम दृश्य का भ्रम उत्पन्न कर सकती है।

व्यौमदर्शी क्या है?

समतली (सपाट) चित्रों के बाद अब ठोस वस्तुअें पर आएं और निम्न प्रश्न पर गौर करें : वस्तुएँ आखिर ठोस (या त्रिविम) क्यों लगती हैं, सपाट क्यों नहीं दिखतीं? आँख की रेटीना पर बनने वाले चित्र तो सपाट ही होते हैं। फिर वस्तुएँ हमें समतली क्यों नहीं लगतीं; त्रिविम (लम्बाई, चौड़ाई और मुटाई युक्त) क्यों नजर आती हैं?

इसके कई कारण हैं। प्रथमतः वस्तु के विभिन्न भागों की अलग-अलग प्रकाशमानता के आधार पर हम वस्तु के वास्तविक रूप का अन्दाजा लगा सकते हैं। दूसरे, इसमें उस तनाव की भी महत्वपूर्ण भूमिका है, जो हम वस्तु के भिन्न दूरियों पर स्थित भागों को समान स्पष्टता से देखने की कोशिश करते वक्त अनुभव करते हैं : सपाट चित्र के सभी भाग हमारी आँखों से समान दूरी पर स्थित होते हैं, पर ठोस पिण्ड के भिन्न भाग हमारी आँखों से भिन्न दूरियों पर होते हैं और उन्हें देखने के लिए आँख को अलग-अलग दूरियों पर फोकस करना होता है। पर सबसे महत्वपूर्ण काराण यह है कि हमारी दोनों आँखें एक ही वस्तु के अलग-अलग चित्र प्राप्त करती हैं। बाईं आँख व दाईं आँख किसी भी वस्तु का बिल्कुल समान चित्र नहीं प्राप्त करतीं। यह आप आसानी से मान लेंगे, यदि किसी समीपस्थ वस्तु को बारी-बारी से एक-एक आँख बन्द करके देखेंगे। हर आँख वस्तु का कुछ भिन्न चित्र देती हैं और मस्तिष्क इसी भिन्नता की व्याख्या के आधार पर त्रिविम वस्तु की संवेदना प्राप्त करता है (चित्र 120 व 122)।

अब आप कल्पना करें कि किसी एक वस्तु के दो चित्र हैं : एक चित्र में वस्तु इस तरह से अंकित है, जैसे बाईं आँख उसे देखती है और दूसरे चित्र में - जैसे दाईं आँख। यदि इन चित्रों का अवलोकन इस प्रकार से किया जाए कि हर आँख सिर्फ "अपना" चित्र ही देख सकें, तो दो समतली चित्रों की जगह हमें एक उत्तल व्योम-गुणी वस्तु दिखेगी; वस्तु अधिक व्यौम प्रतीत होगी, बनिस्बत की यदि हम एक आँख से वास्तविक ठोस पिण्ड ही देखें। इस तरह के युग्म-चित्र विशेष उपकरण द्वारा देखे जाते हैं, जिन्हें व्योमदर्शी कहा जाता है। पुराने व्यौमदर्शियों में चित्रों का संगम दर्पण की मदद से कराया जाता था, पर आधुनिक व्योमदर्शियों में हम शीशे के उत्तल प्रिज्मों की सहायता लेते हैं : वे किरणों के पथों को इस प्रकार से विचलित करते हैं कि उन्हें मन ही मन पीछे बढ़ाने पर दोनों चित्र एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं। प्रिज्मों की उत्तलता के कारण चित्र कुछ परिवर्धित भी हो जाते हैं। जैसा कि आप देखते हैं, व्यौमदर्शी का सिद्धान्त अत्यन्त सरल है। पर सरल साधनोंसे भी कितना शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

अधिकाँश पाठकों को निस्संदेह विभिन्न दृश्यों की व्यौमदर्शी फोटोग्राफी देखने का अवसर मिला होगा। कईयों ने व्योमदर्शी में आकृतियों का आरेख भी देखा होगा, जो व्यौम ज्यामिति का पठन-पाठन सरल करने के लिए बनाए जाते हैं। आगे हम व्योमदर्शी के इन प्रचलित उपयोगों के बारे में बातें नहीं करेंगे। ऐसे उपयोगों के बारे में बताना अधिक लाभदायक होगा, जिसे बहुत कम लोग जानते हैं।

चित्र 122. धब्बेदार काँच का घन, बाईं व दाईं आँखों से देखने पर।

चित्र 123. धब्बों के मध्य में कुछ देर तक गौर से देखते रहें - दोनों धब्बे एक में मिल जाएंगे।

चित्र 124. इनके साथ भी यही करें। दोनों के एक में मिलने के बाद अगला अभ्यास आरम्भ करें।

चित्र 125. जब ये आकृतियाँ एक में मिल जाएंगी, आपको लगेगा, जैसे आप एक लम्बी नली के भीतरी भाग को देख रहे हैं।

चित्र 126. इन दो आकृतियों के एक में मिलने पर चारों ज्यामितीय पिण्ड हवा में तैरते से लगेंगे।

चित्र 127. लम्बा, दूर तक जाता हुआ गलियारा।

चित्र 128. काँच के बर्तन में मछली।

हमारा नैसर्गिक व्योमदर्शी

व्योमदर्शीय चित्रों को आप बिना किसी विशेष उपकरण के भी देख सकते हैं। इसके लिए सिर्फ आँखों को अनुकूल दिशाओं में निर्दिष्ट करने का अभ्यास करना होगा। परिणाम वही मिलेगा, जो व्यौमदर्शी से देखने पर मिलता है; सिर्फ चित्रों का आकार बड़ा नहीं दिखेगा। व्योमदर्शी के आविष्कारक विटसन ने शुरू-शुरू इसी विधि का उपयोग किया था।

यहाँ कुछ व्यौमदर्शीय चित्र दिए जा रहे हैं, जो जटिलता के क्रम में हैं। आपको सलाह है कि इन्हें बिना व्योमदर्शी के देखने का प्रयत्न करें। सफलता कुछ अभ्यास के बाद ही मिलेगी।[38]

शुरू करें चित्र 123 से। इसमें काले बिन्दों का एक जोड़ा है। आप उन्हें आँखों के सामने रखें और कुछ सेकेण्ड तक उनके बीच से दृष्टि न हटाएँ। साथ ही ऐसा प्रयतन करें, मानों आप इन चित्रों के पीछे दूर रखी किसी वस्तु को देखना चाहते हैं। जल्द ही आप देखेंगे कि बिन्दें दो नहीं, चार हैं। हर बिन्दें के दो हो जाते हैं। इसके बाद किनारे वाले बिन्दें तैरते हुए दूर भाग जाएंगे और भीतर के दो बिन्दे मिलकर एक हो जाएंगे। यदि आप यही क्रिया क्रमशः चित्र 124 व 125 के साथ दुहराएंगे, तो अन्तिम स्थिति में चित्रों के संगम के परिणामस्वरूप आपको एक दूर जाती लम्बी नली का भीतरी भाग दिखेगा।

चित्र 126. इन दो आकृतियों के एक में मिलने पर चारों ज्यामितीय पिण्ड हवा में तैरते से लगेंगे।

चित्र 127.0000------------------------ लम्बा, दूर तक जाता हुआ गलियारा।

चित्र 128. काँच के बर्तन में मछली।

इसमें सफलता मिलने के बाद आप चित्र 126 के साथ अभ्यास शुरू कर दे सकते हैं। यहां संगम के क्षण हवा में लटकी ठोस ज्यामितीय आकृतियों को देखेंगे। चित्र 127 आपको एक लम्बा गलियारा दिखाएगा। चित्र 128 पारदर्शक शीशे के डिब्बे में तैरती मछली से आपका मनमोह लेगा। और अन्त में, चित्र 129 आपके समक्षएक पूरा समुद्री दृश्य प्रस्तुत करेगा।

ऐसे युग्म चित्रों को बिना किसी उपकरण के देखना अपेक्षाकृत सरलता से सीखा जा सकता है। मेरे कई मित्र कुछ बार ही कोशिश करके इस कला में निपुण हो गए। निकट व दूर दृष्टि वाले लोगों को इन्हें देखने के लिए चश्मा उतारने की भी जरूरत नहीं है। देखना सीखते वक्त चित्र को आँख के सामने आगे-पीछे करके आवश्यक दूरी ढूँढने का भी प्रयत्न करना चाहिए। अभ्यास के वक्त प्रकाश अच्छा होना चाहिए; इससे जल्द सफलता मिलेगी।

चित्र 129. सागर का व्योमदर्शी दृश्य।

बिना व्योमदर्शी के इन चित्रों को देखने का अच्छा अभ्यास कर लेने के बाद आप कोई भी व्योमदर्शीय फोटोग्राफी नंगी आँखों से देखसकेंगे; आपको विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आगे (पृष्ठ 205 व 212 पर)जो व्योमदर्शीय फोटो-चित्र दिए गए हैं, उन्हें भी खाली आँख देखने का प्रयत्न कर सकते हैं। पर इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि आँखें थकें नहीं।

यदि आपको उपरोक्त अभ्यास में कठिनाई हो, तो किसी दूर-दृष्टि वाले के चश्मे से काम चला सकते हैं। गत्ते पर दो छेद करके उस पर शीशों को चिपका दें। चित्रों के बीच कागज या गत्ते की दीवार बना दें। अब शीशों से देखें - यह अच्छे व्योमदर्शी का काम करेगा।

चित्र 130. नंगी आँखों से देखने पर व्योमदर्शी में

[38] यहाँ एक बात बता दूँ : व्योमदर्शी में भी व्योम का दर्शन सबके वश की बात नहीं है। कुछ लोग (जैसे तिर्यक दृष्टि वाले या जो एक आँख से काम करने के आदी हैं) यह काम बिल्कुल नहीं कर सकते। कुछ लोगों को लम्बे अभ्यास के बाद ही इसमें सफलता मिलती है। तीसरे प्रकार के लोग, जो अधिकांशतः युवा-वर्ग से होते हैं, करीब पन्द्रह मिनट के अभ्या------------------------------अअअ-अ------------------------स से ही सीख लेते हैं।

चित्र 130 में बाईं ओर के दो फोटो-चित्रों में दवा पीने के तीन गिलास हैं, जो एक ही नाप के लगते हैं। आप कितना भी गौर से क्यों न देखें, गिलासों के आकार में कोई अन्तर नहीं मिलेगा। लेकिन अन्तर है और काफी बड़ा अन्तर है। गिलास समान लगते हैं, क्योंकि वे आँखों या कैमरों से समान दूरी पर नहीं है : बड़ी बोतल दो छोटी बोतलों से कुछ पीछे रखी है। पर कौन सी बोतल पीछे हैं? चित्रों के साधारण अवलोकन से आप यह निर्धारित नहीं कर सकते।

पर यदि आप व्योमदर्शी का सहारा लें या उपरोक्त व्योमदर्शक दृष्टि से देखें, तो प्रश्न का उत्तर देना सरल हो जाता है। आप देखेंगे कि बाईं ओर का गिलास बीच वाले से पीछे है और बीच वाला - दाएं गिलास से। गिलासों के आकारों का वास्तविक अनुपात दाएँ चित्र में दिखाया गया है।

चित्र 130 में ही (नीचे) एक इससे भी आश्चर्यजनक स्थिति दिखाई गई है। आपसुराहियों, घड़ी व मोमबत्तियों को देख रहे हैं। दोनों सुराहियाँ व दोनों मोमबत्तियाँ समान आकारों की दिखती हैं, पर उनके वास्तविक आकार काफी भिन्न हैं; बाईं सुराही दाईं से दुगुनी ऊँची है और बाईं मोमबत्ती दाईं की अपेक्षा काफी नीची है। व्योमदर्शीय अवलोकन से इस भ्रम का कारण फौरन पता चल जाता हैः वस्तुएँ एक पंक्ति में नहीं हैं; बड़ी वस्तुएँ कुछ दूर रखी हैं और छोटी - कुछ निकट।

"दो आँखों की दृष्टि" व्योम का बोध कराती हैं और इसलिए "एक आँख की दृष्टि से" अधिक लाभप्रद है।

जालसाजी पकड़ने का आसान तरीका

मान लें कि दो बिल्कुल समान चित्र हैं, जैसे तुल्य आकार के दो काले वर्ग। व्योमदर्शी में देखने पर दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखेगा। यदि दोनों वर्गों के केन्द्रों में एक-एक श्वेत बिन्दु हो, तो व्योमदर्शी में देखने पर वे वर्गों के भीतर ही दृष्टिगोचर होंगे। पर यदि बिन्दु केन्द्र से थोड़ा भी इधर-उधर होगा, तो व्योमदर्शी में वह वर्ग से थोड़ा आगे या पीछे नजर आएगा।

व्योमदर्शी की सहायता से चित्रों में व्यौम गुण देखने के लिए उनमें थोड़ा अन्तर होना आवश्यक है; यह अन्तर क्षुद्र से क्षुद्र भी हो, तो काफी रहेगा।

यह दस्तावेजों व कागजी मुद्रा-इकाइयों की जालसाजी पकड़ने का सरलतम तरीका है। संदेहाधीन नोट और असली नोट को साथ रखकर व्योमदर्शी में देखने पर हल्का से हल्का अन्तर भी आसानी से दिखने लगेगा। यह अन्तर किसी अक्षर के लिखने के तरीके में हो सकता है, या किसी छोटी सी लकीर के खींचने में। पर इसी के कारण यह अक्षर या रेखा बाकी चीजों की पृष्ठभूमि से कुछ आगे या पीछे नजर आने लगेगी।[39]

दैत्य की दृष्टि में

यदि वस्तु हम से 450 मीटर से अधिक की दूरी पर है, तो हमारी दोनों आँखों के बीच की दूरी उनसे प्राप्त संवेदनाओं में अन्तर उत्पन्न कर सकने में असमर्थ हो जाती है। इसलिए दूरस्थ वस्तु या दृश्य सपाट दिखते हैं। इसी कारण से आकाश के सभी नक्षत्र एक समतल पर नजर आते हैं, यद्यपि चन्द्रमा अन्य ग्रहों से नजदीक है और ग्रहों की तुलना में तारों की दूरियाँ कल्पनातीत हैं।

450 मीटर से अधिक दूरी पर स्थित वस्तु का व्योम गुण देख सकनेमें हम असमर्थ होते हैं। इतनी दूरी से वस्तु दाईं व बाईं आँखों को एक जैसी दिखती हैं, क्योंकि आँखों के बीच की दूरी 450 मीटर की तुलना में नगण्य है। यदि इतनी दूर स्थित वस्तु की व्योमदर्शीय फोटोग्राफी भी की जाए, तो यह व्योम धर्मी नहीं लगेगी।

लेकिन एक काम किया जा सकता है। वस्तु के फोटो चित्र दो ऐसे बिन्दुओं से लिए जा सकते हैं, जिनके बीच की दूरी हमारी आँखों के बीच की दूरी से काफी अधिक हो। ऐसे चित्रों को व्योमदर्शी में देखने पर ऐसा लगेगा, जैसे आपकी आँखों के बीच की दूरी काफी बढ़ गई हो। वृहत भूभागों का व्योमदर्शीय चित्र इसी विधि से लिया जाता है। अक्सर इन्हें उत्तल पार्श्वों वाले विशालक प्रिज्मों की सहायता से देखा जाता है, इसलिए ऐसे चित्र हमें दृश्यों को लगभग वास्तविक आकार में दिखाते हैं। प्रभाव अनूठा होता है।

---

[39] यह विचार ऋक्ष्ज्र वीं शती में डोव ने प्रस्तुत किया था, पर आज की कागजी मुद्रा इकाइयों के लिए यह विधि सफलतापूर्वक प्रयुक्त नहीं हो सकती। इन्हें कुछ इस तरह से छापा जाता है कि दो असली नोट भी व्योमदर्शी से देखने पर व्यौम चित्र दे सकते हैं। पर डोव की विधि से दो किताबों का मुद्रण तीसरे से अलग किया जा सकता है, यदि तीसरे को छापते वक्त उसके अक्षर बदले गए थे।

चित्र 131. व्योम दूरदर्शी

पाठक शायद समझ गए होंगे कि दो दूरबीनों को इस प्रकार जोड़ा जा सकता है कि उससे किसी भू-भाग के व्योम गुणों का बिना फोटोचित्रों के ही सीधा अवलोकन किया जा सके। ऐसे उपकरण को व्योम दूरबीन कहते हैं। इसमें दोनों नलियों की दूरी आँखों के बीच की दूरी से अधिक होती है और दोनों बिम्ब परावर्तक प्रिज्मों की सहायता से आँखों तक पहुँचाए जाते हैं (चित्र 131)। ये उपकरण इतने अजीब है कि उनमें देखने से प्राप्त अनुभव का वर्णन करना मुश्किल हो जाता है। इसमें प्रकृति का एक दूसरा ही रूप देखने को मिलता है। सुदूर स्थित पर्वत, चट्टानें, घर आदि सभी कुछ व्योम व उत्तल लगता है; कुछ भी सपाट समतल पर्दे सा नहीं दिखता। अक्सर दूरस्थ जहाज अचल लगता है, पर इस उपकरण में आप उसकी गति का निरीक्षण कर सकते हैं। यदि पृथ्वी पर सचमुच में दैत्य होते, तो उन्हें ऐसा ही कुछ दिखता।

यदि दुनाली दूरबीन दस गुना बड़े बिम्ब दे सकता है और उसमें नलियों के बीच की दूरी आँखों के बीच की दूरी से छः गुनी अधिक है (अर्थात 6.5 X 6 = 39 cm है), तो उससे अनुभूत दृश्य की व्योम-धर्मिता 6 ञ 10 उ 60 गुनी अधिक प्रतीत होगी, बनिस्बत कि नंगी आँखों से प्राप्त दृश्य से। इसका मतलब है कि 25 किलो की दूरी पर स्थित वस्तु भी व्योम धर्मी प्रतीत होगी।

भू-सर्वेक्षकों, नाविकों, तोपचियों, यात्रियों आदि के लिए ऐसे दूरबीन काफी महत्व रखते हैं, विशेषकर यदि उनमें दूरियाँ नापने के लिए विशेष प्रयुक्ति लगी हो।

जाइस की प्रिज्मयुक्त दुनाली दूरबीन से भी यही प्रभाव प्राप्त होता है, क्योंकि इसमें नलियों के बीच की दूरी आँखों के बीच की दूरी से कुछ अधिक है (चित्र 132)। नाटक बगैरह देखने के लिए प्रयुक्त दूरबीनों में नलियों के बीच की दूरी कम होती है (ताकि पर्दे दूर-दूर खड़ी दीवारों की तरह न दिखने लगें)।

व्योमदर्शी में ब्रह्माण्ड

यदि व्योम दूरबीन से चाँद या कोई अन्य आकाशीय पिण्ड देखेंगे, तो उसका व्योम गुण नजर नहीं आएगा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि अन्तरिक्षी दूरियाँ इन दूरबीनों के लिए विराट हैं। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी के सामने नलियों के बीच की 30-50 सेमी की दूरी का क्या महत्व हो सकता है! यदि ऐसा उपकरण बनाया जा सकता, जिसमें नलियों के बीच की दूरी दसियों या सैकड़ों किलोमीटर लम्बी होती, तब भी ग्रहों के अवलोकन से कोई फायदा नहीं होता। वे हम से करोड़ों किलोमीटर की दूरी पर हैं।

यहाँ पुनः व्योमदर्शीय फोटोचित्रों का सहारा लिया जा सकता है। माना कि हम पिछली शाम को किसी ग्रह का फोटो खींच चुके हैं और आज शाम को उसी ग्रह का एक और चित्र लेते हैं। चित्र पृथ्वी के एक ही स्थल से लिए गए हैं। पर पृथ्वी एक रात-दिन की अवधि में लाखों किलोमीटर तय कर चुकती है, अतः दोनों चित्र सौर मण्डल के भिन्न बिन्दुओं से लिए गए हैं। स्पष्ट है कि दोनों चित्र समान नहीं होंगे और यदि उन्हें पास रखकर व्योमदर्शी से देखेंगे, तो चित्र सपाट नहीं व्योम गुणी नजर आएगा।

इस प्रकार, पृथ्वी की कक्षीय गति का उपयोग करते हुए दो बहुत बड़ी दूरियों पर स्थित बिन्दुओं से आकाश का चित्र लिया जा सकता है। आप किसी ऐसे दैत्य की कल्पना करें, जिसकी आँखों के बीच की दूरी कई करोड़ किलोमीटर है। आधुनिक खगोलशास्त्री ऐसा ही दृश्य हैं, जो इस दैत्य को दिखेगा।

व्योमदर्शी का आजकल नए ग्रहों (अधिक सही होगा कहना :ग्रह खण्डों या आस्टेरायडों) की खोज में उपयोग होता है। मंगल और वृहस्पति के कक्षों के बीच ये बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। अब तक इनकी खोज सिर्फ संयोग की बात मानी जाती थी। अब सिर्फ आकाश के इस क्षेत्र के दो फोटो-चित्रों की व्योमदर्शीय तुलना करना पर्याप्त है। चित्र सिर्फ अलग-अलग समय में लिए जाने चाहिए। इन चित्रों में यदि कोई ग्रह-खण्ड होगा, तो वह बिल्कुल अलग दिखेगा। चित्र की पृष्ठभूमि से वह आगे या पीछे प्रतीत होगा।

व्योमदर्शी से भिन्न बिन्दुओं की स्थितियों में अन्तर का ही पता नहीं चलता, बल्कि उनकी चमक में जो अन्तर है, वह भी दिख जाता है। खगोलशास्त्री इस विधि का सफलतापूर्वक उपयोग तथाकथित प्रत्यावर्ती तारों को ढूँढने में भी करते हैं, जिनकी चमक एक नियत अवधि में बदल जाया करती है। यदि आकाश के दो चित्रों में किसी तारे की चमक भिन्न हैं, तो व्योमदर्शी से फौरन इसकी सूचना मिल जाएगी कि इस तारे ने अपनी चमक बदली है।

त्रिनेत्र की दृष्टि में

यह मत सोचिए कि त्रिनेत्र शब्द यहाँ गलती से आ गया है। हम सचमुच में तीन आँखों से देखने की बात करने जा रहे हैं।

तीन आँखों से देखना? क्या हमें तीन आँखें प्राप्त हो सकती हैं? विश्वास करें, हम ऐसी ही दृष्टि के बारे में बात करने जा रहे हैं। विज्ञान आदमी को तीसरी आँख नहीं दे सकता, पर यह दिखा सकता है कि तीन आँखों वाले जीव को दुनिया कैसी दिखती।

लेकिन पहले एक चीज पर ध्यान दें। व्योमदर्शीय चित्र एक आँख वाले व्यक्ति को भी दिखाया जा सकता है और इससे उसे व्योम गुणों की दृश्यानुभूति कराई जा सकती है। साधारण स्थितियों में बेशक उसे ऐसी अनुभूति नहीं हो सकती। साधारण स्थितियों में बेशक उसे ऐसी अनुभूति नहीं हो सकती। विधि यह है : बाईं व दाईं आँखों के लिए अलग-अलग तस्वीरें एक ही पर्दे पर बारी-बारी से पर जल्दी-जल्दी बदलते हुए दिखाते हैं। दो आँखों वाला व्यक्ति जिन दो तस्वीरों को एक साथ देखता है, एक आँख वाला व्यक्ति उन्हें बारी-बारी से क्रम में देखेगा। यदि चित्रों के बदलने की आवृत्ति बहुत तेज होगी, तो उसे वैसा ही दिखेगा, जैसा दो आँखों वाले व्यक्ति देखते हैं। कारण स्पष्ट है : अलग-अलग चित्रों की दृश्यानुभूतियों घुल-मिल कर सिनेमा की तरह एक सतत चित्र बना देती हैं और भ्रम होता है कि चित्र बारी-बारी से नहीं एक साथ देखे जा रहे हैं।[40]

पर यदि यह संभव है, तो दो आँखों वाले व्यक्ति की एक आँख को तेजी से बदलते दो चित्र दिखाए जा सकते हैं और दूसरी आँख को तीसरा चित्र दिखाया जा सकता है। तीनों चित्र यदि एक ही वस्तु के हैं, पर तीन भिन्न बिन्दुओं से खींचे गए हैं, तो वे मिल-जुल कर चेतना को एक नये प्रकार के दृश्य की अनुभूति कराएंगे।

अन्य शब्दों में, एक वस्तु के तीन संभव आँखों के अनुकूल तीन बिन्दुओं से तीन चित्र लिए जाते हैं। इनमें दो तेजी के साथ बदल-बदल कर एक आँख को दिखाए जाते हैं। उन्हें तेजी से बदलने के कारण वे घुलमिलकर एक जटिल व्यौम चित्र बनाने लगते हैं। इसी बीच दूसरी आँख को तीसरे चित्र की अनुभूति होती रहती है।

इन परिस्थितियों में यद्यपि हम दो आँखों से ही देखते हैं, पर अनुभूति ठीक वैसी ही प्राप्त होती है, जैसी तीन आँखों से देखने पर होती। इससे चित्र में अंकित दृश्यों की व्योम-धर्मिता काफी बढ़ जाती है।

चित्र 133 में एक बहुफलक की व्यौम फोटोग्राफी है :एक काले पृष्ठ पर सफेद रेखाओं से बनाया गया है और दूसरा सफेद पृष्ठ पर काली रेखाओं से। व्योमदर्शी में यह चित्र कैसा दिखेगा? कहना मुश्किल है। देखिए कि हेल्महोल्ट्स क्या कहते हैं :

"जब किसी व्योमदर्शीय चित्र युग्म में से एक श्वेत रंग का है और दूसरा काले रंग का, तो दोनों मिलकर चमकदार फलक का चित्र देते हैं। यहाँ कागज व चित्रों के मलिन होने से भी यही परिणाम मिलेगा। मणिभों (क्रिस्टलों) के इस विधि से बनाए गए व्योमदर्शीय आरेख चमकदार ग्रैफाइट से बने मणिभों की अनुभूति देते हैं। इस विधि से पानी, पत्तियों आदि कि चमक का और भी बढ़िया व्योम चित्र लिया जा सकता है।"

हमारे महान शरीर क्रिया वैज्ञानिक सिचेनव की पुरानी, पर अनद्यातीत पुस्तक "ज्ञानेन्द्रियों का शरीर क्रिया-विज्ञान, दृष्टि" (1867 ई.) में इस संवृत्ति की अनूठी व्याख्या दी गई है :

चित्र 133. व्यौम चमक। व्योमदर्शी में देखने पर ये आकृतियाँ एक में मिलकर काले परिप्रेक्ष्य में चमकदार क्रिस्टल का चित्र देते हैं।

"विभिन्न प्रकार से प्रकाशित या बहुरंगी तलों के कृत्रिम व्योमदर्शीय समन्वय के प्रयोगों में चमकदार पिण्डों की वास्तविक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं। मलिन सतह और चमकदार (पॉलिश की हुई) सतह में क्या फर्क है? मलिन सतह प्रकाश को सभी दिशाओं में छींटती हुई परावर्तित करती है, इसलिए उसे किसी भी तरफ से क्यों न देखा जाए, वह समान रूप से प्रकाशित लगती है। पॉलिश की हुई सतह प्रकाश को सिर्फ एक दिशा में परावर्तित करती है। इसलिए ऐसी स्थिति भी सम्भव है, जब एक आँख पर उससे परावर्तित होने वाली बहुत सी किरणें पड़ने

[40] सिनेमा के चित्र कभी कभी अनूठे तौर पर व्योम धर्मी नजर आते हैं। इसका कारण शायद अंशतः यह भी हो सकता है कि चित्र लेते वक्त कैमरा तेजी से दाएं-बाएं कंपन कर रहा था। यह ऐसे कैमरे में फिल्म को आगे बढ़ाने वाली प्रयुक्ति के कारण होता है। इस कंपनके कारण चित्र असमान हो जाते है और पर्दे पर तेजी से एक-दूसरे का स्थान लेते हुए आपस में घुलमिलकर व्योम धर्मी दृश्यों की अनुभूति कराते हैं।

लगती हैं और दूसरी आँख पर लगभग बिल्कुल नहीं (यह स्थिति हम काली व श्वेत सतहों के व्योमदर्शीय समन्वय में देखते हैं)। स्पष्ट है पॉलिश की हुई सतह को देखने पर दोनों आँखों के बीच परावर्तित प्रकाश का असमान वितरण (अर्थात एक आँख में कम व दूसरी में अधिक प्रकाश पड़ने की स्थिति) अवश्यंभावी है।

इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि व्योमदर्शीय चमक इस विचार की सत्यता सिद्ध करता है कि बिम्बोंके व्यौम समन्वय की क्रिया में प्राथमिक भूमिका अनुभव की होती है। दृष्टि-क्षेत्रों के बीच की खींचातानी उसी क्षण दृढ़ धारणा में परिणत हो जाती है, जब अनुभव की गोद में पले दृष्टि उपकरणों को किसी वास्तविक दृश्य के साथ उनके अन्तर की तुलना करने का अवसर दिया जाता है।

अतः चमक दिखने का कारण (कम से कम एक कारण) यह है कि बाईं व दाईं आँखों के सामने अलग-अलग तरह से चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। बिना व्योमदर्शी के इस कारण का हमें कभी पता न चलता।

क्षिप्र गति की स्थिति में दृष्टि

इसके पहले हम बता चुके हैं कि एक ही वस्तु के भिन्न चित्र यदि तेजी के साथ बदलते हुए बारी-बारी से दिखाए जाएं तो व्योम धर्मिता की अनुभूति होती है।

प्रश्न उठता है : क्या यही प्रभाव उस स्थिति में नहीं उत्पन्न हो सकता, जब अचल चित्र गतिमान आँखों से देखे जा रहे हो? दूसरे शब्दों में, क्या वस्तुओं की वैसी ही व्योम धर्मिता तब नहीं दिखेगी, जब वस्तु अचल रहे और आँख तेजी के साथ गतिमान हो?

जैसी आशा की गई थी, इस स्थिति में भी व्योमदर्शीय प्रभाव पाया जाता है। कई पाठकों ने ध्यान दिया होगा कि तेज चलती गाड़ी से खींचे गए सिनेमा-चित्र में भी व्योमदर्शीय चित्रों से कुछ कम व्योम धर्मिता नहीं होती। यह हम खुद भी देख सकते हैं, यदि रेलगाड़ी या मोटरगाड़ी से दिखने वाले दृश्यों पर ध्यान दें : भूदृश्यों में आगे व पीछे की वस्तुएँ स्पष्टतः अलग-अलग दिखेंगी, जिससे व्योम-धर्मिता का भान होता है। गहराई की अनुभूति तीव्र हो जाती है और 450 मी. से अधिक दूरी पर भी आगे व पीछे की वस्तुओं में अन्तर दिखने लगता है। स्मरण दिला दूँ कि 450 मी. स्थिर आँखों की व्योमदर्शिता की सीमा है।

तेज गाड़ी से दिखने वाले भू-दृश्यों की मोहकता का कारण कहीं इसी में तो नहीं छिपा है? दूरस्थ वस्तुएँ पीछे छूटती जाती हैं और हम परिवेशी प्रकृति की विराटता का दर्शन करने लगते हैं। जब हम मोटरगाड़ी में बैठे जंगल के बीच से निकलते हैं, पेड़ स्पष्टतः एक दूसरे से दूर दिखते हैं। अचलावस्था में हमारी आँखों उन्हें अलग नहीं कर पातीं।

पहाड़ी स्थलों पर सरपट दौड़ते घुड़सवार के लिए जमीन की उभारें स्पष्ट हो जाती हैं; पहाड़ियों व घाटियों की व्योम धर्मिता मूर्त्त हो उठती है।

यह सब एक आँख वाला व्यक्ति भी देख सकता है, जिसके लिए उपरोक्त अनुभूतियाँ बिल्कुल नई होती हैं। हम बता चुके हैं कि व्यौम दृष्टि के लिए भिन्न चित्रों को एक साथ दोनों आँखों से देखने की आवश्यकता नहीं है। एक आँख से भी वस्तुओं की व्यौम धर्मिता देखी जा सकती है, यदि तीव्र गति से एक-दूसरे का स्थान लेते हुए भिन्न चित्र एकाकार हो जाएं।[41]

उपरोक्त बातों की जाँच करना बहुत सरल है। इसके लिए थोड़ा सा इस बात पर ध्यान देना होगा कि रेलगाड़ी या बस में चलते वक्त हमारी आँखों को क्या दृष्टिगोचर होता है। आपको एक दूसरी ही बात नजर आएगी, जिसके बारे में डोव ने सौ साल पहले ही लिखा था (सचमुच में भूली-बिसरी बातें भी नई होती हैं!) : खिड़की से दृष्टिगोचर पीछे भागती हुई वस्तुएँ छोटी प्रतीत होती हैं। इस तथ्य का व्योमदर्शीय दृष्टि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि इतनी तेजी से गतिमान वस्तु को देखकर हम उसके छोटे होने का गलत निष्कर्ष निकालते हैं : यदि वस्तु हम से निकट है -, जाने अनजाने हम सोचना शुरू करते हैं, - तो वास्तविकता में साधारणतया उसे निकट होना चाहिए, क्योंकि सिर्फ इसी स्थिति में वह हमेशा की तरह इस आकार का प्रतीत होगा। यह व्याख्या हेल्महोल्ट्स की है।

---

[41] ट्रेनों से खींचे गए चल-चित्रों की सर्वविदित व्यौम-धर्मिता का कारण यही है, जो और भी स्पष्ट हो जाती है, यदि ट्रेन वक्र पथ पर चल रही हो और वस्तुएँ वक्रता-त्रिज्या की दिशा में हों। इसे "रेलगाड़ी का प्रभाव" कहते हैं और यह फिल्म आपरेटर अच्छी तरह से जानते हैं।

रंगीन चश्मों से

यदि आप सफेद तख्ते पर लाल रंग से लिखे अक्षरों को लाल ऐनक से देखेंगे, तो आपको सिर्फ लाल पृष्ठभूमि दिखेगी। लिखावट का नामोनिशान नहीं रह जाएगा, क्योंकि लाल अक्षर लाल पृष्ठभूमि में विलीन हो जाते हैं। इसी चश्में से यदि सफेद पर नीले अक्षरों को पढ़ने की कोशिश करेंगे, तो आपको लाल पृष्ठ पर स्पष्ट काले अक्षर दिखेंगे। समझा जा सकता है : लाल शीशे को नीली किरणें नहीं पार कर सकतीं (शीशा इसलिए तो लाल है कि वह सिर्फ लाल किरणों को पार कराता है)। फलस्वरूप नीले अक्षरों के स्थान पर आप रंग की अनुपस्थिति, अर्थात काली रेखाएं देखेंगे।

तथाकथित "उभरे प्रिंटों" (ऐनाग्लीफ) का प्रभाव रंगीन शीशों के इसी गुण पर आधारित है। ऐनाग्लीफ में अक्षर इस प्रकार से छापे जाते हैं कि वे व्योम गुणी प्रतीत होने लगते हैं, जैसे आप व्योमदर्शी में देख रहे हों। इसके लिए अक्षरों के बाईं व दाईं आँखोंसे दिखने वाले चित्रों को एक पर एक छापा जाता है, सिर्फ उनके रंग अलग-अलग होते हैं - एक का नीला और दूसरे का काला।

दो रंगीन साधारण चित्रों की जगह एक व्योमधर्मी चित्र देखने के लिए रंगीन शीशों से देखना काफी रहेगा। दाईं आँख को लाल शीशे से सिर्फ नीली छाप दिखेगी, जो इस आँख के अनुकूल है (और अक्षर काला दिखेगा)। बाईं आँख को नीले शीशे से उसके अनुकूल सिर्फ लाल छाप दिखेगी। हर आँख सिर्फ उसी चित्र को देखती है, जो उसके लिए है। यहाँ वे ही स्थितियाँ हैं, जो व्योमदर्शी में होती हैं, अतः परिणाम भी वही होता है : व्योम-धर्मिता का भ्रम।

"जादुई परछाइयाँ"

उपरोक्त नियम पर ही जादुई परछाइयाँ आधारित हैं, जो कभी-कभी सिनेमा में दिखाई जाती हैं।

"जादुई परछाइयाँ" तब बनती हैं, जब पर्दे पर दिखाई जाने वाली आकृतियाँ व्योमधर्मी लगती हैं, अर्थात् जब पर्दे पर वे उभरी हुई व उत्तल दिखने लगती हैं। ऐसी परछाइयाँ देखने के लिए दर्शकों को दुरंगा चश्मा पहनना पड़ता है, क्योंकि इस भ्रम का कारण दुरंगा व्योमदर्शी है। जिस वस्तु की परछाई दिखानी हो, उसे पर्दे और साथ रखे लाल व हरे प्रकाश-स्रोतों के बीच में रखते हैं। पर्दे पर दो (लाल व हरी) परछाइयाँ मिलेंगी। दोनों ही एक-दूसरे को अंशतः ढक लेती हैं। दर्शक उन्हें नंगी आँखों से नहीं देखते हैं। उनकी आँखों पर लाल व हरे रंग के चौरस शीशों का चश्मा होता है।

चित्र 134. "छाया-चमत्कार" का रहस्य

अभी-अभी समझाया गया था कि इन परिस्थितियों में व्योम आकृतियों का भ्रम पैदा होता है, जिसके कारण वे पर्दे के तल से आगे की ओर उभरी हुई लगती हैं। "जादुई परछाइयों" का भ्रम काफी रोचक होता है : कभी लगता है कि फेंकी गई वस्तु ठीक दर्शकों के सिर पर गिरने वाली है, कभी कोई विशाल मकड़ा हवा में दर्शकों के सिर पर रेंगना शुरू कर देता है, जिससे बचने के लिए वे बरबस अपना सिर इधर-उधर घुमाने लगते लगते हैं या डर के मारे चीख पड़ते हैं। इसका उपकरण काफी सरल है; उसे चित्र 134 की सहायता से समझा जा सकता है। ह. व. ला. का अर्थ है हरा व लाल बल्ब (बाएँ); P और Q पर्दे व बल्बों के बीच रखी वस्तुएँ हैं; ह. व ला. अक्षरों के साथ p व q पर्दे पर इन वस्तुओं की लाल व हरी परछाइयाँ द्योतित करते हैं; P_1 व q_1 उन स्थानों को इंगित करते हैं, जहाँ हरे (ह) व लाल (ला) रंग के शीशे से देखने पर दर्शकों को वस्तुएँ P तथा Q नजर आएंगी। जब विशाल मकड़ा Q से P की ओर भागता है, तो दर्शकों को लगता है कि वह Q_1 से P_1 की ओर भागता है।

वैसे, पर्दे के पार जब कोई वस्तु प्रकाश-स्रोतों के निकट आती है, जिसके कारण उसकी छाया का आकार बढ़ने लगता है, तो भ्रम होता है कि वस्तु पर्दे से दर्शकों की ओर आ रही है। हर उड़ती चीज, जो दर्शकों को पर्दे से अपनी ओर आती दिखती हैं, दरअसल उल्टी दिशा में पर्दे से प्रकाशस्रोतों की ओर गतिमान होती है।

रंगों का रूपान्तरण

यहाँ एक प्रयोग के बारे में कुछ बताना चाहिए, जो लेनिनग्राद की "मनोरंजक विज्ञान प्रदर्शनी" के दर्शकों को बहुत पसन्द आया था। एक कोना अतिथि-कक्ष की भाँति सजा हुआ है। इसमें गद्दों के खोल गाढ़े नारंगी रंग के हैं; टेबुल हरे रंग का है और उस पर शीशे की सुराही में क्रेनबेरी का रस और भिन्न रंगों के फूल रखे हैं। आलमारियों

के खानों पर किताबें हैं, जिनकी जिल्दों पर रंग-बिरंगे अक्षर दिख रहे हैं। शुरू-शुरू यह सब साधारण श्वेत प्रकाश में दिखाया जा रहा है। अब स्विच थोड़ा घुमाया जाता है और श्वेत प्रकाश लाल प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। इससे कमरे का पूरा रूप रंग बदल जाता है : गद्दों के खोल गुलाबी हो जाते हैं, हरा टेबुल-क्लौथ गाढ़ा नीलारुण हो जाता है; रस पानी की तरह वर्णहीन हो जाता है; फूल अपना रंग बिरंगी लिखावट में से कुछ का नामोनिशान नहीं रह जाता।

स्विच थोड़ा और घुमाने पर कमरा हरे रंग से प्रकाशित हो जाता है और अतिथि कक्ष का रंग-रूप पुनः बदल जाता है।

ये रोचक रूपान्तरण पिण्डों के रंग सम्बन्धी न्यूटनी सिद्धान्त के दृष्टान्त हैं। सिद्धान्त कहता है कि पिण्ड की सतह उस रंग की, जिसे वह प्रकीर्णित करती है; प्रेक्षक की आँखों में फेंकती है। इंग्लैण्ड के ही एक अन्य भौतिकविद् टिंडल इस बात को निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं :

"जब हम वस्तुओं को श्वेत वर्ण के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं, तो लाल रंग हरी किरणों के अवशोषण से बनता है और हरा रंग-लाल किरणों के अवशोषण से। बाकी रंग दोनों ही स्थितियों में प्रकट होते हैं। मतलब है कि पिण्ड नकारात्मक रूप से रंग ग्रहण करते हैं : रंगीन दिखना किरणों के आत्मसातन का परिणाम नहीं, बहिष्करण का परिणाम है।"

हरा टेबुल-क्लोथ श्वेत प्रकाश में इसलिए हरा दिखता है, क्योंकि वह अधिकाँशतः हरे रंग और उसके निकटवर्ती स्पेक्ट्रमी रंगों को प्रकीर्णित करता है; अन्य किरणों को वह कम प्रकीर्णित करता है या उनके आधिकाँशत भाग को अवशोषित कर लेता है। यदि ऐसे टेबुल-क्लौथ पर लाल-बैंगनी रंग का प्रकाश डाला जाए, तो वह अधिकाँशतः बैगनी रंग को प्रकीर्णित करेगा और लाल रंग का अधिकाँश भाग अवशोषित कर लेगा। इसके कारण आँखों को गाढ़े अरूणाभ की संवेदना मिलेगी।

अतिथि कक्ष में होने वाले सारे वर्ण-रूपान्तरणों का कारण लगभग यही है। रहस्यमय लगती है सिर्फ क्रेनबेरी रस के रंगहीन होने की बात : लाल वर्ण का द्रव लाल प्रकाश में पानी की तरह रंगहीन क्यों हो जाता है? इसका राज यही है कि सुराही सफेद कागज पर रखी है और कागज हरे टेबुल-क्लौथ पर बिछा है। यदि कागज हटा लिया जाए, तो आप देखेंगे कि रस लाल रंग का ही है। रंगहीन वह सिर्फ सफेद कागज के साथ लगता है, जो लाल प्रकाश में स्वयं लाल हो जाता है। पर टेबुल क्लोथ के गाढ़े रंग के विरुद्ध हम कागज को आदतवश सफेद ही मानते हैं। और चूँकि द्रव का रंग कागज के मिथ्या श्वेत रंग से मिलता-जुलता है, इसलिए द्रव को भी हम सफेद मानने लगते हैं; हमारी आँखों के लिए यह क्रेनबेरी रस से वर्णहीन जल में परिणत हो जाता है।

ऐसा प्रयोग सरलीकृत रूप में आप भी कर सकते हैं। इसके लिए भिन्न रंगों के काँच जमा कीजिए और परिवेशी वस्तुओं को देखिए; परिणाम यही होगा। (ऐसे प्रभावों का वर्णन मेरी पुस्तक "क्या आप भौतिकी जानते हैं?" में किया गया है।)

किताब की ऊँचाई

अपने मेहमान या मित्र के हाथ में कोई पुस्तक देकर उससे पूछें कि पुस्तक को दीवार के सहारे खड़ कर देने पर वह किस ऊँचाई तक पहुँचेगी। जब वह बता दे (दूर से ही अन्दाज से, बिना खुद झुककर किताब को खड़ा किए), तो आप किताब उससे लेकर फर्श पर दीवार के सहारे खड़ी कर दें : पता चलेगा कि बताई गई ऊँचाई से आधी दूरी तक ही वह पहुँचती है।

प्रयोग अधिक सफल होगा, यदि वह खुद झुककर अपनी ऊँगलियों से ऊँचाई नहीं बताए, बल्कि शब्दों के सहारे आपको समझा दे। जाहिर है कि प्रयोग सिर्फ किताब के साथ ही नहीं, लैम्प, टोपी आदि किसी भी चीज के साथ किया जा सकता है। वस्तु सिर्फ ऐसी होनी चाहिए, जिसे हम आँखों के निकट से देखने के आदी हों।

इस गलत अंदाजे का कारण यह है कि जब किसी वस्तु को उसके अनुतीर (लम्बाई की दिशा में) देखते हैं, तो उसकी लम्बाई कुछ छोटी लगने लगती है।

घण्टाघर की घड़ी का आकार

आपके मेहमान नेजो गलती की है, वह हम लोग हर बार दुहराते हैं, जब हम ऊँचाई पर रखी किसी वस्तु को देखते हैं। यह गलती विशेषकर उस समय होती है, जब हम घण्टाघर की घड़ी का आकार अन्दाज से निर्धारित करने की कोशिश करते हैं। हम सभी जानते हैं कि वह काफी बड़ी होती है। पर इसके बावजूद भी उसका वास्तविक आकार हमारी धारणा से काफी बड़ा होता है। चित्र 135 में वेस्टमिनिस्टर अब्बाट (लन्दन) के घण्टाघर की प्रसिद्ध घड़ी का डायल दिखाया गया है, जब वह नीचे सड़क पर उतारा गया था।

चित्र 135. वेस्टमिनिस्टर अब्बाट के घण्टाघर की घड़ी के
आकार

उसकी तुलना में लोग-बाग कीड़ों की तरह लगते हैं। घण्टाघर के छेद को नीचे से देखकर विश्वास नहीं होता कि उसमें इतना बड़ा डायल अन्ट सकता है, पर डायल और छेद बराबर है।

सफेद और काला

चित्र 136 को दूर से देखकर बताएँ : निचले बिन्दे और ऊपर के किसी एक बिन्दे के बीच की खाली जगह में ऐसे ही कितने बिन्दे अन्ट सकते हैं - चार या पाँच? उम्मीद यही है कि आप कहेंगे : चार आराम से अन्ट जाएंगे, पाँचवे के लिए जगह थोड़ी कम पड़ेगी।

जब आप से कहा जाएगा कि इस स्थान में ठीक तीन बिन्दे अन्टेंगे, इससे एक भी ज्यादा नहीं,, - तो आपको विश्वास नहीं होगा। कागज और परकाल का प्रयोग करके खुद देख सकते हैं, कि आप गलत हैं।

इस विचित्र भ्रम को कि समान आकार के काले व सफेद स्थलों में से काला स्थल छोटा लगता है - "कॉति" (इर्रेडियेशन) कहते हैं। यह भ्रम हमारी आँखों की बनावट के अपूर्ण होने के कारण उत्पन्न होता है। हमारी आँखें भी प्रकाशिकीय उपकरण हैं, पर वे प्रकाशिकी का पूर्णतया माध्यम दृष्टि-पटल पर इतनी स्पष्ट आकृति नहीं बनाता, जितनी स्पष्ट आकृति अच्छी तरह फोकस किए गए कैमरे के दूधिए शीशे पर बनती है।

तथाकथित गोलाकार विपथन के कारण हल्के रंगों की हर आकृति एक कांतिमान छल्ले से घिरी होती है, जो उसका आकार बड़ा कर देती है। परिणामस्वरूप हल्के रंग के स्थल समान आकार वाले काले स्थलों की तुलना में बड़े लगते हैं।

चित्र 136. नीचे वाले गोले और ऊपर वालों में से प्रत्येक गोले
के बीच की दूरी ऊपरी गोलों के बाह्य कोरों की दूरी से अधिक
लगती है, पर दरहकीकत सारी दूरियाँ बराबर हैं।

महान कवि गेटे अपने "प्रकृति सिद्धान्त" में (जिसमें वे प्रकृति के पटु प्रेक्षक के रूप में आते हैं, पर भौतिकी के सिद्धान्तवेत्ता के रूप में नहीं) इस भ्रम के बारे में लिखते हैं :

"कृष्णाभ वस्तु समान आकार वाली गौर" (हल्के रंगों की) वस्तुओं से छोटी लगती हैं। यदि काली पृष्ठभूमि पर श्वेत वृत्त और श्वेत पृष्ठभूमि पर उसी व्यास का काला वृत्त एक साथ देखा जाए, तो काला वृत्त सफेद से 1/5 अंश छोटा लगेगा। यदि काला वृत्त इसी हिसाब से कुछ बड़ा कर दिया जाए, तो दोनों बराबर लगेंगे। चन्द्र हसिया को देखने पर लगता है कि वह बड़े व्यास वाले वृत्त से काटकर बनाया गया है और चाँद का अंधकारमय भाग, जो थोड़ा-थोड़ा दिखता रहता है (चाँद का "भभूती वर्ण" - या. पे.), अपेक्षाकृत कम व्यास वाले वृत्त से काटा हुआ लगता है। किसी चीज की किनारी से प्रकाश स्रोत देखने पर लगता है कि किनारी कुछ कटी-छँटी है। रेखनी के ऊपर से यदि मोमबत्ती की लौ झाँकती हो, तो रेखनी के उस स्थान पर कटाव सा दिखता है। उदय व अस्त होते वक्त सूर्य क्षितिज में मानों गड्ढा सा कर देता है।"

इन अवलोकनों में सब कुछ सही है। गलत सिर्फ एक बात है कि श्वेत वृत्त उसी व्यास वाले काले वृत्त से हमेशा एक निश्चित अंश द्वारा ही बड़ा दिखता है। वास्तविकता तो यह है कि श्वेत वृत्त काले से कितना अंश बड़ा दिखेगा, यह उस दूरी पर निर्भर करता है, जिससे वृत्तों को देखा जा रहा है। ऐसा क्यों होता है, इसका कारण अभी समझ में आ जाएगा।

चित्र 136 को आँखों से कुछ दूर कर दीजिए- भ्रम और भी शकितशाली हो जाएगा। इसका कारण यह है कि गौर स्थल को घेरने वाली प्रकाश छल्ले की चौड़ाई घटती बढ़ती नहीं है; हमेशा एक रहती है। इसलिए यदि

नजदीक से देखने पर वह किसी गौर स्थल की चौड़ाई 10 प्रतिशत बढ़ा देती है, तो दूर से देखने पर (जब स्थल की आकृति स्वयं छोटी हो जाती है) वही पट्टी उसकी चौड़ाई 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बढ़ा सकती है। आँखों की इसी विशेषता द्वारा अक्सर चित्र 137 के विचित्र गुण को समझाया जाता है। नजदीक से अवलोकन करने पर आप काली पृष्ठभूमि पर अनेक सारे श्वेत गोल बिन्दे देखेंगे। पर चित्र 137 के विचित्र गुण को समझाया जाता है। नजदीक से अवलोकन करने पर आप काली पृष्ठभूमि पर अनेक सारे श्वेत गोल बिन्दे देखेंगे। पर चित्र को दो-तीन कदम दूर से देखें। यदि आपकी दृष्टि बहुत अच्छी है, तो पाँच-छः कदम की दूरी से भी देख सकते हैं। आकृति बदल जाएगी; आपको श्वेत गोल बिन्दों के स्थान पर श्वेत षटकोण दिखने लगेंगे, जैसे मधुमक्खी के छत्ते में घर होते हैं।

चित्र 137. कुछ दूरी से देखने पर वृत्त षटकोण से लगते हैं।

चित्र 138. काले गोले दूर से षटकोण लगते हैं।

इस भ्रम का भी कारण काँति ही बताते हैं, पर जब से मैंने श्वेत पृष्ठ भूमि पर दूर से षटकोण प्रतीत होने वाले काले बिन्दों को देखा (चित्र 138), तबसे मुझे इस काँति वाली व्याख्या से संतोष नहीं होता, यद्यपि काँतिमान पट्टी यहाँ बिन्दों का आकार बढ़ाती नहीं, घटाती है। वैसे एक बात है कि दृष्टिभ्रमों की ज्ञात व्याख्याओं में से किसी को भी सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता। वे सभी अपूर्ण हैं। अधिकाँश भ्रमों की तो कोई व्याख्या ही नहीं है।[42]

कौनसा अक्षर अधिक काला है?

चित्र 139 की सहायता से हम अपनी आँखों के एक और दोष-निर्बिदुत्व (ऐस्टिग्मैटिज्म) - से परिचित हो सकते हैं। यदि आप इसे सरसरी निगाह से देखेंगे, तो शायद चारों अक्षर सबसे अधिक काला लग रहा है। अब चित्र को घुमा कर पार्श्व से देखें। आपको एक परिवर्तन नजर आएगा : जो अक्षर सबसे अधिक काला था, अब थोड़ा हल्क पड़ गया है और एक बिल्कुल दूसरा ही अक्षर सबसे अधिक काला है।

चित्र 139. एक आँख बन्द कर इस लिखावट को देखें।
इनमेंसे एक अक्षर अन्यों की अपेक्षा अधिक काला लगेगा।

यथार्थतः सभी अक्षर समान रूप से काले हैं। सिर्फ उन्हें बनाने वाली रेखाओं की दिशाएँ भिन्न हैं। यदि हमारी आँखें शीशों के बने महँगे लेंसों की तरह पूर्ण होतीं, तो रेखाओं की दिशाएँ अक्षरों के कालेपन पर असर नहीं डालतीं। पर आँख प्रकाश को हर दिशा में समान रूप से अपवर्तित नहीं करती और इसलिए हम उदग्र, क्षैतिज व आड़ी रेखाओं को समान स्पष्टता से नहीं देख पाते।

शाायद ही किसी आँखें इस दोष से मुक्त हों। कुछ लोगों में निर्बिदुत्व इतना बढ़ा हुआ होता है कि वह देखने में बिल्कुल बाधक बन जाता है; दृष्टि की तीक्ष्णता काफी कम हो जाती है। ऐसे लोगों को विशेष प्रकार का चश्मा लगाना पड़ता है।

आँखों में अन्य आन्तरिक दोष भी हैं, जिनसे कृत्रिम प्रकाशिकीय उपकरणों को मुक्त किया जा सकता है। हेल्महोल्ट्स ने आँख के इन दोषों को ही मद्देनजर रखते हुए कहा था : "यदि कोई चश्माफरोश मुझे ऐसे दोषों से युक्त कोई प्रकाशिकीय उपकरण बेचने की कोशिश करता, तो मैं कहता कि उसे कुछ आता नहीं है और विरोध के साथ उपकरण उसे वापस कर देता।"

आँख की बनावट से उत्पन्न होने वाले इन भ्रमों के अतिरिक्त और भी कई दूसरे भ्रम हैं, जो बिल्कुल दूसरे कारणों पर आधारित होते हैं।

चित्र 139. एक आँख बन्दकर इस लिखावट को देखें। इनमें
से एक अक्षर अन्यों की अपेक्षा अधिक काला लगेगा।

सजीव चित्र

[42] इसके बारे में सविस्तार देखें : मेरी पुस्तक 'दृष्टि भ्रम' - प्रकाशिकीय भ्रमों का एक चित्र संग्रह।

शायद ऐसा चित्र देखने का अवसर सबों को मिला होगा, जिसमें कोई व्यक्ति आपकी ओर देख रहा है और इतना ही नहीं, वह नजरों से आपका पीछा भी करता रहता है; जिधर आप जाते है, उसकी निगाह भी उधर ही घूम जाती है। ऐसी तस्वीरों की रोचक विशेषताओं को लोग काफी समय से जानते हैं; बहुतों को वे रहस्यमीयी भी लगती हैं। गोगल की कहानी "तस्वीर" में इसी तरह की एक स्थिति का एक सुन्दर वर्णन मिलता है :

"आँखें उस पर टिक गईं और लगता था कि उसके अतिरिक्त और कुछ भी देखना नहीं चाहतीं...तस्वीर सब कुछ को छोड़कर सिर्फ उसे देख रही थी; मानों तस्वीर की दृष्टि उसमें चुभ कर फँस गई थी..."

तस्वीरों में आँखों की इस रहस्मयी विशेषता के साथ अन्धविश्वास की कई कथाएँ जुड़ी हैं ("तस्वीर" कहानी को ही लें), पर राज यही है कि यह मात्र दृष्टि भ्रम है।

कारण इतना सा है कि इन तस्वीरों में आँख की पुतली आँख के ठीक बीच में बनी होती है। जब कोई व्यक्ति सीधा हमारी ओर देखता है, तो पुतली की स्थिति यही होती है। जब वह इधर-उधर देखता है, तो पुतली आँख के किनारे हो जाती हैं। जब हम तस्वीर बगल से देखते हैं, पुतलियाँ जाहिर है कि अपना स्थान नहीं बदलतीं; वे तस्वीर वाले व्यक्ति की आँखों के बीच ही में रहती हैं। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति की शक्ल भी हमारे सापेक्ष पहले की तरह ही रह जाती है। इसलिए हमें लगता है कि चित्र वाला व्यक्ति हमें मुड़-मुड़कर देख रहा है।

कुछ तस्वीरों की चकरा देने वाली अन्य विशेषताओं का भी यह कारण होता है। जैसे, चित्र का घोड़ा ठीक आप पर छलाँग लगाता सा दिखता है, आदमी आप पर ऊँगली उठाए होता है, आदि-आदि। इस तरह की एक तस्वीर चित्र 140 में दिखाई गई है। ऐसे चित्र विज्ञापन, प्रचार आदि में अक्सर प्रयुक्त होते रहते हैं।

चित्र 140. रहस्मय चित्र

यदि ऐसे भ्रमों के कारणों पर मनन किया जाए, तो स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कोई आश्चर्य या चमत्कार की बात नहीं है। उल्टा, आश्चर्य तब होता, जब ऐसी तस्वीरों में ये विशेषताएँ नहीं होतीं।

गड़ी रेखाएँ और अन्य दृष्टि भ्रम

चित्र 141 के पिनों में कोई विशेषता नजर नहीं आती। अब किताब उठाकर आँखों के सामने रखें, और एक आँख बन्दकर के इन रेखाओं को इसप्रकार से देखें, जैसे दृष्टि उनकी दिशा में फिसल रही हो। (दृष्टि को उस बिन्दु पर टिकाना है जहाँ इन रेखाओं को बढ़ाने पर उनका कटान बिन्दु मिले।) इस विधि से देखने पर लगता है किपिन कागज पर बने (या पड़े) हुए नहीं हैं; वे कागज में उदग्र गड़े हुए प्रतीत होते हैं। यदि आप अपना सिर थोड़ा बगल ले जाएँगे, तो देखेंगे कि पिन भी उसी ओर थोड़ा झुक गए हैं।

इस भ्रम को परिप्रेक्ष्य (व्यौम-धर्मिता) के नियम से समझाया जा सकता है : चित्र में रेखाएँ इस प्रकार से खींची गई हैं, जैसे कागज पर उदग्र गड़े पिन प्रक्षिप्त (चित्रित) किए जाते हैं।

भ्रम दिखना सिर्फ दृष्टि-दोष ही नहीं है। इससे कई लाभ भी हैं, जिसके बारे में लोग अक्सर भूल जाते हैं। यदि आँखें इस तरह के भ्रमों में नहीं पड़तीं, तो चित्रकारी सम्भव नहीं होती और हम चित्रकला का पूर्णरूप से रसास्वादन नहीं कर पाते। चित्रकार अक्सर इन दृष्टि-दोषों का उपयोग करते हैं।

चित्र 141. एक आँख से (दूसरी बन्द करके) उस बिन्दु के करीब गौर से देखें, जहाँ ये रेखाएँ बढ़ाने पर मिलेंगी। आपको कागज पर अनेक गड़े हुए पिन दिखेंगे। चित्र को हल्के से इधर-उधर हिलाने पर लगेगा कि पिन हिलडुल रहे हैं।

चित्र 142. अक्षर सीधे हैं।

चित्र 143. वक्र रेखाएँ सर्पिलाकार लगती है, पर ये वृत्ताकार हैं। सुई की नोक किसी रेखा पर घुमाकर देख ले सकते हैं।

चित्र 144. दूरी AB बड़ी लगती है AC से, पर दोनों बराबर हैं।

चित्र 145. पट्टियों को काटने वाली आड़ी रेखा टूटी-टूटी सी लगती है।

चित्र 146. काले और सफेद वर्ग बराबर हैं। वृत्त भी बराबर हैं।

"इसी धोखे पर सारी चित्रकला आधरित है, - अपन प्रसिद्ध "विभिन्न भौतिक घटनाओं के बारे में पत्र" में XVIII वीं शती के प्रतिभावान वैज्ञानिक एइलर लिखते हैं। यदि हम सिर्फ सच्चाई ही देखते, तो यह कला (अर्थात चित्रकला) होती ही नहीं, या होती भी तो हम उसके लिए अन्धे होते। चित्रकार रंगों को मिलाने में सारी निपुणता खर्च कर देता और हम कहते : इस तख्ते पर लाल धब्बा है; यह नीला धब्बा है, यहाँ काला है और वहाँ कुछेक सफेद रेखाएँ हैं; सब एक समतल पर स्थित है और आगे-पीछे की दूरियों में कोई अन्तर नहीं दिख रहा है। इसतरह, एक भी वस्तु का चित्र बनना सम्भव नहीं होता। हर चीज का चित्र कागज पर सपाट लिखावट सा होता.... यदि हमारी दृष्टि पूर्ण (दोष रहित) होती, तो क्या हम दया के पात्र नहीं होते कि हम इतनी लाभदायक व सुखकर कला का कोई रसास्वादन नहीं कर सकते?"

चित्र 147. इस आकृति में सफेद पट्टियों के कटान स्थलों पर भूरे व वर्गाकार धब्बे लुक-छिप कर प्रकट होते रहते हैं। पर असलियत में सफेद पट्टियाँ पूरी तरह से सफेद हैं। यदि विश्वास न हो, तो कागज से किसी पट्टी के अगल-बगल के काले वर्गों को ढककर देख लें। भूरे धब्बे वर्ण-वैषम्य के परिणाम हैं।

चित्र 148. काली पट्टियों के कटान स्थलों पर भूरे-से धब्बे दिखते हैं।

प्रकाशिकीय भ्रम बहुत सारे हैं, और उनसे पूरी किताब भरी जा सकती है।[43] इनमें से कई तो सर्वविदित हैं और कइयों को लोग बिल्कुल नहीं जानते। यहाँ प्रकाशिकीय भ्रमों के ऐसे ही नमूने प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनका लोगों का बहुत कम ज्ञान है। जालीदार पृष्ठभूमि पर रेखाओं से सम्बन्धित दृष्टि-भ्रम (चित्र 142 व 143) काफी प्रभावशाली हैं। आँखों को बिल्कुल विश्वास नहीं होता कि चित्र 142 में सारे अक्षर सीधे हैं। चित्र 143 में और भी कठिनाई से विश्वास होता है कि हमारे सामने सर्पिल नहीं, इककेन्द्री (एक सामूहिक केन्द्र वाले) वृत्त हैं। सिर्फ प्रत्यक्ष परीक्षण द्वारा आप यह देख सकते हैं। मिथ्या सर्पिल की किसी भी शाखा पर पेन्सिल की नोक रखकर घुमाएँ। शीघ्र ही स्पष्ट हो जाएगा कि आप न तो केन्द्र के निकट आ रहे हैं और न उससे दूर जा रहे हैं; आप वृत्त की परिधि पर घूम रहे हैं। इसी तरह परकाल की सहायता से आप देख सकते हैं कि चित्र 144 में रेखा रेखा से छोटी नहीं है। चित्र 145, 146, 147, से उत्पन्न भ्रमों के बारे में उन चित्रों के नीचे पढ़ सकते हैं। चित्र 147 का भ्रम कितना प्रभावशाली है, इसका पता एक मजेदार घटना से चलात है : इस पुस्तक के पिछले प्रकाशनों में से एक के प्रकाशक को जब इस चित्र का जस्तकरी मुद्रण दिखाया गया, तो वह उसे पुनः छापेखाने में भेजने लगा, ताकि सफेद पट्टियों के कटान-स्थलों पर दिखने वाले गन्दे भूरे धब्बों को साफ कर दिया जाए। अच्छा हुआ कि मैं संयोगवश इसी समय वहाँ पहुँच गया और प्रकाशक महोदय को समझा कर रोकने में सफल हो गया।

निकट दृष्टि की दृष्टि में

निकट दृष्टि वाले लोग बिना चश्मे के ठीक से नहीं देख पाते; पर वे क्या देखते हैं, वस्तुएँ उन्हें कैसी दिखती हैं - इसके बारे में सही दृष्टि वाले लोग बहुत कम ही कुछ जानते हैं। पर निकट दृष्टि वालों की संख्या बहुत अधिक है और वे परिवेश को किस रूप में देखते हैं, यह जानना लाभदायक होगा।

प्रथमतः, निकट दृष्टि वाला व्यक्ति (जाहिर है कि बिना चश्मे के) कभी भी स्पष्ट आकृतियाँ नहीं देखता; उसके लिए सभी वस्तुओं की परिरेखाएँ अस्पष्ट व धुली हुई होती हैं। अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति जब पेड़ को देखता है, तो पत्ते-पत्ते को अलग व स्पष्ट देखता है। निकट दृष्टि वाला व्यक्ति सिर्फ एक बेतरतीब हरा पिण्ड देखता है, जिसमें

[43] मेरी उपरोक्त पुस्तक 'दृष्टि-भ्रम' में 60 से अधिक प्रकाशिकीय भ्रम संग्रहित हैं।

उसे अजीबोगरीब आकृतियाँ नजर आ सकती हैं; उसके लिए छोटी वस्तुएँ और छोटे विवरण एकदम ही लुप्त हो जाते हैं।

निकट दृष्टि वालों को दूसरों की शक्लें कुछ कम उम्र की तथा अधिक आकर्षक लगती हैं; अच्छी दृष्टि वालों की तरह वे महीन झुर्रियां और कई अन्य दोष नहीं देख पाते; चमड़े का भोण्डा लाल रंग (प्राकृतिक या कृत्रिम) उन्हें कोमल अरूणाभ लगता है। हम अपने कुछ परिचितों के भोलेपन पर आश्चर्य करते हैं कि वे लोगों की उम्र का अन्दाजा लगाने में बीस-बीस साल तक की गलती कर जाते हैं; जिसे हम सुन्दर नहीं कहते, उसे वे सुन्दर कह देते हैं। कभी-कभी वे बेशर्मी से हमारी ओर देखने लगते हैं, जैसे कोई रहस्य जान लेना चाहते हों। पर इन सबका कारण यही है कि वे निकट दृष्टि वाले हैं।

"लाइसियम (पुराने जमाने के अध्ययन केन्द्र) में मुझे चश्मा लगाने की मनाही थी, - पुश्किन के मित्र कवि देलविग अपने संस्मरण में लिखते हैं, - पर इससे स्त्रियाँ कितनी मनोहर प्रतीत होती थीं और पढ़ाई खत्म करने के बाद मुझे कितनी निराशा हुई थी!" जब निकट दृष्टि वाला व्यक्ति (बिना चश्मा लगाए) आप से बात करता है, तो वह आपकी शक्ल नहीं देखता; देखता भी है, तो वह चीज़ नहीं, जो आप सोचते होंगे : उसके सामने अस्पष्ट आकृति होती है। हो सकता है कि एक घण्टे बाद वह आपको सड़क पर देखे और पहचान न पाए। निकट दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को उनके रूप रंग से उतना नहीं पहचानता जितना उनकी आवाज के आधार पर। आप कह सकते हैं कि विकसित श्रवण-शक्ति दृष्टिदोष का पूरक बन जाती है।

निकट दृष्टि वालों को रात की दुनिया कैसी लगती है, यह भी कम रोचक नहीं है। रात में सभी प्रकाशमान वस्तुएँ - लैम्प, प्रकाशित खिड़कियाँ आदि उन्हें काफी बड़े आकारों में दिखती हैं। दुनिया उनके लिए चमकीले धब्बों, काले व धुँधले सिलुएटों आदि से भरे बेतरतीब चित्र में परिणत हो जाती है। सड़क पर खम्भों की रोशनी को वे दो-तीन बड़े-बड़े प्रकाश धब्बों के रूप में देखते हैं, जो उनकी दृष्टि में सड़क का बाकी सारा भाग ढक लेते हैं। सामने से आती मोटर-कार की जगह वे दो चमकीले गोल घेरे देखते हैं, जिनके पीछे एक काला पिण्ड दौड़ता होता है।

निकट दृष्टि वालों को रात में आकाश भी कुछ और ही नजर आता है। वे सिर्फ बड़े तारों को ही देख पाते हैं, अतः उन्हें कुछेक हजार की जगह कुछेक सौ तारे ही नजर आते हैं, और वे भी प्रकाश के बड़े-बड़े लोंदो जैसे नजर आते हैं। चाँद उन्हें काफी बड़ा व निकट दिखता है। अर्द्ध चन्द्र उनके लिए बिल्कुल विचित्र रूप रंग का होता है।

आकारों के प्रतीयमान परिवर्धन व इन विकृतियों का कारण निकट दृष्टि वाले की आँख की विशेष बनावट में छिपा होता है। ऐसे आदमी की आँख काफी गहरी होती हैं; इतनी गहरी कि अपवर्तन के बाद प्रकाश किरणें रेटीना (दृष्टिपटल) पर नहीं उससे कुछ पहले ही इकत्रित हो जाती है। रेटीना तक सिर्फ अपसृत किरण पुंज पहुँचती हैं, जिसके कारण वस्तुओं का बिम्ब अस्पष्ट बनता है।

अध्याय 10

ध्वनि और श्रवण-शक्ति

प्रतिध्वनि की खोज

किसी ने देखा नहीं,
पर सुना उसे सबने है;
अंग नहीं, पर जीती है,
जीभ नहीं और चीखती है।

निक्रासव

अमरीकी व्यंग्यकार मार्क ट्वेन की कहानियों में से एक में एक आदमी प्रतिध्वनियों का संग्रह करता होता है। वह हर उस स्थान को खरीद लेता था, जहाँ की प्रतिध्वनि में कोई विशेषता थी, या वह कई बार दुहराई जाती थी।

"पहले उसने जार्जिया प्रान्त में एक प्रतिध्वनि खरीदी, जो चार बार शब्दों को दुहराती थी। इसके बाद मेरीलैण्ड में छः बार स्वरों को दुहराने वाली प्रतिध्वनि और मैंने में 13- बार वाली खरीदी। अगली खरीदारी में कंजास 9-बार वाली प्रतिध्वनि आई। इसके बाद टेनेसी की 12 बार वाली, जो सस्ते में मिल गई थी, खरीदी गई। सस्ते में, क्योंकि उसमें काफी कुछ मरम्मत करनी थी : इसमें मुख्य चट्टान अपनी जगह से धँस गई थी। उसने सोचा कि इस पर कोई दीवार बना कर प्रतिध्वनि को वापस लौटाया जा सकता है, पर इंजीनियर का कभी प्रतिध्वनियों से पाला नहीं पड़ा था, अतः उसने स्थान को और भी बिगाड़ दिया। मरम्मत के बाद जगह इसी लायक रह गई थी कि वहाँ सिर्फ बहरे-गूँगे शरण ले सकें..."

यह तो मजाक है, पर कई बार दुहराई जाने वाली प्रतिध्वनियाँ सचमुच में होती हैं। उनमें से अधिकाँश पहाड़ी जगहों पर होती हैं। कई तो विश्व भर में विख्यात हैं।

कुछ प्रसिद्ध प्रतिध्वनियों का वर्णन करते हैं। इंग्लैण्ड में वुडस्टौक किले में प्रतिध्वनि 17 अक्षरों को दुहरा सकती है। हाल्बेरश्टाट के पास डेरेनबुर्ग किले के अवशेषों में 27 अक्षरों को दुहराने वाली प्रतिध्वनि थी, पर बम से एक दीवार के ध्वँस हो जाने के कारण वह सदा के लिए चुप हो गई। चेकोस्लोवाकिया में आदेर्सबाख के पास गोलाकार चट्टानें एक स्थान-विशेष 7 से अक्षरों की प्रतिध्वनि दुहरा सकती हैं। लेकिन यहाँ से चन्द कदम हट जाने पर बन्दूक की आवाज भी प्रतिध्वनित नहीं होती। मिलान के निकट एक किले में (जो अब नहीं है) प्रतिध्वनियों की संख्या बहुत बड़ी थी : उसके एक भाग में गोली चलाने पर धमाके की आवाज 40-50 बार सुनाई देती थीं और चिल्लाकर कहा गया शब्द - 30 बार।

ऐसे स्थानों को ढूँढना कोई आसान काम नहीं है, जहाँ साफ-साफ एक बार भी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती हो। पर सोवियत संघ में ऐसे स्थान, खोज निकालना अपेक्षाकृत सरल है। यहाँ जंगलों से घिरे अनेक मैदान व घाटियाँ हैं। किसी भी ऐसे मैदान में जोर से कुछ बोलने पर जंगल के पेड़ों की दीवार से टक्रा कर स्पष्ट ध्वनि सुनाई दे सकती है।

पहाड़ियों में तरह-तरह की प्रतिध्वनियाँ मिलती हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है। पहाड़ी-स्थलों पर प्रतिध्वनि सुनना अधिक कठिन है, बनिस्बत कि जंगल से घिरे समतल पर।

आप अभी समझ जाएंगे कि ऐसा क्यों होता है। प्रतिध्वनि और कुछ नहीं, सिर्फ ध्वनि तरंग है, जो किसी बाधा से टकरा कर परावर्तित हो जाती है। प्रकाश के परावर्तन के तरह इसमें भी "ध्वनि-किरणों" के आपतन व परावर्तन कोण बराबर होते है (ध्वनि-किरण उस दिशा को कहते है, जिधर ध्वनि-गतिमान होती हैं)।

अब कल्पना करें कि आप पहाड़ के नीचे खड़े हैं (चित्र 149) और ध्वनि को परावर्तित करने वाली बाधा AB आप से कुछ ऊपर ऊँचाई पर है। आसानी से देख सकते हैं कि Ca, Cb, Cc रेखाओं पर भ्रमण करने वाली ध्वनि-तरंगे परावर्तन के बाद आपके कान तक नहीं, बल्कि aa, bb, cc, दिशाओं में चली जाती हैं। दूसरी बात होती यदि आप उसी ऊँचाई पर उठ आते जिस पर बाधा है (चित्र 150) या थोड़ा ऊपर भी उठ आसकते हैं। ध्वनि Ca, Cb,

दिशाओं में जाकर पुनः आपके पास भंजित रेखाओं CaaC या CbbC पर लौट आएगी। इसके लिए ध्वनि को एक या दो बार जमीन से भी परावर्तित होना पड़ सकता है। दोनों स्थानों के बीच यदि जमीन गहरी हो, तो और भी अच्छा है; वह नतोदर दर्पण की तरह काम करती है। पर यदि C और B स्थानों के बीच का स्थान उत्तल होगा, तो प्रतिध्वनि काफी क्षीण होगी और हो सकता है कि वह आपके कानों तक पहुँचे ही नहीं; ऐसी सतह उत्तल दर्पण का काम करती है।

ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी स्थल पर प्रतिध्वनि को खोजने के लिए कुछ कौशलता की आवश्यकता पड़ती है। उपयुक्त स्थान के चयन हो जाने के बाद भी वहाँ प्रतिध्वनि उत्पन्न करना कोई आसान काम नहीं है। प्रथमतः, बाधा के बहुत निकट नहीं खड़ा होना चाहिए : ध्वनि का पथ काफी लम्बा होना चाहिए, ताकि उसे जाकर लौटने में कुछ समय लगे, अन्यथा प्रतिध्वनि ध्वनि के साथ लीन हो जाएगी। ध्वनि 340 मी प्रति सेकेण्ड की क्षिप्रता से चलती है, अतः बाधा से 85 मी की दूरी पर खड़े रहने से प्रतिध्वनि आधे सेकेण्ड के बाद सुनाई देगी।

यद्यपि किसी भी प्रकार की ध्वनि की प्रतिध्वनि उत्पन्न हो सकती है, चित्र 149. प्रतिध्वनि नहीं सुनाई देगी।

चित्र 150. स्पष्ट प्रतिध्वनि।

उसकी स्पष्टता एक जैसी नहीं होती। घनघोर जंगल में कोई पशु गर्ज रहा है या तुरंगनाद हो रहा है, बिजली कड़क रही है या पहाड़ी पार कोई बाला गीत गा रही है - इन सबकी प्रतिध्वनियाँ समान नहीं होंगी। ध्वनि जितनी तीखी होगी, प्रतिध्वनि उतनी ही स्पष्ट होगी। सबसे अच्छी प्रतिध्वनि ताली बजाने की होती है। आदमी का स्वर इतना अच्छा काम नहीं आता, जितना स्त्रियों व बच्चों का। उच्च स्वर अधिक स्पष्ट प्रतिध्वनि देता है।

नापने के फीते की जगह ध्वनि

हवा में ध्वनि-प्रसरण का वेग ज्ञात होने से दुर्गम स्थल पर स्थित वस्तुओं की दूरी नापी जा सकती है। जूल वेर्न के उपन्यास "पृथ्वी केन्द्र की यात्रा" में ऐसी एक घटना का वर्णन आता है। भूगत यात्रा के वक्त दो यात्री -प्रोफेसर और उनका भतीजा - एक दूसरे को खो देते हैं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आखिर जब वे एक दूसरे की आवाज सुनने लगे, तो उनके बीच इसप्रकार की बातचीत हुईः

"चाचा जी! - मैंने चिल्लाकर कहा (कहानी भतीजे की ओर से कही जा रही है)।

क्या है, बेटा? कुछ क्षण बाद मैंने उत्तर सुना।

कितनी दूर हैं हम लोग एक दूसरे से?

यह जानना कठिन नहीं है।

आपका क्रोनोमीटर ठीक-ठाक है?

हाँ।

उसे हाथ में ले लीजिए। मेरा नाम जोर से पुकारें और बोलना शुरू करने के क्षण सेकेण्ड की सुई ठीक-ठीक देखकर याद कर लें। जैसे ही आपकी आवाज मुझ तक आएगी, मैं भी जोर से अपना नाम दुहराऊँगा। जब आप मेरी आवाज सुनेंगे, पुनः सेकेण्ड की सुई देख लेंगे।

अच्छी बात है। तब मेरे पुकारने और तुम्हारा उत्तर सुनाई देने में जो समय लगा है, उसका आधा समय लगता है ध्वनि को यहाँ से तुम तक पहुँचने में। तुम तैयार हो न?

हाँ।

रेडी! तुम्हारा नाम पुकार रहा हूँ।

मैंने दीवार से कान लगा लिया। जैस ही शब्द "आक्सेल" (कहानी कहने वाले का नाम) सुनाई दिया, मैंने झट से उसे दुहरा दिया और इन्तजार करने लगा।

चालिस सेकेण्ड, - चाचा ने कहा, - अतः तुम्हारी आवाज मुझ तक 20 सेकेण्ड में पहुँची है। और चूँकि ध्वनि एक सेकेण्ड में तिहाई किलोमीटर तय करती है, हम लोग एक दूसरे से लगभग सात किलोमीटर की दूरी पर है।"

यदि इस अवतरण की बातें आप अच्छी तरह से समझ गए हैं, तो आप एक ऐसे प्रश्न को स्वयं हल करने की कोशिश करेंः दूर खड़े इन्जन से सीटी देने वाले सफेद वाष्प को मैंने जिस क्षण देखा, उसके ठीक डेढ़ सेकेण्ड बाद मुझे आवाज सुनाई दी। इन्जन से मैं कितनी दूर था?

ध्वनि-दर्पण

जंगल की दीवार, ऊँची चहार दीवारी, मकान, पर्वत आदि जैसी बाधाएँ, जो ध्वनि को परावर्तित कर सकती हैं, उसके लिए दर्पण का काम करती हैं। वे ध्वनि को उसी प्रकार परावर्तित करती हैं, जैसे चौरस दर्पण प्रकाश को परावर्तित करता है।

ध्वनि-दर्पण सिर्फ समतल ही नहीं, वक्र भी होते हैं। नत ध्वनि-दर्पण रिफ्लेक्टर (परावर्तक) की तरह ध्वनि किरणों को अपनी नाभि पर इकत्रित करता है।

इससे सम्बन्धित एक रोचक प्रयोग आप दो गहरी प्लेटों से कर सकते हैं। एक प्लेट को टेबुल पर रख लें और उसकी पेंदीसे कुछ सेन्टीमीटर ऊपर जेब-घड़ी पकड़े रहें। दूसरी प्लेट चित्र 151 की भाँति कान के पास रखें। यदि घड़ी, कान और प्लेटों की आपसी स्थितियाँ सही चुनी गई हैं (इन वस्तुओं को कई बार इधर-उधर खिसका कर सही स्थ्ज्ञान "टटोलते" हैं), तो आपको टिकटिक की आवाज उस प्लेट से आती सुनाई देगी, जिसे आप कान के पास पकड़े हैं। यदि आँखें बन्द कर ली जाएँ, तो भ्रम और भी स्पष्ट हो जाएगा। इस स्थिति में कहना मुश्किल हो जाएगा कि किस हाथ में घड़ी है और किस में प्लेट।

चित्र 152. प्राचीन किले में ध्वनि-चमत्कार-बोलती मूर्तियाँ (अफानासी कीरखेर, 1560 की पुस्तक से)।

मध्य युगीन किलों के निर्माता ध्वनि के गुणों के आधार पर तरह-तरह के अजूबे बनाया करते थे। नत ध्वनि-दर्पण की नाभि या दीवार में छिपी ध्वनि-वाहक नली के एक सिरे पर कोई प्रतिमा रख दी जाती थी। चित्र 152 में XVI वी शती की एक पुरानी किताब से लिया गया एक आरेख दिखाया गया है, जो ऐसी ही एक युक्ति का रहस्य बताता है। बाहर सड़क पर से आवाजें दीवार में छिपी ध्वनि-वाहक नली द्वारा भीतर आती हैं और वहाँ से गुंबज पर परावर्तित होते हुए प्रतीमा की होठ तक पहुँच जाती हैं1 दीवारों में जगह-जगह छिपी बड़ी-बड़ी ध्वानि-वाहक नलियाँ बाहर की आवाजें भीतर रखी प्रतिमाओं के होठों तक लाती हैं। इन युक्तियों के कारण किले के भीतर स्थित लोगों को लगता है कि मूर्तियाँ रो रही हैं, बातें कर रही हैं, आदि।

थियेटर कक्षों में ध्वनि

जो लोग संगीत कार्यक्रम नाटक आदि देखने के लिए अक्सर थियेटरों में जाया करते हैं, वे जानते हैं कि कुछ कक्षों में ध्वनि-संचरण अच्छा होता है और कुछ में बुरा। किसी कक्ष में कलाकारों की आवाज किसी भी दूरी से सुनाई देती है, तो किसी में नजदीक से भी अस्पष्ट सुनाई देती है। इन बातों का कारण अमरीकी भौतिकविद् वुड की पुस्तक "ध्वनि तरंगे और उनका उपयोग" में बहुत अच्छी तरह समझाया गया है।

"ध्वनि-स्रोत के चुप हो जाने पर भी भवन के भीतर देर तक उसकी आवाज सुनाई देती रहती है। परावर्तनों के कारण वह भवन के भीतर ही भीतर चक्क्र काटती रहती है। इस बीच यदि ध्वनि-स्रोत चुप नहीं रहता, अर्थात उससे और भी नई-नई ध्वनियाँ निकलती रहती हैं, तो सुनने वाले उन्हें सही क्रम में ग्रहण नहीं कर पाते और इसलिए उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता। उदाहरणार्थ, यदि ध्वनि तीन सेकेण्डों तक भ्रमणशील रहती है और वक्ता एक सेकेण्ड में तीन अक्षरों की गति से बोल रहा है, तो 9 अक्षरों वाली ध्वनि-तरंगे कक्ष में एक साथ घूमना शुरू कर देंगी और वहाँ इतना बेतरतीब शोर होगा कि श्रोता कुछ समझ नहीं सकेंगे।"

इन परिस्थितियों में वक्ता अक्सर जोर से बोलने की कोशिश करते हैं और शोर उल्टा बढ़ जाता है। यहाँ अधिक उपयुक्त होगा कि वे धीरे-धीरे धीरे, स्पष्ट कुछ धीमे स्वर में बोलें।

अच्छे ध्वनि-संचरण वाले हौल का निर्माण अभी हाल तक सिर्फ संयोग की बात मानी जाती थी, पर आज के जमाने में अनुनादन (रिवर्बरेशन) के कारण ध्वनि की अवाँछनीय लम्बाई से संघर्ष की उत्तम विधियाँ ज्ञात हैं और स्पष्ट श्रवण कोई समस्या नहीं रह गई है। इस पुस्तक में इन्हें सविस्तार देखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सिर्फ वास्तु इंजिनयरों के काम आएगी। इतना बता देते हैं कि बुरे ध्वनि संचरण के साथ संघर्ष करने के लिए ध्वनि-शोषक सतहों का निर्माण करना पड़ता है। सबसे अच्छा ध्वनि शोषक खुली खिड़की है (जैसे प्रकाश शोषक का

कार्य कोई भी छेद करता है)। खुली खिड़की का एक वर्ग मीटर जितनी ध्वनि शोषित करती है, उसे ध्वनि-शोषण की इकाई मानते हैं। थियेटर के दर्शक भी खुद बहुत अच्छे ध्वनि-शोषक होते हैं, पर खुली खिड़की की तुलना में सिर्फ आधी ध्वनि ही सोख पाते हैं। इसका मतलब है कि हर आदमी आधे वर्ग मीटर खुली खिड़की की बराबरी करता है और यदि एक भौतिकविद् का कहना बिल्कुल सही है कि "श्रोता वक्ता के भाषण को बिल्कुल सीधे अर्थों में सोखते हैं," तो यह भी गलत नहीं है कि वक्ता के लिए खाली हौल बिल्कुल सीधे अर्थों में कष्टकर है।

यदि ध्वनि-शोषक बहुत अधिक है, तो इससे भी सुनने में कठिनाई होती है। प्रथमतः, अत्यधिक अवशोषण ध्वनि को क्षीण कर देता है, और, दूसरे, अनुनादन को इतना कम कर देता है कि स्वर का तारतम्य छिन्न हो जाता है और वह सूखा-सूखा सा लगता है। इसलिए यदि बहुत लघु अनुनादन भी वांछनीय नहीं है। अनुनादन की इष्टतम दीर्घता हौल के आकार पर निर्भर करती है, अतः उसे बनाते वक्त ही इसका ख्याल रखना चाहिए।

थियेटर में भौतिकी के दृष्टिकोण से एक और रोचक चीज होती है, जिसे अनुप्रेरक कक्षिका कहते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि उसका रूप व आकार सभी थियेटरों में एक सा होता है। इसका कारण यह है कि कक्षिका अपने आप में एक भौतिकीय उपकरण है। उसका गुम्बज ध्वनि के लिए नतोदर दर्पण का काम करता है। इसके दो कार्य हैं : अनुप्रेरक जब फुसफुसाता हुआ कलाकारों को उनके संभाषण की याद दिलाता है, तो उसकी आवाज को यह गुम्बज दर्शकों की ओर जाने से रोकता है और उसे रंगमंच की ओर भेजता है।

सागर तल से प्रतिध्वनि

दीर्घकाल तक आदमी को प्रतिध्वनि से कोई लाभ नहीं था, लेकिन अब उसका उपयोग सागरों की गहराई नापने में होने लगा है। यह विधि संयोगवश आविष्कृत हुई थी। 1912 ई में "टिटानिक" नामक एक समुद्री जहाज अपने सारे यात्रियों समेत डूब गया। दुर्घटना का कारण था एक विशाल हिमखण्ड, जिससे जहाजकी टक्कर हो गई थी। रात को या कुहासे के समय कहीं फिर ऐसी दुर्घटना न हो जाए, इसके लिए प्रतिध्वनि का उपयोग किया गया, जो रास्ते में पड़े हिमखण्ड का पता दे सके। प्रयत्न असफल रहा, पर इसी चक्कर में प्रतिध्वनि से समुद्र की गहराई नापने का विचार उत्पन्न हुआ।

चित्र 153 में ऐसी युक्ति का आरेख दिखाया गया है। जहाज के पार्श्व में पेंदे के पास से बारूद की गोली दागी जाती है, जिससे काफी तीक्ष्ण ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि पानी से होता हुआ सागर तल तक पहुँचता है और उससे परावर्तित होकर पुनः जहाज तक आता है। पेंदे में लगा एक अत्यंत संवेदनशील अभिग्राहक प्रतिध्वनि को ग्रहण करता है। ध्वनि भेजने और प्रतिध्वनि ग्रहण करने के बीच के अन्तराल को उच्च कोटि की घड़ी द्वारा नापा जाता है। पानी में ध्वनि को वेग ज्ञात है, अतः कलन द्वारा ध्वनि परावर्तित करने वाली बाधा की दूरी (अर्थात् सागर तल की गहराई) ज्ञात कर लेना कठिन नहीं है।

चित्र 153. ध्वनि की सहायता से गहराई मापना।

इस विधि को प्रतिध्वनण (एक्को साउडिंग) का नाम दिया गया और इसने सागर की गहराई नापने की विधि में क्राँति पैदा कर दी। पुरानी विधियों का उपयोग करने के लिए जहाज को एक ही जगह पर कॉफी देर तक रोक कर रखना पड़ता था। चक्के पर लपेटी रस्सी से लंगर बाँध कर नीचे गिराना पड़ता था (150 मी प्रति मिनट की दर से)। रस्सी नीचे लटकाने व उसे पुनः वापस लपेटने में काफी समय लगता था। 3 किमी. की गहराई नापने में करीब पौन घण्टे लग जाते थे। प्रतिध्वनि की सहायता से गहराई चन्द सेकेण्डों में ज्ञात हो जाती है और जहाज को रोकना भी नहीं पड़ता। परिणाम काफी सही और विश्वस्त होते हैं। मापन-त्रुटि चौथाई मीटरसे अधिक की नहीं होती (इसी के लिए तो समय के अन्तराल को सेकेण्ड के 3000 वें अंश की शुद्धता से नापा जाता है)।

आधुनिक प्रतिध्वनण में साधारण ध्वनि नहीं, श्रव्यातीत प्रचण्ड पराध्वनि का उपयोग किया जाता है, जिसकी कम्पनावृत्ति प्रति सेकेण्ड कुछेक मिलियन तक की होती है। ऐसी ध्वनि उच्च प्रत्यावर्ती विद्युत क्षेत्र में रखे स्फटिकपत्र द्वारा प्राप्त की जाती है।

भनभनाहट

उड़ने वाले कीट पतंगे अक्सर भनभनाहट की ध्वनि क्यों उत्पन्न करते हैं? उनके पास अधिकाँशतः इसके लिए कोई विशेष अंग भी नहीं होता। भनभनाहट का कारण इतना ही है कि उड़ते वक्त उनके पंखों की फड़फड़ाहट

कुछेक सौ तक पहुँच जाती है। उनका पंख इस स्थिति में कंपनरत पत्र माना जा सकता है और हम जानते हैं कि पर्याप्त आवृत्ति से कंपन करने वाला यंत्र (अक्सर एक सेकेण्ड में 16 बार), एक विशेष तारता की ध्वनि देता है।

अब आप जानना चाहेंगे कि पतंगों के पंखों की आवृत्ति कैसे ज्ञात की जाती है। इसके लिए कानों से सुनना पर्याप्त है कि वह किस तारता का स्वर उत्पन्न कर रहा है। हर तारता के लिए एक निश्चित कंपनावृत्ति होती है। "काल-विशालक" (दे. अध्याय 1) से पता चला है कि किसी भी पतंगे के पंखों की फड़फड़ाहट की आवृत्ति लगभग हमेशा समान रहती है। उड़ान नियंत्रित करते वक्त पतंगा सिर्फ फड़फड़ाहट का "आयाम" बदलता है या पंखों का झुकाव बदलता है। सेकेण्ड में फड़फड़ाहट की संख्या सिर्फ ठण्ड के कारण बढ़ती है। इसलिए भनभनाहट की तारता (हर उड़ने वाले कीड़े के लिए) हमेशा एक सी रहती है।

निर्धारित किया गया है कि F तारता से उड़ते वक्त घरेलू मक्खी एक सेकेण्ड में 352 बार पंख फड़फड़ाती है। भौंरा एक सेकेण्ड में 220 बार फड़फड़ाता है। A तारता देते हुए उन्मुक्त उड़ती मधुमक्खी 440 बार एक सेकेण्ड में पंख फड़फड़ाती है। जब उसके साथ बोझ (शहद) होता है, तब वह सेकेण्ड में सिर्फ 330 बार पंख फड़फड़ाती है। इससे B तारता की ध्वनि प्राप्त होती है। मोंगरे बहुत ही सुस्ती से उड़ते हैं। मच्छड़ के पंखों में प्रति सेकेण्ड 500-600 बार कंपन होता है। तुलना के लिए बता दूँ कि हवाई जहाज का प्रोपेलर एक सेकेण्ड में सिर्फ 25 बार घूमता है।

श्रवण भ्रम

यदि किसी कारणवश हम यह मान बैंठे कि किसी हल्के शोर का स्रोत हमसे काफी दूर है, तो उसकी आवाज हमें काफी तेज लगेगी। इस तरह के श्रवण-भ्रम अक्सर अनुभूत होते रहते हैं, पर अक्सर हम उस पर ध्यान नहीं देते।

इस तरह की एक रोचक घटना का वर्णन अमरीकी वैज्ञानिक विलियम जेम्स अपने "मनोविज्ञान" में करते हैं :

"एक बार काफी रात को मैं बैठा पढ़ रहा था; अचानक ऊपर के तल्ले से जोरों का एक शोर सुनाई दिया। शोर तुरन्त बन्द हो गया और एक मिनट बाद फिर से शुरू हो गया। मैं बाहर हौल में निकल आया और ध्यानसे सुनने लगा, पर कुछ सुनाई नहीं दिया। पर जैसे ही किताब खोली, शोर फिर से शुरू हो गया। शोर काफी जोरों का और भयावना था, जैसे कोई आँधी चलने वाली हो। वह हर तरफ से आ रहा था। मैं काफी घबड़ा गया और फिर से हौल में निकलआया। शोर फिर गायब हो गया।

अपने कमरे में दूसरी बार लौटने पर मैंने अचानक देखा कि शोर फर्श पर सोए छोटे से कुत्ते की खर्राहट के कारण हो रहा है!...

दिलचस्प बात तो यह है कि शोर का वास्तविक कारण जान लेने के बाद मैं लाख कोशिश करके भी उस पुराने भ्रम को दुबारा नहीं प्राप्त कर सका।"

शायद पाठकों को भी अपने जीवन की कोई ऐसी घटना याद आ जाए। मुझे ऐसे भ्रमों का बहुत बार अनुभव हुआ है।

टिड्डा कहाँ है?

ध्वनि स्रोत की दूरी तो नहीं, पर दिशा बताने में हम अक्सर गलती कर जाते हैं।

चित्र 154. किधर गोली छूटी : बाएँ या दाएँ?

हमारे कान सही-सही बता सकते हैं कि गोली बाएँ दागी गई थी या दाएँ (चित्र 154)। लेकिन यदि ध्वनि स्रोत ठीक हमारे आगे या पीछे है, तो हम अक्सर उसकी स्थिति बताने में असमर्थ रहते हैं : आगे से छोड़ी गई गोली की आवाज अक्सर पीछे से आती प्रतीत होती है।

इस स्थिति में हम सिर्फ यह बता सकते हैं कि गोली कहीं नजदीक से दागी गई है या दूर से।

एक प्रयोग है, जिससे हमें बहुत सारी जानकारी मिल जाएगी। किसी की आँखों पर पट्टी बाँधकर कमरेके बीच में बैठा दें और उससे कहें कि वह सिर इधर-उधर न घुमाए। हाथों में दो सिक्के लेकर आप एक से दूसरे पर चोट

करें। यदि आप हमेशा उस उदग्र समतल पर हैं, जो आपके मित्रके सिर को आँखों के बीच से दो बराबर भागों में बाँटती है, तो आपका मित्र कभी नहीं बता सकेगा कि किस जगह से झन्नाहट की आवाज आई है : आवाज कमरे के एक कोने में होगी और आपका मित्र दूसरे कोने की ओर दिखाएगा।

यदि आप सममिति के इस समतल से इधर-उधर हो जाएंगे, तब इतनी बड़ी गलतियाँ वह नहीं करेगा। कारण स्पष्ट है : अब ध्वनि आपके मित्र के निकटतम कान तक कुछ पहले और अधिक जोर से पहुँचेगी।

इस प्रयोग से समझ में आ जाता है कि घास में छिपकर चरचराते टिड्डे को देख पाना इतना कठिन क्यों है। उसका तीखा स्वर आप से पथ के दाएँ दो कदम की दूरी पर सुनाई देता है। आप उधर मुड़ते हैं, पर कुछ दिखता नहीं; आवाज बाएँ से आ रही है। आप उधर मुड़ते हैं, पर आवाज किसी तीसरी जगह से आती प्रतीत होती है। जितना ही आप अपना सर इधर-उधर चरचराहट की दिशा में घुमाएंगे, यह अदृश्य "संगीतकार" उतनी ही तेजी से छलाँगे लगाएगा। पर वास्तविकता यह है कि टिड्डा एक ही स्थान पर बैठा रहता है। उसकी छलाँगे आपकी कल्पना शक्ति या श्रवण-भ्रम के परिणाम हैं। आपकी गलती यह है कि आप सिर इस तरह घुमाते हैं कि टिड्डा आपके सिर के सममिति-समतल पर आ जाता है और हम जानते हैं कि इस स्थिति में ध्वनि के आने की दिशा बताने में गलती की अधिक सम्भावना है : टिड्डे की चरचराहट आगे से आती है और आप उसे पीछे से आती हुई मान लेते हैं।

चित्र 155. किस स्थान पर गोली दागी गई?

यहाँ से एक व्यावहारिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है : यदि आप निर्धारित करना चाहते हैं कि टिड्डे की चरचराहट या कोयल की कू-कू जैसी दूर की आवाजें कहाँ से आ रही हैं, तो आप को सिर ठीक आवाज की ओर नहीं घुमानी चाहिए। वैसे, हम करते भी यही हैं, जब हम "सतर्क" या "सजग" हो उठते हैं।

आवाज की शरारतें

जब हम सूखी डबल रोटी चबाते हैं, तो हमें काफी जोर का शोर सुनाई देता है। पास बैठा व्यक्ति भी वही चीज खा रहा होता है, पर उससे कोई खास शोर नहीं सुनाई देता। ऐसा क्यों होता है?

बात यह है कि यह शोर सिर्फ हमारे कानों में होता है और पड़ोस में बैठे व्यक्तियों को परेशान नहीं करता। खोपड़ी की हड्डी या कोई भी ठोस सुनम्य पिण्ड ध्वनि का बहुत अच्छा चालक होता है और ऐसे घने माध्यम में ध्वनि अत्यधिक तेज लगती है। हवा के माध्यम से कान तक पहुँचने वाली ध्वनि हल्के शोर सी प्रतीत होती है, पर वही ध्वनि जब खोपड़ी के ठोस रेशों से होकर हमारी श्रवण-संवेदनाओं की वाहक शिराओं तक पहुँचती है, तो वह तेज शोर में परिणत हो जाती है। इसी बात को सिद्ध करने वाला एक प्रयोग करें : जेबी घड़ी को लटकाने वाले छल्ले को दाँतों से पकड़ लें; आपको टिक-टिक की आवाज हथौड़े की चोट सी प्रतीत होगी।

"उदरवाणी का चमत्कार"

उदर वक्ताओं द्वारा दिखाए जाने वाले "चमत्कारों" का रहस्य उन्हीं बातों से खुलता है जो पृ. 241-244 पर बताई गई हैं।

"यदि कोई व्यक्ति,, - प्रो. हैंपसन लिखते हैं, - छप्पर की कलगी पर घूम रहा है, तो उसका स्वर घर के भीतर फुसफुसाहट के रूप में सुनाई देगा। जैसे-जैसे वह किनारी की ओर बढ़ेगा, उसकी आवाज और क्षीण होती जाएगी। यदि हम घर के किसी कमरे में बैठे हैं, तो हमारे कान उस व्यक्ति की दूरी और उससे आने वाली ध्वनि की दिशा के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते। लेकिन स्वर में बदलाव के आधार पर हमारी बुद्धि यह निष्कर्ष निकाल सकती है कि बोलने वाला हम से दूर होता जा रहा है। यदि स्वर खुद सूचित कर दे कि उसे बोलने वाला व्यक्ति छप्पर पर घूम रहा है, तो हम आसानी से विश्वास कर लेंगे। और यदि कोई उस व्यक्ति के साथ बातें करने लग जाएँ, जो मानों की बाहर खड़ा है, और ढंग का उत्तर भी प्राप्त करे, तो भ्रम और भी प्रभावशाली हो जाता है।"

ये ही वे परिस्थितियाँ हैं, जिनमें उदर वक्ता काम करता है। जब छप्पर पर खड़े आदमी के बोलने की बारी आती है, उदर वक्ता फुसफुसाना शुरू कर देता है; जब उसकी खुद की बारी आती है, वह अपने स्पष्ट व पूरे स्वर में बोलने लगता है, ताकि दोनों आवाजों में अन्तर दिख सके। उसकी बातों का सार किसी अतिरिक्त साथी की

उपस्थिति का भ्रम और भी बढ़ा देता है। यदि इसमें कोई पकड़ी जाने वाली बात है, तो यह कि मिथ्या साथी की आवाज छप्पर से नहीं, रंगमंच से आती सुनाई दे सकती है।"

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि उदर वाणी शब्द यहाँ ठीक नहीं बैठता। उदर वक्ता को यह तथ्य छिपाना पड़ता है कि जब उसके मिथ्या साथी के बोलने की बारी आती है, तो वह स्वयं बोलता है। इसके लिए उसे नाना तिकड़म रचने पड़ते हैं। विभिन्न भाव-भंगिमाओं से वह दर्शक का ध्यान अपनी ओर से हटाने की कोशिश करता है। एक तरफ झुककर और हाथ कान के पास रखकर सुनने का नकल करते हुए वह अपने होठ छिपाने की कोशिश करता है। जब वह अपनी शकल नहीं छिपा सकता, तो होठों की गतिविधि न्यूनतमकर देता है। इसमें उसे इस बात से सहायता मिलती है कि उसे अपने "साथी" की ओर से फुसफुसाहट में बोलना पड़ता है। होठों की गति इतनी अच्छी तरह से छिपाई जाती है कि कुछ लोग सोचते हैं कि कलाकार के शरीर की गहराइयों में से आवाज आ रही है। इसलिए उसका नाम उदरवक्ता पड़ा।

इस प्रकार उदर वाणी का मिथ्या चमत्कार पूर्णतः इस बात पर आधारित है कि हम ध्वनि के आने की दिशा और उसका स्रोत सही-सही नहीं बता सकते। साधारण परिस्थितियों में हम सिर्फ खींच-तीर कर काम चला लेते हैं। लेकिन यदि परिस्थिति साधारण न हो, तो हम ध्वनि-स्रोत के निर्धारण में बड़ी-बड़ी गलतियाँ कर बैठते हैं। उदर वक्ता को रंगमंच पर देखते समय मैं भी इस भ्रम को दूर नहीं कर पाया, यद्यपि मुझे मालूम है कि बात क्या है।

पाठकों से

"मीर" प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिजाइन सम्बन्धी आप के विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पतेपर लिखिए :

"मीर" प्रकाशन

पेर्वी रीज्स्की पेरेऊलोक, 2

मास्को, सोवियत संघ

नवीन

सम्पादक की ओर से

या. ई. पेरेलमान लम्बी अवधि तक मनोरंजक भौतिकी की सामग्रियों को संशोधित व संवर्धित करते रहे। उनके जीवनकाल में इस पुस्तक का अन्तिम (तेरहवां) संस्करण सन् 1936 में प्रकाशित हुआ था। तब से भौतिकी में असंख्य खोजें हुई, पर उनका प्रतिबिंबिन पुस्तक का आकार और स्वरूप बदले बिना संभव नही है। इसके अतिरिक्त, मनस्वी लेखक ने पुस्तक की अंतर्वस्तु का चयन कुछ इस प्रकार किया है कि उसे आज भी अद्यातीत नहीं कहा जा सकता। यह कृति भौतिकी के मूलभूत सिद्धान्तों को सरल रूप में समझाने का प्रयास है। इन्हीं कारणों से बाद के संस्करणों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं लाया गया है।

लेखकीय (तेरहवें संस्करण के प्राक्कथन से)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने कोई नया ज्ञान देने का प्रयास नहीं किया है। पाठक जो कुछ जानता है, और अच्छी तरह जान ले - इसमें सहायता देने की कोशिश की गई है, ताकि उसका भौतिकी का ज्ञान सचेत, सजीव व गहन हो और वह विभिन्न स्थितियों में उसका प्रयोग कर सके। इसके लिए अनेक सारगर्भित पहेलियों व प्रश्नों, मनोरंजक कहानियों व रोचक समस्याओं, विरोधाभासों आदि पर मनन करना चाहिए। दैनिक जीवन में दर्शनीय और विख्यात विज्ञान-गल्पों में वर्णित परिघटनाओं का भौतिकीय मूल्यांकन करना भी इष्ट है। आखिरी प्रकार की सामग्रियों का लेखक ने विशेष उपयोग किया है : जूल वेर्न, वेल्स, मार्क ट्वेन आदि के उपन्यासों व कहानियों से अनेक अवतरण पुस्तक में उद्धृत है। उनमें वर्णित कल्पनातीत प्रयोग सिर्फ मनोरंजक ही नहीं है, सजीव उदाहरणों के रूप में उनकी शैक्षिक भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है।

संकलनकर्ता ने विषय को रोचकता व पुस्तक को मनोरंजक रूप देने का भरसक प्रयत्न किया है। उसने इस मनोवैज्ञानिक सत्य का अनुसरण किया है कि रुचि से मनोयोगिता बढ़ती है, कठिन विषय सुगम हो जाता है और इससे ज्ञान का आत्मसम्मान सचेत व दीर्घकालीन होता है। ऐसे संकलनों के लिए जो परम्परा है, उसके विपरीत

"मनोरंजक भौतिकी" में रोचक व प्रभावशाली भौतिकीय प्रयोगों के वर्णन को बहुत ही कम स्थान दिया गया है। इस पुस्तक का अभिप्राय प्रयोग की सामग्री प्रस्तुत करने वाले संकलनों से भिन्न है। "मनोरंजक भौतिकी" का मुख्य लक्ष्य वैज्ञानिक कल्पना की कार्यशीलता को जाग्रत करना, पाठक में भौतिक विज्ञान की आत्मा के अनुरूप मनन करने की आदत डालना और उसकी स्मृति में भौतिकीय ज्ञान का जीवन की विभिन्न दैनिक परिघटनाओं के साथ साहचर्य स्थापित करना है। पुस्तक की संसाधनों में संकलनकर्ता ने उसी अनुदेश का पालन किया है, जिसे व्ला. इ. लेनिन ने निम्न शब्दों में लिखा था : "लोकप्रिय लेखक सरलतम व सर्वज्ञता तथ्यों से आरम्भ करता है। सुगम तर्कों व सही चुने उदहरणों के सहारे इन तथ्यों के मुख्य निष्कर्षों को दिखाते हुए वह मननशील पाठक को एक के बाद एक प्रश्नों की ओर ले जाता है और इसप्रकार उसे गम्भीर विचारों व गहन सिद्धान्तों का दर्शन कराता है। पाठक स्वयं नहीं सोचता, सोचने की इच्छा नहीं रखता या उसे सोचना नहीं आता- यह सब मान कर लोकप्रिय लेखक नहीं चलता। इसके विपरीत, वह अविकसित पाठक में गम्भीर मानसिक कार्य की इच्छा देखता है और इस कठिन गंभीर कार्य को करने में सहायक होता है; वह हाथ पकड़ कर पाठक को चलाना सिखाता है, ताकि आगे वह स्वयं चल सके।"

कई पाठकों ने इस पुस्तक की जन्म-कहानी में रुचि दिखाई है, अतः यहाँ हम उसके बारे में चन्द सूचनाएँ दे रहे हैं।

"मनोरंजक भौतिकी" का "जन्म" करीब पच्चीस साल पूर्व हुआ था और वह लेखककृत पुस्तक-परिवार का प्रथम सदस्य था (अब इस परिवार में दसियों सदस्य हैं)।

पाठकों के पत्र गवाह हैं कि "मनोरंजक भौतिकी" सोवियत संघ के सुदूर कोनों तक फैलने में सफल हो गई है।

पुस्तक का इतना बड़ा प्रचार भौतिकी के ज्ञान में लोगों की सजीव रुचि को दर्शाता है और साथ ही सामग्रियों की कोटि के लिए लेखक पर गम्भीर जिम्मेदारी डालता है। "मनोरंजक भौतिकी" के हर नए संस्करण में असंख्य छोटे-बड़े परिवर्तन इसी दायित्व की चेतना के परिणाम हैं। यूं कहा जा सकता है कि पुस्तक का लेखन पूरे 25 वर्ष चलता रहा। इस अन्तिम संस्करण में प्रथम संस्करण के मूलपाठ से सिर्फ आधा रह गया है। चित्र सारे के सारे नए हैं।

कुछ पाठकों ने लेखक से अनुरोध किया है कि पुस्तक की संसाधना न हो, ताकि "चंद नए पृष्ठों के लिए हर नया संस्करण न खरीदना पड़े"। पर यह कारण शायद ही लेखक को अपनी कृति और अच्छा बनाने के दायित्व से मुक्त कर सके। "मनोरंजक भौतिकी" का रूप भले ही ललित हो, वह ललित साहित्य नहीं, वैज्ञानिक साहित्य है। इसका विषय - भौतिकी निरन्तर नूतन सामग्रियों से परिपूरित होता रहता है और पुस्तक में इन सामग्रियों का समावेश समय-समय पर होते रहना चाहिए।

दूसरी तरफ से यह सुनना पड़ता है कि "मनोरंजक भौतिकी" में ऐसे विषयों को स्थान नहीं दिया जा रहा है, जैसे रेडियो-तकनीक की नवीनतम उपलब्धियाँ, परमाण्वीय नाभिक का विघटन, आधुनिक भौतिकी के सिद्धान्त, आदि। इस तरह के ताने नासमझी के परिणाम हैं। "मनोरंजक भौतिकी" का अपना निश्चित लक्ष्य है और ऐसे विषयों पर प्रकाश डालना अन्य पुस्तकों का कार्य है।

"मनोरंजक भौतिकी" के साथ (इसके दूसरे खण्ड को छोड़कर) लेखक की कुछ अन्य कृतियाँ भी सम्बद्ध हैं। इनमें से एक का नाम है "पग-पग पर भौतिकी-विज्ञान"। यह कुछ कम परिपक्व पाठक के लिए हैं, जिसने अभी तक सिलसिलेवार ढंग से भौतिकी का अध्ययन शुरू नहीं किया है। इसके विपरीत, दो पुस्तकें उनके लिए हैं, जो स्कूल में भौतिकी का अध्ययन समाप्त कर चुके हैं। ये हैं : "मनोरंजक यांत्रिकी" और "क्या आप भौतिकी जानते हैं?"। अन्तिम पुस्तक को "मनोरंजक भौतिकी" पुस्तक माला का अन्त मान सकते हैं।

1936

या. पेरेलमान